शिव की अनुग्रह मूर्तियाँ

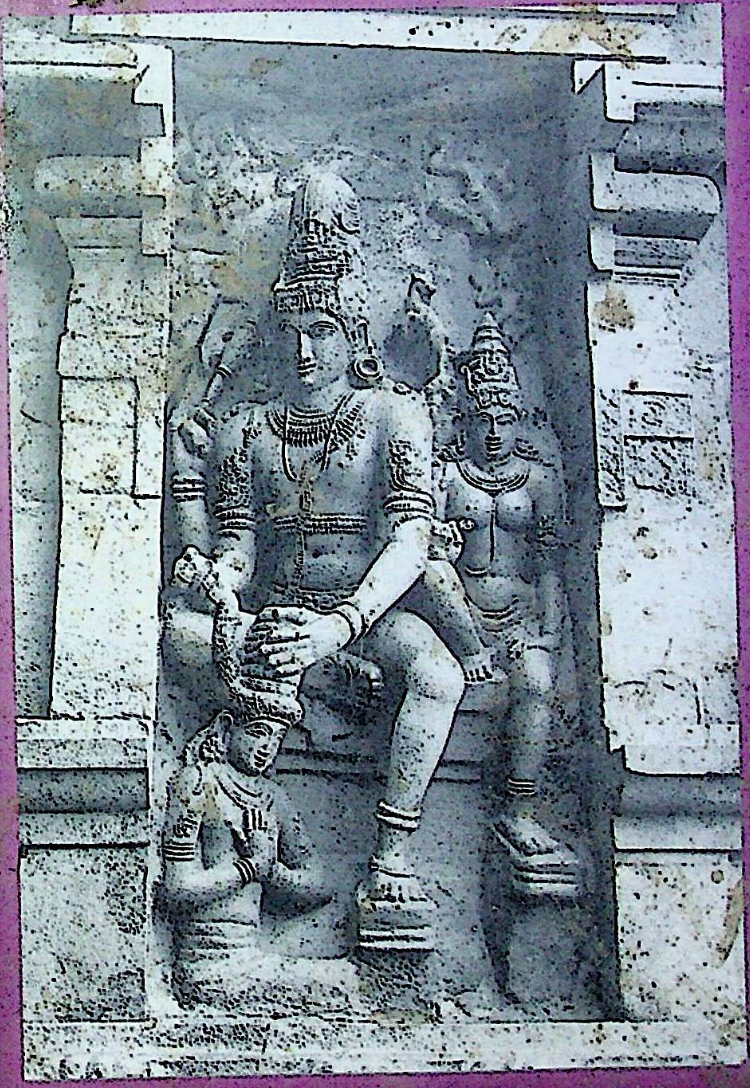

डॉ. शान्ति स्वरूप सिन्हा

भारतीय साहित्य एवं कला के आधार पर शिव से सम्बन्धित अनेक कार्य हुए हैं, किन्तु शिव के अनुग्रह स्वरूपों पर तुलनात्मक दृष्टि से कम शोध कार्य किये गये हैं। शिव की अनुग्रह मूर्तियाँ शीर्षक प्रस्तुत पुस्तक में प्रारम्भ से १३वीं शती ई० के मध्य की शिव की अनुग्रह मूर्तियों पर प्रतिमालाक्षणिक दृष्टि से विस्तृत एवं विश्लेषणात्मक अध्ययन किया गया है। वैदिक-पौराणिक एवं अन्य साहित्यिक साक्ष्यों के साथ ही अनुग्रह स्वरूपों की कथात्मक पृष्ठभूमि और भारत के विभिन्न क्षेत्रों से प्राप्त अनुग्रह मूर्तियों के प्रतिमालाक्षणिक वैशिष्ट्य पर भी इस पुस्तक में यथेष्ट विचार किया गया है।

प्रस्तुत पुस्तक में न केवल रावणानुग्रह, अर्जुनानुग्रह, चण्डेशानुग्रह, विष्णवनुग्रह जैसे पारम्परिक अनुग्रह स्वरूपों का विस्तार से प्रतिमाशास्त्रीय विवेचन किया गया है वरन् ऐसे स्वरूपों (नन्दीशानुग्रह, विघ्नेश्वरानुग्रह) का भी अध्ययन हुआ है जिनके उल्लेख शास्त्रों में तो उपलब्ध हैं किन्तु किन्हीं कारणों से उनकी मूर्तियाँ नहीं उकेरी गयीं। साथ ही गंगाधर एवं यमान्तक स्वरूपों का भी निरूपण किया गया है जिनमें मूल भाव शिव का अनुग्रह ही है, सन्दर्भ चाहे भगीरथ का हो या मार्कण्डेय का।

<u>आवरण चित्र</u>

चण्डेशानुग्रह मूर्ति, बृहदीश्वर मन्दिर

गंगैकोण्डचोलपुरम, १०४४ ई०

मूल्य : दो सौ पचास रुपये

8.1

शिव
की
अनुग्रह मूर्तियाँ

शिव की अनुग्रह मूर्तियाँ

लेखक
डॉ० शान्ति स्वरूप सिन्हा

विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी

SHIV KI ANUGRAHA MURTIYAN
by
Dr. Shanti Swaroop Sinha

ISBN : 81-7124-338-X

© लेखक

भारतीय इतिहास अनुसंधान परिषद, नई दिल्ली द्वारा आर्थिक सहायता प्राप्त। ग्रन्थ में व्यक्त विचार, निष्कर्ष एवं तथ्य पूरी तरह से लेखक के हैं। इनके लिए भारतीय इतिहास अनुसंधान परिषद, नई दिल्ली का कोई दायित्व नहीं है।

प्रथम संस्करण : २००३ ई०

प्रकाशक

विश्वविद्यालय प्रकाशन

चौक, वाराणसी-२२१ ००१

फोन व फैक्स : (०५४२) २३५३७४१, २३५३०८२

E-mail : sales@vvpbooks.com

Website : www.vvpbooks.com

मुद्रक

वाराणसी एलेक्ट्रॉनिक कलर प्रिण्टर्स प्रा० लि०

चौक, वाराणसी-२२१ ००१

प्रातः स्मरणीय पूज्य माँ

श्रीमती रामावती सिन्हा

एवं

पूज्य पिता

श्री अमर नाथ सिन्हा

के

श्री चरणों में

सादर

समर्पित

उपोद्घात

भारतीय संस्कृति में शिव का महत्त्व सर्वज्ञात है। भारतीय परम्परा और संस्कृति जितनी व्यक्त है उससे कहीं अधिक अव्यक्त है, जिसके मर्म को समझने के लिए बहुत गहरे पैठने की आवश्यकता होती है। इसे केवल एक उदाहरण के संकेत मात्र से समझा जा सकता है। भारतीय संस्कृति में ब्रह्मा, विष्णु और शिव की परिकल्पना वैदिक-पौराणिक परम्परा के त्रिदेवों के रूप में की गयी है, जो क्रमशः जगत् की सृष्टि, स्थिति और विलय के देवता हैं। सामान्य रूप से देखने में ये तीनों देवता अलग-अलग और इनके कार्य भी अलग-अलग लगते हैं, किन्तु किसी भी वस्तु या पदार्थ की तीन स्थितियाँ अर्थात् सृष्टि, स्थिति और अन्त का सातत्य मूलतः उनके ऐक्य भाव को दर्शाता है। यही कारण है कि इन तीनों देवों को सम्पृक्त रूप में 'हरिहरपितामह' स्वरूप में निरूपित किया गया।

भारतीय संस्कृति का प्राण उसका शिव-तत्त्व है जिसमें अन्तर्निहित सर्वमंगल भाव सर्वत्र द्रष्टव्य है—

सर्वे भवन्तु सुखिनः सर्वे सन्तु निरामयाः।
सर्वे भद्राणि पश्यन्तु मा कश्चिद्दुःखभाग्भवेत्॥

शिव कम से कम वैदिक काल से भारतीय जनमानस के आराध्यदेव रहे हैं। उनकी अवधारणा और उनके स्वरूप निर्धारण में आंचलिक और जनजातीय या वन्यक्षेत्रों के विभिन्न तत्त्व सम्बद्ध रहे हैं, जिसके कारण ही शिव को लोकमानस में व्यापक आधार मिला। सर्वमंगल या कल्याण भाव के कारण ही इन्हें शिव, शंकर और देवाधिदेव के रूप में महेश, महादेव कहा गया। साथ ही लोकजीवन और समाज से सम्बद्ध होने के कारण 'पशुपतिनाथ' एवं 'भूतनाथ' जैसे नामों से भी इनका स्तवन किया गया। यद्यपि शिव के विराट स्वरूप का उल्लेख विभिन्न ग्रन्थों में हुआ है किन्तु दक्षिण भारत से प्राप्त एक अभिलेख (ल० ११वीं शती ई०) शिव की व्यापकता को सहज ही व्यक्त करता है—

नमस्ते विश्वनाथाय विश्वरूप नमोस्तुते।
नमस्ते शून्यरूपाय लक्ष्यालक्ष्य नमोस्तुते॥

उपर्युक्त पंक्तियों में शिव को विश्वनाथ, विश्वरूप, शून्यरूप और लक्ष्य तथा अलक्ष्य दोनों बताया गया है। यही भारतीय धर्म, दर्शन और संस्कृति का मूलतत्त्व भी है और शिव-तत्त्व भी।

शिव के विराट् स्वरूप के अनेक आयाम हैं, जिनमें शिव के अलग-अलग नाम, लक्षण और आयुध वर्णित हैं। इनमें शिव कभी एकल या स्वतन्त्र रूप में, कभी उमासहित और कभी उमा, गणेश और कार्त्तिकेय सहित तथा अन्यान्य स्वरूपों में अभिव्यक्त हुए हैं। शिव जोड़ते और जुड़ते हैं, और इस प्रक्रिया में शक्ति से सम्पृक्त हो जाने पर 'अर्द्धनारीश्वर' बन जाते हैं। विष्णु के साथ 'हरिहर', विष्णु और ब्रह्मा के साथ 'हरिहरपितामह' और ब्रह्मा, विष्णु एवं सूर्य के साथ 'हरिहरहिरण्यगर्भ' स्वरूपों में भी शिव को अभिव्यक्त किया गया है। शिव ही नटेश या नटराज भी हैं। गंगाधर, चन्द्रशेखर, दक्षिणामूर्ति, उमा-महेश्वर एवं पार्वती-परिणय जैसे स्वरूपों में शिव का शान्त स्वरूप व्यक्त हुआ है। साथ ही शिव अनुग्रह एवं संहारकर्ता के रूप में भी निरूपित हैं। शिव के संहार स्वरूपों में अन्धकारि, कालारि, त्रिपुरान्तक, गजान्तक, कामान्तक, शरभेष एवं ब्रह्मशिरश्छेदक मुख्य हैं। यदि गम्भीरता से विचार करें तो शिव के संहार स्वरूपों में भी जगत् के कल्याण का भाव ही निहित है।

भारतीय कला मूलतः भारतीय धर्म और संस्कृति की मूर्त एवं व्यावहारिक अभिव्यक्ति का सशक्त माध्यम रही है। फलतः शिव की मूर्तियों का अध्ययन शिव-तत्त्व की अवधारणा और उनके स्वरूपगत अभिव्यक्ति का अध्ययन है। भारतीय कला में कम से कम शुंग-कुषाण काल से निश्चित रूप से शिव के लिंग एवं मानव-विग्रह स्वरूपों के उदाहरण मिलने लगते हैं।

भारतीय साहित्य एवं कला के आधार पर शिव से सम्बन्धित अनेक कार्य हुए हैं, किन्तु शिव के अनुग्रह स्वरूपों पर तुलनात्मक दृष्टि से कम शोध कार्य किये गये हैं। इस दृष्टि से डॉ० शान्ति स्वरूप सिन्हा की पुस्तक **शिव की अनुग्रह मूर्तियाँ** एक महत्त्वपूर्ण शोध कार्य है, जिसमें प्रारम्भ से १३वीं शती ई० के मध्य की अनुग्रह मूर्तियों का प्रतिमालाक्षणिक दृष्टि से विस्तारपूर्वक एवं विश्लेषणात्मक अध्ययन किया गया है। इस पुस्तक में लेखक ने वैदिक-पौराणिक एवं अन्य साहित्यिक साक्ष्यों का विस्तृत अवगाहन किया है। साथ ही विभिन्न अनुग्रह स्वरूपों की कथात्मक पृष्ठभूमि और भारत के विभिन्न क्षेत्रों से प्राप्त अनुग्रह मूर्तियों के प्रतिमालाक्षणिक वैशिष्ट्य पर भी विचार किया है। काल और क्षेत्र के सन्दर्भ में विभिन्न विशिष्टताओं को भी बखूबी रेखांकित किया गया है, जैसे रावणानुग्रह मूर्तियों के सन्दर्भ में उत्तर भारत में मुख्यतः उमा-महेश्वर मूर्तियों की पृष्ठभूमि में सांकेतिक रूप में रावणानुग्रह स्वरूप की अभिव्यक्ति और दक्षिण भारत में पूरे कथात्मक परिवेश में इस स्वरूप का निरूपण। चण्डेशानुग्रह, विष्ण्वनुग्रह एवं किन्हीं अर्थों में अर्जुनानुग्रह स्वरूप दक्षिण भारत में विशेष लोकप्रिय थे—इस बात की भी समीक्षा की गयी है।

प्रस्तुत पुस्तक में न केवल रावणानुग्रह, अर्जुनानुग्रह, चण्डेशानुग्रह, विष्ण्व-नुग्रह जैसे पारम्परिक अनुग्रह स्वरूपों का विस्तार से प्रतिमाशास्त्रीय विवेचन किया गया है वरन् ऐसे स्वरूपों का भी अध्ययन हुआ है जिनके उल्लेख शास्त्रों में तो उपलब्ध हैं किन्तु किन्हीं कारणों से उनकी मूर्तियाँ नहीं उकेरी गयीं।

एक नई सोच के साथ लेखक ने शिव के कई ऐसे मूर्ति स्वरूपों को भी अनुग्रह स्वरूपों के अन्तर्गत रखा है जिन्हें सामान्यतः शिव के शान्त या संहार मूर्तियों की कोटि में रखा जाता है। ऐसे स्वरूपों में गंगाधर और यमान्तक मूर्तियाँ मुख्य हैं। गंगाधर स्वरूप में एक ओर शिव के भगीरथ पर और उनके माध्यम से पूरी मानवता के प्रति कल्याण का भाव व्यक्त हुआ है तो यमान्तक स्वरूप में यम को दण्डित करने के माध्यम से भक्त मार्कण्डेय के प्रति शिव का अनुग्रह भाव द्रष्टव्य है।

ग्रन्थ के लेखक मेरे शोध-छात्र रहे हैं और उन्होंने गम्भीर शोधपरक दृष्टि से 'शिव की अनुग्रह मूर्तियों' पर कार्य किया है। यह ग्रन्थ शोध-प्रज्ञों और शिव के अनुग्रह स्वरूप का परिचय प्राप्त करने वाले सामान्य जिज्ञासु पाठकों के लिए समान रूप से उपयोगी है। मुझे विश्वास है कि जिज्ञासु पाठक और शोध-प्रज्ञ समान रूप से इस पुस्तक का स्वागत करेंगे।

अन्त में प्रार्थना करता हूँ कि लेखक को शिवकृपा प्राप्त हो तथा शिवकृपा से सम्पूर्ण जगत् में शान्ति और सद्भाव स्थापित हो।

गंगा दशहरा, ९ जून २००३

मारुति नन्दन प्रसाद तिवारी
प्रोफेसर एवं विभागाध्यक्ष
कला-इतिहास विभाग
काशी हिन्दू विश्वविद्यालय
वाराणसी - २२१००५

आमुख

भारतीय वाङ्मय एवं कला में शिव के पूजन एवं शिल्पांकन के सन्दर्भ प्राचीन काल से ही मिलते हैं। शैव पुराणों एवं आगम ग्रन्थों में महेश, महादेव एवं महेश्वर के रूप में शिव को एक विराट् सन्दर्भ में देखा गया है, और जगत् के संहार या विलय के साथ ही उसकी सृष्टि एवं स्थिति से भी सम्बद्ध किया गया है। शिव मुख्यतः मंगल के देवता हैं जो शिव के शान्त, संहारक, अनुग्रह एवं अन्य सभी स्वरूपों में समान रूप से द्रष्टव्य है। प्रकरण चाहे संहार का हो या गंगा को पृथ्वी पर लाने का या फिर भक्तों एवं देवताओं पर अनुग्रह का— सभी में जगत् के कल्याण का ही भाव अन्तर्निहित है।

शिव पर साहित्य, धर्म और दर्शन की दृष्टि से अनेक विद्वानों ने महत्त्वूपर्ण शोध कार्य किये हैं। कला की दृष्टि से भी ए०के० कुमारस्वामी, वी०एस० अग्रवाल, टी०ए० गोपीनाथ राव, जे०एन० बनर्जी, स्टेला क्रैमरिश, सी० शिवराममूर्ति प्रभृत्ति विद्वानों ने महत्त्वपूर्ण कार्य किये हैं जिनमें शिव के विभिन्न स्वरूपों के लक्षणों एवं कला में उनके रूपायन के प्रसंग में अनुग्रह मूर्तियों की भी संक्षेप में चर्चा हुई है। शिव की अनुग्रह मूर्तियों पर मुख्य रूप से टी०ए० गोपीनाथ राव, जे०एन० बनर्जी, एम०एन०पी० तिवारी एवं कमल गिरि, बी०एन० शर्मा, एस०डी० त्रिवेदी, आर०सी० अग्रवाल, एम०एस० नागराज राव, के०वी० सुन्दर राजन, राजू कालिदास, एन०पी० जोशी, आर०एस० गर्ग, एम०ए० ढाकी तथा एम० नागराजन जैसे विद्वानों ने कार्य किये हैं जो ग्रन्थों तथा लेखों के रूप में उपलब्ध हैं। इन कार्यों से प्रेरणा लेकर और अपने शोध-निर्देशक प्रो० मारुति नन्दन तिवारी के परामर्श से मैंने प्रतिमालाक्षणिक दृष्टि से शिव की अनुग्रह मूर्तियों पर शोधकार्य करने का निर्णय लिया। शिव कृपा से आज वही शोध पुस्तक के रूप में शिव के चरणों में सादर समर्पित कर रहा हूँ।

इस पुस्तक में शिव की अनुग्रह मूर्तियों का प्रतिमालाक्षणिक दृष्टि से वैदिक-पौराणिक ग्रन्थों, शिल्पशास्त्रों और विभिन्न क्षेत्रों एवं कालों के मन्दिरों पर उनके रूपांकन के आधार पर विस्तृत, तुलनात्मक और विश्लेषणात्मक अध्ययन किया गया है। ऐतिहासिक अध्ययन की मर्यादा के अनुरूप काल और क्षेत्र के सन्दर्भ में अनुग्रह मूर्तियों में होने वाले विकास, क्षेत्रीय वैशिष्ट्य एवं परिवर्तनों को भी रेखांकित करने का प्रयास किया गया है। इस पुस्तक में प्रारम्भ से १३वीं शती ई० के मध्य की साहित्यिक एवं पुरातात्त्विक सामग्री का अवगाहन एवं मंथन किया गया है। विभिन्न पुरास्थलों यथा-एलोरा, तंजौर, गंगैकोण्ड-

चोलपुरम्, कांचीपुरम्, पट्टडकल, भुवनेश्वर, खजुराहो आदि पर प्रकाशित पुस्तकों एवं लेखों तथा संग्रहालयों में सुरक्षित मूर्तियों से सन्दर्भित सन्दर्भों का प्रस्तुत अध्ययन में यथेष्ट उपयोग किया गया है। साथ ही मैंने स्वयं भी विभिन्न पुरास्थलों एवं संग्रहालयों में जाकर वहाँ की शिव की अनुग्रह मूर्तियों का विस्तृत और पूरे सन्दर्भ में अध्ययन करने का प्रयास किया है। मैंने व्यक्तिगत रूप से महाबलीपुरम्, कांचीपुरम्, तंजौर, दारासुरम्, कुम्भकोणम्, चिदम्बरम्, भुवनेश्वर एवं खजुराहो जैसे महत्त्वपूर्ण स्थलों पर जाकर वहाँ की मूर्तियों का एकैकशः और विस्तृत अध्ययन किया है। इसी प्रकार कुछ मुख्य संग्रहालयों जैसे—राष्ट्रीय संग्रहालय, नई दिल्ली; भारतीय संग्रहालय, कोलकाता; भारत कला भवन, वाराणसी; राज्य संग्रहालय, लखनऊ; इलाहाबाद संग्रहालय, इलाहाबाद; बिड़ला संग्रहालय, भोपाल; राजकीय संग्रहालय, भोपाल; जार्डीन संग्रहालय, खजुराहो; रीवा संग्रहालय, रीवा; सिटी पैलेस संग्रहालय, जयपुर; तंजौर आर्ट गैलरी, तंजौर; शासकीय संग्रहालय, चेन्नई; राज्य संग्रहालय, भुवनेश्वर की अनुग्रह मूर्तियों का भी मैंने विस्तृत अध्ययन किया है।

इस पुस्तक में शिव की अनुग्रह मूर्तियों में रावणानुग्रह, अर्जुनानुग्रह, चण्डेशानुग्रह, विष्ण्वनुग्रह, नन्दीशानुग्रह एवं विघ्नेश्वरानुग्रह स्वरूपों का अध्ययन हुआ है। उपर्युक्त पारम्परिक अनुग्रह मूर्ति स्वरूपों के साथ ही कथात्मक पृष्ठभूमि के आधार पर कुछ अन्य मूर्ति स्वरूपों को भी शिव के अनुग्रह स्वरूप के अन्तर्गत रखकर उनका अध्ययन किया गया है। इनमें गंगाधर एवं यमान्तक (कालारि) मूर्तियों का विशेष रूप से अध्ययन हुआ है। गंगाधर स्वरूप में गंगा को धारण कर भगीरथ पर और यमान्तक रूप में यम को दण्डित कर भक्त मार्कण्डेय पर शिव ने अनुग्रह किया था। फलतः दोनों मूर्ति स्वरूपों को अनुग्रह मूर्तियों की परिधि में रखा गया है। कुछ मूर्ति स्वरूपों यथा—चण्डेशानुग्रह, विष्ण्वनुग्रह के मूर्त उदाहरण केवल दक्षिण भारत के पुरास्थलों से ही उपलब्ध हैं तथा कुछ स्वरूप जैसे नन्दीशानुग्रह एवं विघ्नेश्वरानुग्रह केवल शास्त्रों में ही उपलब्ध हैं—इन विषयों पर भी सम्यक् विचार किया गया है। शिव की अनुग्रह मूर्तियों की दृष्टि से इस पुस्तक में अब तक ज्ञात एवं प्रकाशित सामग्रियों के उल्लेख और विवेचन के साथ ही कई महत्त्वपूर्ण बिन्दुओं पर भी चर्चा की गयी है। मूर्ति स्वरूपों के प्रतिमालाक्षणिक विकास एवं परिवर्तन को विश्लेषणात्मक दृष्टि से प्रस्तुत कर इस अध्ययन को पूर्णता प्रदान करने का प्रयास किया गया है। मुझे विश्वास है कि पाठक मेरे इस प्रयास का स्वागत कर मेरा उत्साहवर्धन करेंगे।

इस पुस्तक में कुल आठ अध्याय हैं। प्रस्तावना से सम्बन्धित प्रथम अध्याय में विषय चयन एवं अध्ययन-स्रोत तथा कार्य प्रणाली की चर्चा की गयी है। द्वितीय अध्याय में शिव और शिव के स्वरूपों के विकास का निरूपण हुआ

है। तृतीय से सप्तम् अध्याय में अलग-अलग अनुग्रह मूर्ति स्वरूपों की स्वतन्त्र एवं विस्तृत चर्चा की गयी है। प्रत्येक अध्याय के अन्त में निष्कर्ष भी दिया गया है। तृतीय अध्याय रावणानुग्रह, चतुर्थ अध्याय अर्जुनानुग्रह एवं पंचम् अध्याय चण्डेशानुग्रह मूर्तियों से सम्बन्धित हैं जिनमें पूरे विस्तार के साथ मूर्ति स्वरूपों का अध्ययन हुआ है। षष्ठ अध्याय में विष्णवनुग्रह एवं नन्दीशानुग्रह मूर्ति स्वरूपों का अध्यन हुआ है जिनके मूर्त उदाहरण अन्य अनुग्रह मूर्तियों की तुलना में अत्यल्प हैं। सप्तम् अध्याय में विघ्नेश्वरानुग्रह मूर्ति तथा गंगाधर एवं मार्कण्डेयानुग्रह मूर्तियों का अध्ययन किया गया है। अन्तिम अध्याय उपसंहार के रूप में है जिसमें सम्पूर्ण अध्ययन के निष्कर्षों को संक्षेप में प्रस्तुत किया गया है। अन्त में दो मूर्ति तालिकाएँ, सन्दर्भ-सूची, रेखाचित्र-सूची एवं चित्र-सूची तथा शब्दानुक्रमणिका और रेखाचित्र (४) एवं चित्र (४५) दिये गये हैं।

इस पुस्तक की पूर्णता में गुरुजनों, आत्मीयजनों तथा विभिन्न संस्थानों, पुस्तकालयों एवं संग्रहालयों से मुझे असीम स्नेह, आशीर्वाद और सहयोग प्राप्त हुआ है जिसके लिए सभी के प्रति आभार प्रकट करना मैं अपना कर्तव्य समझता हूँ।

एक सामान्य विद्यार्थी से शोधार्थी बनने की प्रक्रिया में तथा प्रस्तुत पुस्तक के लेखन की प्रारम्भिक प्रेरणा से इतिश्री तक जिन्होंने हरकदम पर मेरा उत्साहवर्धन और मार्गदर्शन किया और विभिन्न समस्याओं के समाधान में सदैव मेरी सहायता की एवं जो प्रत्येक दृष्टि से इस कार्य के प्रेरणा-स्रोत रहे हैं ऐसे प्रातः स्मरणीय गुरुवर डॉ० मारुति नन्दन तिवारी जी (प्रोफेसर, कला-इतिहास विभाग, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय) के प्रति कृतज्ञता ज्ञापित करना मैं अपना प्रथम कर्तव्य समझता हूँ। ईश्वर से प्रार्थना है कि उनका आशीर्वाद सदैव मुझ पर बना रहे।

विविध रूपों में सहयोग एवं उत्साहवर्धन के लिए मैं कला-इतिहास विभाग, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय के गुरुजनों प्रो० कमल गिरि, प्रो० दीनबन्धु पाण्डेय, प्रो० कल्याण कृष्ण एवं अन्य सभी के प्रति अपना आभार व्यक्त करता हूँ।

समय-समय पर मुझे डॉ० एन०पी० जोशी (पूर्व निदेशक, राज्य संग्रहालय, लखनऊ), प्रो० आर०सी० शर्मा (मानद् निदेशक, ज्ञान प्रवाह, वाराणसी), प्रो० एम०ए० ढाकी (निदेशक, अमेरिकन इन्स्टीट्यूट ऑफ इण्डियन स्टडीज़, गुड़गाँव), डॉ० टी०के० विश्वास (निदेशक, भारत कला भवन, वाराणसी) एवं प्रो० एस०के० सुल्लेरे (प्राचीन भारतीय इतिहास, संस्कृति एवं पुरातत्त्व विभाग, जबलपुर विश्वविद्यालय, जबलपुर) जैसे विद्वानों का भी आशीर्वाद उनके परामर्शों के रूप में प्राप्त हुआ है, जिसके लिए मैं सभी का ऋणी रहूँगा।

इस कार्य की पूर्णता में अमेरिकन इन्स्टीट्यूट ऑफ इण्डियन स्टडीज़, गुड़गांव एवं भारत कला भवन, वाराणसी के पुस्तकालयों से पूरी सहायता मिली है जिसके लिए मैं दोनों संस्थाओं का आभारी हूँ। पुस्तक में दिये गये ४३ चित्रों के

लिए मैं अमेरिकन इन्स्टीट्यूट ऑफ इण्डियन स्टडीज़, गुड़गाँव के प्रति विशेष आभार व्यक्त करता हूँ। साथ ही भारत कला भवन, वाराणसी से प्राप्त एक चित्र के लिए संस्था का आभारी हूँ। रेखा चित्रों को तैयार करने में मुझे डॉ० शकुन्तला मौर्य से सहयोग मिला है। मैं उनको भी धन्यवाद देता हूँ। विभिन्न पुरास्थलों एवं संग्रहालयों की यात्रा और वहाँ की सामग्रियों के अध्ययन में स्थानीय अधिकारियों से जो सहयोग मिला है, उसके लिए मैं उन सबको समवेत रूप से धन्यवाद देता हूँ।

इस अवसर पर मैं आदरणीया पितामही श्रीमती राधाप्यारी एवं पितामह श्री सत्यानन्द सिन्हा के श्रीचरणों में अपना प्रणाम निवेदन करता हूँ क्योंकि उनके आशीर्वाद और उत्साहवर्धन से ही यह कार्य पूर्ण हो सका है। साथ ही आदरणीया माँ श्रीमती रामावती सिन्हा एवं पिताश्री श्री अमर नाथ सिन्हा के चरणों में भी नमन् करता हूँ, जिनके अविरल स्नेह, उत्साहवर्धन और त्याग को इस कार्य की पूर्णता का कारण मानता हूँ। इस कार्य की पूर्णता में पत्नी श्रीमती कामिनी सिन्हा को बराबर का सहभागी मानता हूँ जिनके बिना इस कार्य को पूरा करना सम्भव ही नहीं हो पाता। काफी समय तक घर की जिम्मेदारियों से मुक्त रखकर उन्होंने धैर्यपूर्वक जो सहयोग दिया है, उसके लिए उनकी प्रशंसा करना अपना धर्म समझता हूँ।

कार्य सम्पादन के विभिन्न चरणों मुख्यतः संशोधन आदि में मित्रों एवं शुभेच्छुओं से भी बहुविध सहायता मिली है। इस प्रसंग में डॉ० आनन्द प्रकाश श्रीवास्तव, गोविन्द कुमार वर्मा, विनोद कुमार (क्यूरेटर, भारत कला भवन, वाराणसी), डॉ० आभा मिश्रा एवं डॉ० विनय कुमार सिंह के सहयोग अविस्मरणीय हैं। मैं इन सभी को हार्दिक धन्यवाद देता हूँ। इस कार्य में विशेषतः श्री देवनाथ मणि त्रिपाठी का अनेकत्र सहयोग सर्वदा स्मरणीय है, जिसके लिए मैं उनका ऋणी रहूँगा।

इस पुस्तक के प्रकाशन के लिए भारतीय इतिहास अनुसंधान परिषद्, नई दिल्ली से आर्थिक अनुदान प्राप्त हुआ है, जिसके लिए मैं संस्था का विशेष रूप से आभारी हूँ।

पुस्तक के सुन्दर एवं शीघ्र प्रकाशन के लिए विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी के संचालक श्री पुरुषोत्तमदास मोदी एवं उनके विनायक स्वरूप पुत्र श्री अनुराग मोदी तथा श्री पराग मोदी को भी मैं अपना हार्दिक धन्यवाद देता हूँ।

अन्त में मैं कृपानिधान शिव से प्रार्थना करता हूँ कि हम सभी को उनका अनुग्रह प्राप्त हो।

महाशिवरात्रि, मार्च २००३ **शान्ति स्वरूप सिन्हा**

विषय-सूची

				पृष्ठ
उपोद्घात				v
आमुख				ix
संकेत-सूची				xv
प्रथम	:	प्रस्तावना		१
द्वितीय	:	शिव और उनका अनुग्रह स्वरूप		८
तृतीय	:	रावणानुग्रह मूर्तियाँ		१७
चतुर्थ	:	अर्जुनानुग्रह मूर्तियाँ		६५
पञ्चम	:	चण्डेशानुग्रह मूर्तियाँ		१०१
षष्ठ	:	विष्णवनुग्रह एवं नन्दीशानुग्रह मूर्तियाँ		१७७
सप्तम	:	अन्य अनुग्रह मूर्ति स्वरूप		१३३
		(i) विघ्नेश्वरानुग्रह	१३४	
		(ii) मार्कण्डेयानुग्रह (या यमान्तक)	१३८	
		(iii) गंगाधर	१३९	
अष्टम	:	उपसंहार		१४१
		सन्दर्भ ग्रन्थ-सूची		१४८
		परिशिष्ट : अनुग्रह मूर्ति-तालिकाएँ		१६४
		रेखाचित्र-सूची		१६९
		चित्र-सूची		१६९
		शब्दानुक्रमणिका		१७२

संकेत-सूची

आ०अ०मे०सा०इ०	:	आइकोनोग्राफी ऑफ अर्ली मेडिवल साउथ इण्डिया (शैव), (लेखक-राजू कालिदास)
ए०ब्रा०दे०प्र	:	एलोरा की ब्राह्मण देव प्रतिमाएँ (लेखक-आनन्द प्रकाश श्रीवास्तव)
ए०शै०प्र०	:	एलोरा की शैव प्रतिमाएँ (लेखक-आनन्द प्रकाश श्रीवास्तव)
ए०हि०आ०	:	एलिमेण्ट्स ऑफ हिन्दू आइकोनोग्राफी (लेखक-टी०ए० गोपीनाथ रॉव)
कि०इ०आ०	:	किरातार्जुनीयम् इन इण्डियन आर्ट (लेखक-एम०एस०नागराज रॉव)
डे०हि०आ०	:	डेवलपमेण्ट ऑफ हिन्दू आइकोनोग्राफी (लेखक-जे०एन०बनर्जी)
पू०नि०	:	पूर्व निर्दिष्ट
म०भा०प्र०	:	मध्यकालीन भारतीय प्रतिमालक्षण (लेखक-मारुति नन्दन प्रसाद तिवारी एवं कमल गिरि)
म०भा०मू०	:	मध्यकालीन भारतीय मूर्तिकला (लेखक-मारुति नन्दन प्रसाद तिवारी एवं कमल गिरि)
ल०	:	लगभग

प्रथम अध्याय

प्रस्तावना

शिव वैदिक-पौराणिक धर्म के प्रमुख देवता हैं, जिन्हें मुख्यतः जगत् के संहार कार्यों से सम्बद्ध माना गया है। जगत् की सृष्टि एवं स्थिति क्रमशः ब्रह्मा एवं विष्णु से सम्बद्ध है। वैदिक-पौराणिक धर्म की देवत्रयी के ऐक्य का भाव साहित्य और मूर्त उदाहरणों दोनों में व्यक्त हुआ है। संघात अथवा संयुक्त स्वरूपों में 'हरिहरपितामह' या 'दत्तात्रेय' स्वरूप में यह ऐक्य द्रष्टव्य है। वैदिक ऋचाओं में परमसत्ता या ईश्वर के मूलतः एक होने का सन्दर्भ मिलता है, जिसे विद्वान् या आचार्य अलग-अलग नामों से अभिहित करते हैं।

एकं सद् विप्राः बहुधा वदन्ति....।

ऋग्वेद १/१६४/४६

वैदिक-पौराणिक धर्म के पाँच सम्प्रदायों में शिव से सम्बन्धित शैव सम्प्रदाय प्रमुख है जिसके प्रधान देवता शिव हैं। सम्प्रदाय की अवधारणा पहली-दूसरी शती ई० के आस-पास प्रारम्भ होती है, जिसके अन्तर्गत अलग-अलग सम्प्रदायों में अलग-अलग देवताओं की केन्द्रीय स्थिति रही है। इस परिवर्तन ने देवताओं के नवीन स्वरूपों की अवधारणा, उनके लक्षणों के निर्धारण तथा विपुल संख्या में अलग-अलग स्वरूपों में मूर्तियों के निर्माण का मार्ग प्रशस्त किया। वैदिक-पौराणिक धर्म की दृष्टि से पुराणों का काल (ल० पाँचवीं से १३वीं शती ई०) इस विकास का मूलाधार रहा है। सम्प्रदाय की चेतना के कारण वैष्णव, शैव, शाक्त धर्मों में विष्णु, शिव एवं शक्ति की श्रेष्ठता का भाव प्रकट हुआ, जो नूतन मूर्ति स्वरूपों की सर्जना में भी अभिव्यक्त है। इस प्रवृत्ति ने धर्म और देव-मूर्तियों तथा प्रतिमालक्षण के विकास की गति को तेज किया। देव-स्वरूपों के विस्तार के कारण प्रतिमालाक्षणिक ग्रन्थों की अनिवार्यता और शिल्पी की उन पर निर्भरता बढ़ गयी। इसी कारण मध्यकालीन मूर्तियाँ विशेषकर देव-मूर्तियाँ विवरण और लक्षणप्रधान रही हैं। विवरण और लक्षण की प्रधानता के बाद भी विभिन्न देव-मूर्तियों की अवधारणा एवं स्वरूप निर्धारण की पृष्ठभूमि में तत्कालीन समाज का सामूहिक चिन्तन प्रतिबिम्बित है। विभिन्न सम्प्रदायों के बीच की कटुता एवं अन्तर्द्वन्द्व धार्मिक के साथ ही सामाजिक समस्या भी थी, जिसका परिहार पूर्ववर्ती अर्द्धनारीश्वर एवं हरिहर स्वरूपों की संयुक्त मूर्तियों की

कल्पना में कई नवीन स्वरूपों को जोड़कर किया गया। ऐसी मूर्तियों के उदाहरण ल० सातवीं से १३वीं शती ई० के मध्य उत्तर एवं दक्षिण भारत के सभी पुरास्थलों पर पर्याप्त संख्या में उपलब्ध हैं। मन्दिर चाहे विष्णु का हो, शिव का हो, शक्ति का हो, सूर्य का हो या किसी अन्य देवता का उस पर शिव-शक्ति, शिव-विष्णु, ब्रह्मा-विष्णु-शिव, ब्रह्मा-विष्णु-शिव-सूर्य, सूर्य-विष्णु, सूर्य-ब्रह्मा से सम्बन्धित संयुक्त या संघात स्वरूपों की मूर्तियाँ भी उकेरी गयीं, जिनका अर्धनारीश्वर, हरिहर, हरिहरपितामह, हरिहरपितामह-सूर्य (या हरिहरहिरण्य-गर्भ), मार्त्तण्ड-भैरव, सूर्यनारायण, सूर्य-ब्रह्मा नामों से उल्लेख हुआ है। ओसियाँ, खजुराहो, भुवनेश्वर जैसे स्थलों पर (ल०आठवीं से १२वीं शती ई० के मध्य) पञ्चायतन शैली के मन्दिरों का भी निर्माण हुआ। ल० पाँचवीं-छठी शती ई० से ऐसे शिवलिङ्गों का भी निर्माण हुआ, जिनमें शिवलिङ्ग के चारों ओर विष्णु, सूर्य, शक्ति एवं गणेश की मानवाकृतियाँ उकेरी गयीं और इस प्रकार पञ्चायतन पूजन या पञ्चोपासना का भाव व्यक्त किया गया। इनमें कभी-कभी ब्रह्मा को भी दिखाया गया है। शिवलिङ्ग की केन्द्रीय स्थिति से शिव के महत्त्व का संकेत मिलता है।

शिव को महेश, महादेव, महेश्वर भी कहा गया है और पञ्चायतन स्वरूप में उन्हें सृष्टि के पाँच मूल तत्त्वों से सम्बद्ध किया गया है—

नमः सृष्ट्यादिकर्त्रे च नमः पञ्चमुखाय ते।
पञ्चब्रह्मस्वरूपाय पञ्चकृत्याय ते नमः॥

शिवपुराण, विद्येश्वर संहिता, १०/२८-३०

शिव संहार के देवता होते हुए भी अपने नाम के अनुरूप मूलतः शुभ या मङ्गलकारी और जगत् के कल्याण से सम्बन्धित रहे हैं। शिव का स्वरूप अत्यन्त व्यापक रहा है और सृष्टि के संहार या विलय के कार्य से सम्बद्ध होने के बाद भी उनका कल्याण या शिवत्व-भाव उनके मूर्ति-स्वरूपों में प्रधान रहा है। शिव की संहार मूर्तियों में भी किसी न किसी रूप में जगत् के कल्याण का भाव ही निहित है, प्रसंग चाहे अन्धक के संहार का हो या त्रिपुरवासी असुरों या फिर गजासुर के संहार का।

प्रस्तुत पुस्तक में शिव की अनुग्रह मूर्तियों का विस्तृत अध्ययन किया गया है। यह अध्ययन प्रतिमालाक्षणिक दृष्टि के साथ ही अनुग्रह मूर्ति स्वरूपों के विकास, उनके क्षेत्रीय वैशिष्ट्य, किसी क्षेत्रविशेष में कुछ मूर्ति स्वरूपों की उपलब्धता या अनुपलब्धता की दृष्टि से किया गया है। यह अध्ययन अखिल भारतीय स्तर पर अनुग्रह मूर्तियों के अध्ययन से सम्बन्धित है, जिसमें प्रारम्भ से १३वीं शती ई० के मध्य के उदाहरणों का अध्ययन उनकी शिल्प-शास्त्रीय परम्परा की पृष्ठभूमि में किया गया है।

शिव तथा उनके विभिन्न स्वरूपों के महत्त्व और शिव-तत्त्व की दार्शनिक व्याख्या पर पूर्व में अनेक विद्वानों ने व्यापक दृष्टि से कार्य किये हैं। शिव के प्रतिमालाक्षणिक स्वरूपों पर भी अनेक विद्वानों ने कार्य किये हैं जिनमें ए०के० कुमारस्वामी[१], वी०एस० अग्रवाल[२], टी०ए० गोपीनाथ राव, जे०एन० बनर्जी, स्टेला क्रैमरिश, सी० शिवराममूर्ति, आर०जी० भण्डारकर[३], एस०एल० नागर[४], गयाचरण त्रिपाठी[५], जी० कृष्णमेनन[६], सर मोनियर विलियम्स[७], वी०एस० पाठक[८] एवं सम्पूर्णानन्द[९] जैसे विद्वान् प्रमुख हैं।

प्रस्तुत पुस्तक में पुराणों एवं अन्य ग्रन्थों के अवगाहन के साथ ही पुरास्थलों एवं संग्रहालयों से प्राप्त शिव की अनुग्रह मूर्तियों को अध्ययन का आधार बनाया गया है। यथासम्भव स्वयं विभिन्न स्थलों पर जाकर मैंने मूर्तियों के अध्ययन का भी प्रयास किया है। इस पुस्तक में अनुग्रह मूर्तियों के विकास को अलग-अलग स्थलों के सन्दर्भ में उनकी सम्पूर्णता और क्षेत्रीय वैशिष्ट्य की दृष्टि से समझने और प्रस्तुत करने की चेष्टा की गयी है। स्थलगत अध्ययन से ज्ञात हुआ कि किसी विशेष स्थल पर कुछ विशेष अनुग्रह स्वरूपों की ही मूर्तियाँ बनीं और उनके निरूपण में भी विविधता देखने को मिली।

शिव की अनुग्रह मूर्तियों के अध्ययन की दृष्टि से टी०ए० गोपीनाथ राव एवं जे०एन० बनर्जी के महत्त्वपूर्ण ग्रन्थों के अतिरिक्त बी०एन० शर्मा[१०], एस०डी० त्रिवेदी[११], आर०सी० अग्रवाल[१२], एम०एन०पी० तिवारी एवं कमल गिरि[१३], एम०एस० नागराज राव[१४], के०वी०सुन्दरराजन्[१५], राजू कालिदास[१६], स्टेला क्रैमरिश[१७], एन०पी० जोशी[१८], सी० शिवराममूर्ति[१९], ओ०सी गांगुली[२०], बी०पी० सिन्हा[२१], आर०एस० गर्ग[२२], आनन्द प्रकाश श्रीवास्तव[२३], सी०पी० सिन्हा[२४], एम०ए० ढ़ाकी, एम० नागराजन्, एस०आर० बालसुब्रह्मण्यम्, एस०के० मैती, के०आर श्रीनिवासन्[२५], आशा कालिया एवं दुर्गा नन्दन तिवारी[२६] के कार्य भी प्रमुख हैं।

शिव के प्रतिमा निरूपण से सम्बन्धित विभिन्न ग्रन्थों में यद्यपि शिव के अनुग्रह स्वरूपों का उल्लेख हुआ है परन्तु उनमें ऐतिहासिक दृष्टि से न तो पुराणों एवं प्रतिमाशास्त्रीय ग्रन्थों का ही अपेक्षित सन्दर्भ आया है और न ही पुरास्थलों के उदाहरणों का पूरा उल्लेख हुआ है। जे०एन० बनर्जी एवं टी०ए० गोपीनाथ राव के ग्रन्थों में अनुग्रह स्वरूपों की संक्षेप में चर्चा हुई है। पिछले ३०-४० वर्षों में भारत के विभिन्न क्षेत्रों में विपुल संख्या में मन्दिर और अनुग्रह मूर्तियों के उदाहरण प्राप्त हुए हैं। अतः अध्ययन पद्धति की प्रक्रिया में अनुग्रह मूर्ति स्वरूपों के विकास के पुनर्मूल्यांकन की भी आवश्यकता थी। इसीलिये अनुग्रह मूर्तियों के स्वतन्त्र और विस्तृत अध्ययन का प्रयास किया गया है।

रामायण, महाभारत तथा कालिदास एवं भारवि कृत ग्रन्थों के साथ ही उत्तर एवं दक्षिण भारत के शिल्पशास्त्रीय परम्परा के ग्रन्थों और साथ ही मध्यकालीन अभिलेखों में आये सन्दर्भों का भी विस्तृत अध्ययन आवश्यक था।

मैंने मुख्य रूप से भुवनेश्वर, एलोरा, महाबलीपुरम्, कांचीपुरम्, तंजौर, दारासुरम्, कुम्भकोणम्, चिदम्बरम् एवं खजुराहो जैसे स्थलों पर जाकर वहाँ की अनुग्रह मूर्तियों का उनकी सम्पूर्णता में और सूक्ष्मता के साथ अध्ययन का प्रयास किया है। संग्रहालयों में मैंने मुख्यतः भारत कला भवन, वाराणसी; इलाहाबाद संग्रहालय, इलाहाबाद; राज्य संग्रहालय, लखनऊ; जार्डीन संग्रहालय, खजुराहो; रीवा संग्रहालय, रीवा; राजकीय संग्रहालय, भोपाल; बिड़ला संग्रहालय, भोपाल; सिटी पैलेस संग्रहालय, जयपुर; तंजौर आर्ट गैलरी, तंजौर; शासकीय संग्रहालय, चेन्नई; भारतीय संग्रहालय, कोलकता एवं राष्ट्रीय संग्रहालय, नई दिल्ली में संगृहीत मूर्तियों का अध्ययन किया है।

प्रस्तुत पुस्तक में जिन पुरास्थलों की सामग्रियों का उपयोग किया गया है उनमें बादामी, अयहोल, पट्टडकल (ल० छठी से आठवीं शती ई०), महाबलीपुरम्, कांचीपुरम् (ल० सातवीं से आठवीं शती ई०), एलिफेण्टा (ल० सातवीं से आठवीं शती ई०), एलोरा (ल० सातवीं से नवीं शती ई०), तंजौर (ल० १००० ई०), गंगैकोण्डचोलपुरम्, (ल० ११वीं शती ई०), दारासुरम्, कुम्भकोणम् एवं चिदम्बरम् (सभी ल० १२वीं शती ई०), हलेबीड, बेलूर एवं सोमनाथपुर (ल० १२वीं -१३वीं शती ई०), भुवनेश्वर (ल० सातवीं से १३वीं शती ई०) प्रमुख हैं।

साहित्यिक साक्ष्यों में *तैत्तिरीयसंहिता, रामायण, महाभारत* के अतिरिक्त कालिदास के *कुमारसम्भव, मेघदूत, रघुवंश* एवं भारवि के *किरातार्जुनीयम्* तथा माघ कृत *शिशुपालवध* का भी उपयोग किया गया है। यहाँ उल्लेखनीय है कि महाकाव्यों एवं प्रारम्भिक ग्रन्थों के सन्दर्भों के आधार पर ही भारतीय कला में सर्वप्रथम रावणानुग्रह एवं अर्जुनानुग्रह स्वरूपों का अंकन हुआ। *विष्णुधर्मोत्तर पुराण* (ल० छठी-सातवीं शती ई०) एवं *वराहपुराण* (ल० छठी-सातवीं शती ई०), *शिवपुराण* (ल० छठी शती ई०), *वामनपुराण* (ल० छठी-आठवीं शती ई०), *लिङ्गपुराण* (ल० सातवीं-आठवीं शती ई०) के सन्दर्भों का भी यथेष्ट उपयोग किया गया है, जिनसे शिव के अनुग्रह स्वरूपों को समझने का आधार मिला। ग्रन्थों से ही शिव की अनुग्रह मूर्तियों में विभिन्न आकृतियों की पहचान एवं परम्परा से भिन्न क्षेत्रीय विशिष्टताओं को रेखांकित करने का आधार भी मिला है। इन ग्रन्थों में रावणानुग्रह, अर्जुनानुग्रह, चण्डेशानुग्रह, विष्णवनुग्रह (चक्रदान मूर्ति), नन्दीशानुग्रह एवं विघ्नेश्वरानुग्रह स्वरूपों का उल्लेख मिलता

है। भुवनेश्वर के सातवीं शती ई० के शत्रुघ्नेश्वर मन्दिर की रावणानुग्रह मूर्ति में गणेश, कार्त्तिकेय और शक्ति का अपने आयुधों के साथ रावण पर आक्रमण की मुद्रा में निरूपण पुराणों में सर्वथा अवर्णित तथा क्षेत्रीय वैशिष्ट्य का ऐसा ही एक उदाहरण है।

उपर्युक्त ग्रन्थों के अतिरिक्त उत्तर एवं दक्षिण भारतीय शिल्पशास्त्रीय परम्परा के ग्रन्थों का भी सम्यक् अध्ययन किया गया है। उत्तर भारतीय प्रतिमालाक्षणिक ग्रन्थों में—*बृहत्संहिता* (वराहमिहिर कृत, ल० छठी शती ई०), *समराङ्गणसूत्रधार* (भोजदेव कृत, ल० ११वीं शती ई०), *अपराजितपृच्छा* (भुवनदेव कृत, ल० १२वीं से १३वीं शती ई० का मध्य) एवं *रूपमण्डन* (सूत्रधार मण्डन कृत, ल० १५वीं शती ई०) तथा दक्षिण भारतीय शिल्पशास्त्रीय ग्रन्थों में *अंशुमद्भेदागम्* (ल० १३वीं शती ई०), *कामिकागम्, सुप्रभेदागम्* (ल० १५वीं-१६वीं शती ई०) एवं *शिल्परत्न* (ल० १६वीं शती ई०) मुख्य हैं। इस अध्ययन से ज्ञात हुआ कि उत्तर भारतीय शिल्पशास्त्रों में अनुग्रह स्वरूपों का सामान्यतः अनुल्लेख है जबकि दक्षिण भारतीय आगम-ग्रन्थों में अनुग्रह स्वरूपों के लक्षणों से सम्बन्धित विस्तृत सन्दर्भ मिलते हैं।

इस पुस्तक में शिव की अनुग्रह मूर्तियों के अन्तर्गत रावणानुग्रह, अर्जुनानुग्रह (पाशुपतदान मूर्ति), चण्डेशानुग्रह, विष्ण्वनुग्रह (चक्रदान मूर्ति), नन्दीशानुग्रह एवं विघ्नेश्वरानुग्रह स्वरूपों का अध्ययन किया गया है। अनुग्रह भाव की अभिव्यक्ति के कारण यमान्तक एवं गंगाधर जैसे मूर्ति स्वरूपों का भी इस ग्रन्थ में अध्ययन हुआ है। इन दोनों ही स्वरूपों में मार्कण्डेय एवं भगीरथ पर शिव के अनुग्रह का भाव व्यक्त हुआ है।

पाद-टिप्पणी

१. ए०के० कुमारस्वामी, *मिथ्स ऑफ दि हिन्दू ऐण्ड बुद्धिस्ट,* लन्दन, १९२०
२. वी०एस० अग्रवाल, *शिव-महादेव दि ग्रेट गॉड,* वाराणसी, १९६६; *मास्टरपीसेज ऑफ मथुरा स्कल्प्चर,* वाराणसी, १९६५; *भारतीय कला,* वाराणसी १९७७
३. आर०जी० भण्डारकर, *वैष्णविज्म, शैविज्म ऐण्ड माइनर रिलिजेंस सिस्टम्स,* वाराणसी, १९६५
४. एस०एल० नागर, *शिव इन आर्ट, लिट्रेचर ऐण्ड थॉट,* नई दिल्ली, १९९४
५. गयाचरण त्रिपाठी, *वैदिक देवता—उद्भव एवं विकास,* वाराणसी, १९८२
६. जी० कृष्ण मेनन, *महाभारत में रुद्र,* वाराणसी, १९७९
७. सर मोनियर विलियम्स, *हिन्दू धर्म,* मानसिंह (अनु०), वाराणसी, १९८४

८. वी०एस० पाठक, *हिस्ट्री ऑफ शिव कल्ट इन नॉर्दर्न इण्डिया फ्रॉम इन्स्क्रिप्शन्स* (७००-१२०० ई०), वाराणसी, १९६०
९. सम्पूर्णानन्द, *हिन्दू देव परिवार का विकास,* इलाहाबाद, १९६४
१०. बी०एन० शर्मा, रावण लिफ्टिंग माउण्ट कैलाश इन इण्डियन आर्ट, ईस्ट ऐण्ड वेस्ट, खं० २३, अं० तीन-चार, सितम्बर-दिसम्बर, १९७३, पृ० ३२७-३३८
११. एस०डी० त्रिवेदी, *स्कल्प्चर्स इन दि झाँसी म्यूजियम,* झाँसी, १९८३; "सम रावणानुग्रह आइकन्स फ्रॉम सेन्ट्रल इण्डिया, ए एप्राइज़ल", *पुरातन,* खं० आठ, १९९१, पृ० ३८-४९
१२. आर०सी० अग्रवाल "रावण अपलिफ्टिंग दि कैलाश—ऐन अनपब्लिश्ड स्टोन रिलीफ फ्रॉम राजस्थान", *भारतीय विद्या,* खं० १६ (तीन-चार), १९५६, पृ० ५३
१३. एम०एन०पी० तिवारी एवं कमल गिरि, *मध्यकालीन भारतीय मूर्तिकला,* वाराणसी, १९९१
१४. एम०एस० नागराज राव, *किरातार्जुनीयम् इन इण्डियन आर्ट,* दिल्ली, १९७९
१५. के०वी० सुन्दर राजन्, *आर्ट ऑफ साउथ इण्डिया, तमिलनाडु ऐण्ड केरल,* दिल्ली, १९७८
१६. राजू कालिदास, *आइकोनोग्राफी ऑफ अर्ली मेडिवल साउथ इण्डिया (शैव),* खं० दो, तंजौर, १९८६
१७. स्टेला क्रैमरिश, *इण्डियन कल्चर,* दिल्ली, १९८१; *दि प्रेजेन्स ऑफ शिव,* फिलाडेल्फिया, १९८१; *दि मेनीफेस्टेशन्स ऑफ शिव,* फिलाडेल्फिया, १९८१
१८. एन०पी० जोशी, *मथुरा की मूर्तिकला,* मथुरा, १९६६; *प्राचीन भारतीय मूर्ति विज्ञान,* पटना, १९८१; *ब्रह्मैनिकल स्कल्प्चर इन दि स्टेट म्यूजियम,* लखनऊ, १९८९
१९. सी० शिवराममूर्ति, "जियोग्राफिकल एण्ड क्रोनोलॉजिकल फैक्टर इन इण्डियन आइकोनोग्राफी", *ऐंशियेण्ट इण्डिया,* खं० छः, १९५०, पृ० ३१-६३; *साउथ इण्डियन ब्रोन्जेज,* नई दिल्ली, १९६३; *मास्टरपीसेज़ स्कल्प्चर इन दि नेशनल म्यूजियम,* नई दिल्ली , १९७१
२०. ओ०सी० गांगुली, *दि आर्ट ऑफ पल्लव,* बम्बई, १९५७; *दि आर्ट ऑफ राष्ट्रकूट,* कलकत्ता, १९५८
२१. बी०पी० सिन्हा, *भारतीय कला को बिहार की देन,* पटना, १९५०
२२. आर०एस० गर्ग, *शैव प्रतिमाएँ,* भोपाल, १९९०
२३. आनन्द प्रकाश श्रीवास्तव, *एलोरा की ब्राह्मण देव प्रतिमाएँ,* इलाहाबाद, १९८८; *एलोरा की शैव प्रतिमाएँ,* नई दिल्ली १९९३
२४. सी०पी० सिन्हा, *अर्ली स्कल्प्चर ऑफ बिहार,* पटना, १९८०

२५. एम०ए० ढ़ाकी, चोल स्कल्प्चर, *गोल्डेन जुबली वाल्यूम (छवि)*, राय आनन्द कृष्ण एवं सिंह (सम्पा०), खं० २९, वाराणसी, १९७१, पृ० २६३–८९; एम० नागराजन्, ''किरात इन दि लेटर मेडिवल आर्ट ऑफ तमिलनाडु'', *ईस्ट ऐण्ड वेस्ट*, खं० ४३, अं० एक-चार, दिसम्बर १९९३, पृ० २९५–२९९; एस०आर० बालासुब्रह्मण्यम्, *अर्ली चोल टेम्पुल्स*, दिल्ली, १९७१ : *मेडिवल चोल टेम्पुल्स*, हरियाणा, १९७५; *लैटर चोल टेम्पुल्स*, नई दिल्ली, १९७९; एस०के० मैती, *मास्टरपीसेज़ ऑफ होयसल आर्ट*, बम्बई, १९७८; *मास्टरपीसेज़ ऑफ पल्लव आर्ट*, बम्बई, *१९८२;* के०आर० श्रीनिवासन्, *दि धर्मराज रथ ऐण्ड इट्स स्कल्प्चर्स*, नई दिल्ली, १९७५

२६. आशा कालिया, *आर्ट ऑफ ओसियाँ टेम्पुल्स*, नई दिल्ली, १९८२; दुर्गा नन्दन तिवारी, *ओसियां के मन्दिरों की देव-मूर्तियाँ*, वाराणसी, १९९९

द्वितीय अध्याय

शिव और उनका अनुग्रह स्वरूप

वस्तुतः वेदों में वर्णित रुद्र एवं अग्नि से ही कालान्तर में शिव का विकास हुआ यद्यपि सैन्धव सभ्यता के अवशेषों में भी शिव-पूजा के संकेत हैं। इसी कारण शिव के स्वरूपों में रौद्र-स्वरूप के तत्त्वों का भी समावेश हुआ। मूर्तियों में विशेषतः चोल काल की नटेश मूर्तियों में शिव के एक हाथ में ज्वाला का दिखाया जाना और शिव के सम्पूर्ण शरीर को आवृत्त करते प्रभामण्डल का ज्वालामय होना भी वैदिक-परम्परा का स्मरण कराता है।

वैदिक-साहित्य में रुद्र की व्याख्या दो रूपों में की गयी है—संहारक एवं शान्त स्वरूप। संहारक स्वरूप में रुद्र तेजोमय भाव को धारण करने वाले द्विपदों (मानव) व चतुष्पदों का संहार करने वाले देवता हैं।[१] दूसरी ओर स्तुति करने पर वे अनुग्रह स्वरूप मानव एवं पशुओं की रक्षा भी करते हैं।[२] वस्तुतः रुद्र और शिव दो न होकर एक ही हैं और *अथर्ववेद* में उनके स्वरूप व नामों का संकेत भी मिलता है जिसमें उन्हें कृष्णोदर, लालपीठ वाला, धनुर्धारी, नीलकेशी और सहस्राक्ष कहा गया है।

अव्या नील शिखण्डेन सहस्राक्षेण व जिना।
रुद्रेणार्क घातिनातेन यां स्मरामहि॥

अथर्ववेद ११/२/६-७

रुद्र को वैदिक-साहित्य में अग्नि अथवा सूर्य का पर्याय माना गया है, साथ ही उनकी उत्पत्ति समस्त देवताओं के उग्र अंश के समन्वय से हुई बतायी गयी है।[३] *अथर्ववेद* में रुद्र को आकाश, अंतरिक्ष, पशुओं एवं भूतों का स्वामी बताते हुए उन्हें 'भूतपति' के नाम से भी अभिहित किया गया है।[४]

संहिताओं में रुद्र का स्वरूप और विकसित हुआ जिसके अन्तर्गत उन्हें अनेक नामों तथा नामों से विकसित सन्दर्भों के साथ जोड़ा गया। *शतरुद्रीय संहिता* में 'गिरीश' *तैत्तिरीय संहिता* में 'गिरित्र'[५] और *वाजसनेय संहिता* में उन्हें 'कृत्तिवासस्'[६] कहा गया है। उपनिषद्-साहित्य काल तक रुद्र एवं शिव एक रूप हो गये। साथ ही साथ दोनों संस्कृतियों (आर्य एवं अनार्य) के मूल तत्त्व सम्मिलित होकर नवीन मूल तत्त्व में अन्तर्निहित हो गये थे, इसी कारण रुद्र-तत्त्व

एवं शिव-तत्त्व के एकात्मस्वरूप शिवलिङ्ग को प्रारम्भ में ब्राह्मण वर्ग द्वारा त्याज्य माना गया, परन्तु कालान्तर में वे उसके प्रमुख आराध्य भी हुए। उपनिषद्-साहित्य में लिङ्ग-योनि की चर्चा 'विश्वानिरूपाणि' के रूप में मिलती है।

सूत्रों में शिव को अधिकतर शिव अथवा शंकर नाम से सम्बोधित किया गया है।[७] इसके अतिरिक्त उनकी चर्चा रुद्र, भव, महादेव और भूपति के रूप में की गयी है।[८] *बौधायनगृह्यसूत्र* में विष्णु सहित शिव तथा शिवलिङ्ग-स्वरूप की मूर्ति स्थापना की चर्चा हुई है। कालान्तर में वैदिक-साहित्यों में अनुपलब्ध त्रिनेत्र, नीलग्रीव, व्याघ्रचर्मधारी व सर्पों की माला धारण करने वाले शिव का सन्दर्भ भी मिलता है। *शतपथ ब्राह्मण* में वर्णित अग्नि के आठ नामों में रुद्र का भी उल्लेख हुआ है। सम्भवतः इसी से पुराण-काल में शिव के आठ मुखों की अवधारणा का आधार बना हो। इसी प्रकार तीन गुणों (सत्त्व, रज, तम), चारों वेदों एवं पाँच प्राकृतिक तत्त्वों (आकाश, जल, पृथ्वी, अग्नि एवं वायु) से शिव के तीन, चार और पाँच मुखों की अवधारणा विकसित हुई हो सकती है।

महाकाव्य-काल तक आते-आते शिव एक महत्त्वपूर्ण देवता के रूप में स्थापित हो चुके थे। *महाभारत* में महेश्वर या भव की पूजा लिङ्ग रूप में किये जाने का सन्दर्भ है। महाकाव्यों (*महाभारत* व *रामायण*) के काल तक शिव, रुद्र एवं शिवलिङ्ग दोनों ही रूपों में स्थापित हो चुके थे। *रामायण* में लंकाधिपति रावण द्वारा शिव भक्ति द्वारा कई अलौकिक शक्तियों का स्वामी होना एवं रावण पर विजय प्राप्त करने हेतु राम द्वारा बालुकालिङ्ग की स्थापना का प्रसङ्ग और *महाभारत* में पाण्डवनायक अर्जुन की तपस्या तथा पात्रता की परीक्षा के पश्चात् पाशुपतास्त्र प्रदान करने का सन्दर्भ महत्त्वपूर्ण है। साथ ही विष्णु अवतार स्वरूप श्रीकृष्ण वासुदेव द्वारा शिव-महिमा का गान जैसे सन्दर्भ महाकाव्य-काल में शिव की प्रतिष्ठा के प्रमाण हैं। इसके अतिरिक्त *महाभारत* में शिव द्वारा त्रिपुर दानवों के संहार एवं कमान्तक-शिव की कथा का उल्लेख उनके संहारक स्वरूपों की व्याख्या करता है।[९] *महाभारत* में शिव द्वारा विष्णु को कृपापूर्वक चक्र प्रदान करने का उल्लेख भी अनुग्रहकारी स्वरूप से सन्दर्भित है।

पाणिनि ने *अष्टाध्यायी* में रुद्र के लिए 'भव' एवं 'शर्व' नामों का उपयोग किया है। पाणिनि की *अष्टाध्यायी* पर *महाभाष्य* लिखने वाले पातञ्जलि ने *अष्टाध्यायी* में उल्लिखित नामों के अतिरिक्त रुद्र के लिए शिव, गिरीश व महादेव नामों का उल्लेख करते हुए उनकी मूर्ति निर्माण और पूजन की बात भी कही है।[१०] पूजा के निमित्त शिवलिङ्ग का प्राचीनतम् उदाहरण मौर्यकालीन एवं भीटा से प्राप्त है तथा वर्तमान में राज्य संग्रहालय, लखनऊ (क्रमांक-एच० ४) में सुरक्षित है।

शुङ्ग-सातवाहन काल तक शैव-सम्प्रदाय के रूप में शिव से सम्बन्धित धर्म स्वतन्त्र रूप से अस्तित्व में आ चुका था। इस सम्प्रदाय के लोग शिव-चिह्न के रूप में त्रिशूल धारण करते थे और उन्हें 'अयः शूल' और 'आयः शूलिक' कहा जाता था। इसी काल में लकुलीश नामक आचार्य हुए, जिन्होंने शिवभक्तों को संगठित कर 'पाशुपत-धर्म' की नींव रखी। कालान्तर में आचार्य लकुलीश शिव के २८वें अवतार के रूप में प्रतिष्ठित हुए।[११] बाद में पाशुपत मत से ही शैव-सम्प्रदाय की अन्य शाखाओं और दर्शन का प्रादुर्भाव हुआ। इस काल में समकालीन राजाओं ने भी शिव को प्रमुख आराध्य के रूप में स्वीकार किया, जिसके अन्तर्गत राजाओं ने शिव से सम्बन्धित उपाधियाँ—'शिवश्री', 'शिव-स्कन्द', 'रुद्र-सातकर्णी' धारण कीं।[१२] शिव के व्यापक प्रभाव से विदेशी शासक भी अप्रभावित न रह सके, परिणामस्वरूप मथुरा पर शासन करने वाले कुछ विदेशी शासकों के 'शिवदत्त' एवं 'शिव-घोष' जैसे नाम शिव की लोकप्रियता को प्रमाणित करते हैं।[१३]

कुषाण शासकों (ल० पहली-दूसरी शती ई०) की मुद्राओं पर शिव के प्रारम्भिक किन्तु प्रतिमालाक्षणिक दृष्टि से विविधतापूर्ण अंकन मिले हैं। कुषाण शासकों में मुख्यतः विम-कडफाइसिस, कनिष्क, हुविष्क एवं वासुदेव की मुद्राओं पर प्रतीक एवं मानव दोनों रूपों में शिव का अंकन मिलता है।[१४]

कुषाण शासकों की मुद्राओं पर प्रतीक के रूप में त्रिशूल, परशु और नन्दीपद का अंकन मिलता है। मानव-रूप में शिव द्विभुज अथवा चतुर्भुज और स्थानक दिखाये गये हैं। कुषाण कालीन मुद्राओं पर शिव साधारणतः ऊर्ध्वलिङ्ग हैं। शिव कभी एकल तो कभी नन्दी पृष्ठ पर टेक लगाकर स्थानक स्वरूप में निरूपित किये गये हैं। कुछ मुद्राओं पर शिव को त्रिमुख भी दिखाया गया है जो एलिफेण्टा एवं एलोरा की परवर्त्ती महेश मूर्तियों की कल्पना की पृष्ठभूमि की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण है। कुषाण मुद्राओं पर शिव के पारम्परिक आयुधों (परशु, त्रिशूल, मृग, डमरू) के अतिरिक्त कुछ अन्य आयुधों यथा—जलकलश, वज्र, पद्म, दण्ड, गदा एवं अंकुश का भी अंकन हुआ है। कुषाण शासकों की मुद्राओं और उन पर शिव की आकृतियों के लक्षण प्रस्तर मूर्तियों से अधिक विकसित और वैविध्यपूर्ण हैं। इनमें कुछ ऐसी विशेषतायें हैं जैसे—शिव के साथ परशु एवं मृग का दिखाया जाना, शिव का ऊर्ध्वलिङ्ग होना जो बाद में विशेषकर दक्षिण भारत के ही उदाहरणों में द्रष्टव्य है।

विदिशा, पद्मावती के शैव धर्मावलम्बी नागवंशी शासक स्वयं को भारशिव कहते थे, क्योंकि ये अपने कन्धे पर शिवलिङ्ग धारण करते थे।[१५] इन नागवंशी शासकों की मुद्राओं पर शैव धर्म के प्रतीक के रूप में त्रिशूल और नन्दी की आकृतियों का अंकन मिलता है।

गुप्तकाल में शैव सम्प्रदाय तथा शैव परिवार का और अधिक विकास हुआ। पार्वती, गणेश, कार्त्तिकेय, शृंगी ऋषि एवं गणों को शिव से सम्बद्ध किया गया एवं उनका मूर्तिगत निरूपण भी प्रारम्भ हुआ।[१६] गुप्तकाल में ही पुराणों की रचना प्रारम्भ हुई जो १२वीं-१३वीं ई० तक होती रही। मुख्यतः पुराणों में वर्णित कथाओं के आधार पर शिव के विभिन्न स्वरूपों का विकास हुआ और गुप्तकाल के बाद की शताब्दियों में उनका शिल्पांकन हुआ। गुप्तकाल में *रामायण, महाभारत* एवं कालिदास की रचनाओं में वर्णित रावणानुग्रह एवं अर्जुनाग्रह स्वरूपों के आधार पर ही पाँचवीं-छठी शती ई० में इन स्वरूपों की मूर्तियाँ बनीं। उल्लेखनीय है कि शिव के अनुग्रह स्वरूपों में रावणानुग्रह और अर्जुनानुग्रह स्वरूपों की सर्वाधिक मूर्तियाँ बनीं और उनमें काल और क्षेत्र के सन्दर्भ में सर्वाधिक विविधता भी मिलती है। *महाभारत* में विष्ण्वनुग्रह की कथा का संकेत मिलता है, जिसकी पृष्ठभूमि में आठवीं शती ई० में कांचीपुरम् के कैलाशनाथ मन्दिर पर विष्ण्वनुग्रह स्वरूप की मूर्ति उकेरी गयी। कालिदास के *कुमारसम्भव* में शिव को सृष्टिकर्ता, पालनकर्ता एवं संहारकर्ता बताया गया है। साथ ही उनको गौरीशंकर, महादेव, चन्द्रशेखर, त्रिलोचन, नीलकण्ठ आदि नामों से भी अभिहित किया गया है।[१७]

गुप्तकाल और बाद के शैव पुराणों एवं आगम-ग्रन्थों में शिव को एक विराट् सन्दर्भ में देखा गया है। इस मान्यता पर बल दिया गया कि महेश या महादेव के रूप में शिव जगत् की सृष्टि, स्थिति एवं विलय का कार्य एक साथ सम्पादित करते हैं। महाबलीपुरम् के ल० सातवीं शती ई० के पल्लव कालीन अभिलेख सहित कई अन्य अभिलेखों में शिव को जगत् के सृष्टि, पालन एवं संहार का कारक बतलाया गया है। शिव को शंकर एवं रुद्र के अतिरिक्त महेश, महादेव, महेश्वर, विश्वनाथ, शम्भु, ईश्वर, नीलकण्ठ, त्र्यम्बक, पशुपति, भूतनाथ, त्रिपुरारि, उमापति, पञ्चानन, नटेश, सदाशिव, दक्षिणामूर्ति, गंगाधर, गिरीश, पिनाकी, शूलपाणि, विश्वमूर्ति, विश्वदेव, जितमन्मथ (कामारि), शशांकशेखर, चन्द्रशेखर, भवसृज, प्रमथनाथ, मृत्युञ्जय, वैद्यनाथ, केदार, जटाधर एवं सोमनाथ आदि नामों से अभिहित किया गया है। उपरोक्त नामों को शिव की व्यापकता के रूप में देखा जा सकता है।

गुप्तकाल में शिव को समर्पित स्वतन्त्र मन्दिरों का निर्माण भी प्रारम्भ हुआ, जिसके प्रारम्भिक उदाहरण मध्य प्रदेश स्थित भूमरा, कुण्डा (शंकरमध), तिगोवा (जबलपुर) एवं नचना-कुठारा के महादेव मन्दिर हैं। उत्तर प्रदेश में अहिछत्रा स्थित शिव मन्दिर प्रमुख है।[१८] विकास के क्रम में ल० सातवीं से १३वीं शती ई० के मध्य भारत के विभिन्न क्षेत्रों में शिव को समर्पित अनेक

मन्दिर बने जिनकी भित्तियों, शिखरों, प्रवेश-द्वारों (गोपुरम्) तथा अन्य भागों पर प्रभूत संख्या में देवमूर्तियों का निर्माण हुआ है। इन मन्दिरों में कैलाशनाथ मन्दिर (कांचीपुरम्, आठवीं शती ई०); कैलाश मन्दिर (एलोरा, आठवीं शती ई०); परशुरामेश्वर, शत्रुघ्नेश्वर, स्वर्णजालेश्वर, शिशिरेश्वर एवं लिंगराज मन्दिर (भुवनेश्वर, सातवीं-११वीं शती ई०); विश्वनाथ एवं कन्दरिया महादेव मन्दिर (खजुराहो, ११वीं शती ई०); बृहदीश्वर मन्दिर (तंजौर, १००० ई०), बृहदीश्वर मन्दिर (गंगैकोण्डचोलपुरम्, १०२५ ई०), नागेश्वर मन्दिर (कुम्भकोणम्, १२वीं शती ई०), ऐरावतेश्वर मन्दिर (दारासुरम्, १२वीं शती ई०), नटराज मन्दिर (चिदम्बरम्, १२वीं-१३वीं शती ई०) एवं शिव मन्दिर (सोमनाथपुर, १३वीं शती ई०) महत्त्वपूर्ण हैं।

वायुपुराण में महादेव के स्वरूप या उनके नामों रुद्र, भव, शिव, पशुपति, ईश, महादेव का विस्तार से उल्लेख हुआ है। *मत्स्यपुराण* में रुद्र के नाम से शिव की दसभुजी प्रतिमा बनाये जाने का सन्दर्भ है जिसमें जटामुकुट व चन्द्र से शोभित तरुण रूप शिव को व्याघ्र-चर्मधारी और करों में खेटक, कपाल, खट्वांग, नाग, खड्ग, शक्ति, दण्ड व त्रिशूलधारी निरूपित करने का विधान किया गया है। कुछ बाद के पुराणों *शिवपुराण* व *लिङ्गपुराण* में शिव के संहार स्वरूपों के अतिरिक्त शिव के अनुग्रहकारी स्वरूपों किरातार्जुन या अर्जुनानुग्रह, विष्ण्वनुग्रह, नन्दीशानुग्रह की भी कथा का विस्तार से उल्लेख हुआ है। *वराह* एवं *स्कन्दपुराण* में भी शिव के अन्य कथा सन्दर्भों के साथ-साथ शिव के विभिन्न अनुग्रह स्वरूपों (नन्दीशानुग्रह एवं विघ्नेश्वरानुग्रह) की भी चर्चा हुई है। नन्दीशानुग्रह एवं विघ्नेश्वरानुग्रह स्वरूप केवल शास्त्रों तक ही सीमित रहे हैं, इनके मूर्त उदाहरण नहीं प्राप्त होते हैं। चण्डेशानुग्रह स्वरूप केवल दक्षिण भारतीय परम्परा में मिलता है जिसके प्रारम्भिक उदाहरण पल्लव कला में कांचीपुरम् के कैलाशनाथ मन्दिर पर द्रष्टव्य हैं। इस स्वरूप का निरूपण *मयमत* (ल० ११वीं-१२वीं शती ई०) में उपलब्ध है और बाद के कुछ मूर्त उदाहरण चोल पुरास्थलों (तंजौर, गंगैकोण्डचोलपुरम् कुम्भकोणम्, चिदम्बरम्) से प्राप्त होते हैं।

गुप्त अभिलेखों में शिव की स्तुति किये जाने का सन्दर्भ मिलता है जिसमें यशोधर्मन विष्णुवर्धन के मन्दसौर अभिलेख में शूलपाणि (शिव) द्वारा असुरों के संहार की बात कही गयी है।[१९] ईशान वर्मन् के 'हरहा अभिलेख' (५४४ ई०) में सृष्टिकर्ता भव (शिव) को त्रिपुर राक्षस का संहार तथा सम्पूर्ण जीवात्माओं का कल्याण करने वाला बताया गया है। इसके लेख में शिव का स्तवन करते हुए उनसे अमर-पद प्रदान करने की प्रार्थना भी की गयी है, साथ ही स्तवन के रूप में शिव के मस्तक पर चन्द्र एवं शरीर पर सर्पों का उल्लेख भी हुआ है।[२०]

'उदयगिरि के शिलालेख' में शिव-शक्ति से प्रभावित होकर गुहा-निर्माण का उल्लेख आया है।[२१]

मध्य प्रदेश के रीवा के 'चन्द्रेहे लेख' (ल० ९७२ ई०) में शिव की स्तुति 'चण्डीपति' के रूप में हुई है। एक अन्य मध्यकालीन लेख में त्रिपुर संहार के पश्चात् शिव द्वारा सम्पादित ताण्डव-नृत्य का उल्लेख हुआ है (त्रिपुरविजयि-ताण्डवक्रीडितानि)। कई अन्य लेखों में शिव के ताण्डव-नृत्य की भयंकरता और उससे सम्पूर्ण सृष्टि और देवताओं में उत्पन्न भय के सन्दर्भ के साथ ही उससे मुक्त करने की प्रार्थना भी नटराज शिव से की गयी।[२२]

अभिलेखों में अधिकतर रावणानुग्रह स्वरूप का ही उल्लेख हुआ है। इन अभिलेखों में राजा के बल-पौरुष को शिव के समान बतलाया गया है। इनमें पल्लव कालीन सप्तरथ अभिलेख (सातवीं शती ई०)[२३] और कलचुरि कालीन अभिलेख (अमोदा ताम्रपत्र लेख, १०७९ ई०; डैकोनी ताम्रपत्र लेख, ११३८ ई०; बिलैगढ़ ताम्रपत्र लेख, ११६७ ई० तथा बनारस ताम्रपत्र लेख, १०४१ ई०) प्रमुख हैं, जिनमें रावण द्वारा कैलाश पर्वत उठाने के फलस्वरूप उत्पन्न भय के कारण पार्वती के सहमकर शिव के निकट आने का उल्लेख हुआ है। साथ ही शिव द्वारा रावण पर अनुग्रह किए जाने का भी उल्लेख हुआ है।[२४]

उपरोक्त पारम्परिक, कथात्मक एवं अभिलेखीय साक्ष्यों की पृष्ठभूमि में ही मध्यकाल में शिव के अनेकानेक स्वरूपों की कल्पना की गयी और उनके आधार पर मूर्तियों का निर्माण हुआ, जिनके उदाहरण स्वतन्त्र रूप से तथा विभिन्न राजवंशों द्वारा निर्मित शैव एवं शैवेतर मन्दिरों पर देखे जा सकते हैं।

ल० छठी-सातवीं से १०वीं शती ई० के मध्य के विकास के फलस्वरूप शिव के सामान्य एवं संहार स्वरूपों के साथ ही कई अन्य स्वरूपों का भी विकास हुआ जिन्हें पूर्व मध्यकाल और मध्यकाल में शैव धर्म के विकास की पृष्ठभूमि में समझा जा सकता है। मानव-विग्रह के साथ ही लिङ्ग-विग्रह स्वरूपों की मूर्तियाँ भी बनीं। शिव के अनेक स्वरूपों की कल्पना के बाद भी विभिन्न क्षेत्रों के मन्दिरों में शिवलिङ्ग की ही प्रतिष्ठा की गई जो प्रकृति के मूलभूत तत्त्व के प्रति श्रद्धा का सूचक है।

शिव के स्वरूपों का व्यापक विस्तार तथा मन्दिर एवं मूर्तियों का निर्माण उनकी लोकाधार शक्ति का परिचायक है। शिव के स्वरूप एवं लक्षणों के अंकन में क्षेत्रविशेष का चिन्तन और उसकी प्राथमिकता परिलक्षित होती है, जिसमें शिव को मृग, सर्प, व्याघ्र-चर्म, नर-मुण्ड, गण, भूत, पिशाचों के साथ भी निरूपित किया गया।

शिव के अंकन में लोकपरक जनजातीय तत्त्वों के समन्वय का सबसे सशक्त उदाहरण मध्य प्रदेश के बिलासपुर स्थित तालागाँव से प्राप्त शिव की मूर्ति है। इस

विरल महाकाय मूर्ति (ल० आठवीं-नवीं शती ई०) में शिव के स्कन्ध, कर्ण-लोलक एवं पाद भाग पर सर्प, व्याघ्र, कर्क व शुक की आकृतियों का अंकन हुआ है, साथ ही वक्ष, उदर एवं पाद भाग पर नौ अलग-अलग मुखाकृतियाँ भी द्रष्टव्य हैं। कहने का तात्पर्य यह है कि शिव ऐसे सरल और सुलभ देवता बन गये कि उन्हें प्रत्येक वर्ग और जाति ने अपने हृदय में स्थान दिया।

कालान्तर में शैव मत का विभाजन पाशुपत, कालामुख, कापालिक और वीरशैव रूप में हुआ। शैव-सम्प्रदाय के उपसम्प्रदाय के रूप में पाशुपत-सम्प्रदाय दक्षिण भारत में विशेषरूप से लोकप्रिय था तथा कापालिक को भी पाशुपत-सम्प्रदाय की ही एक शाखा के रूप में मान्यता मिली। वीरशैव-सम्प्रदाय के अनुयायियों को लिङ्गायत-सम्प्रदाय के नाम से भी जाना जाता है। कालान्तर में और भी उपशाखाएँ अस्तित्व में आयीं परन्तु मुख्य रूप से घोर और वाममार्गी दो ही शाखायें लोकव्यवहार में अधिक लोकप्रिय रहीं। इस प्रकार शैव धर्म और दर्शन का १२वीं शती ई० तक अनेक स्तरों में विकास हुआ।

भारतीय कला में शिव का अंकन प्रायः तीन रूपों में हुआ है जिनमें प्रतीक-रूप (लिङ्गविग्रह, मुखलिङ्ग, लिङ्गोद्भव एवं त्रिशूल), पशु-रूप (वृषभ या नन्दी) एवं मानव-विग्रह मुख्य हैं। इनके अतिरिक्त मध्यकालीन भारतीय मूर्तिकला में शिव के कुछ विशिष्ट स्वरूपों का भी अंकन हुआ है। इनमें महेश मूर्ति (एलिफैण्टा, एलोरा, पधावली, ग्यारसपुर), अष्टमूर्ति शिव (परेल, मुम्बई) एवं चतुष्पाद और षड्मुख सदाशिव (खजुराहो), अजएकपाद (भुवनेश्वर), एकादशमुखीरुद्र (आन्ध्र प्रदेश के गोदावरी जिले में स्थित पेड्डुवेंगी) और नौ मुखों वाली महाप्रमाण मूर्ति (तालागाँव, बिलासपुर, मध्य प्रदेश) विशेषतः उल्लेखनीय हैं।[२५]

पुराणों अथवा प्रतिमालाक्षणिक ग्रन्थों में सामान्यतः शिव के विभिन्न स्वरूपों के वर्गीकरण का प्रयास नहीं किया गया है। केवल *समराङ्गण सूत्रधार* में शिव के सौम्य एवं संहार स्वरूपों का उल्लेख है।[२६] शिव के मानव-विग्रह स्वरूपों को मुख्यतः चार वर्गों में बाँट सकते हैं। *सौम्य* या *शान्त स्वरूप* (एकल शिव, उमा-महेश्वर, लकुलीश, दक्षिणामूर्ति, कल्याण-सुन्दर, गंगाधर, चन्द्रशेखर); *अनुग्रह* (रावणानुग्रह, किरातार्जुन या अर्जुनानुग्रह, चण्डेशानुग्रह, विष्णवनुग्रह या चक्रदान मूर्ति, नन्दीशानुग्रह, विघ्नेश्वरानुग्रह); *संहार* (यमान्तक, त्रिपुरान्तक, अन्धकारि, गजान्तक, कामान्तक, शरभेष, ब्रह्मशिरच्छेदक, भैरव, वीरभद्र, जालन्धर वध) एवं *अन्य स्वरूपों* में नटराज, अजएकपाद, सदाशिव, महेश, एकादश रुद्र, विशापहरण मूर्ति एवं संघात या संयुक्त मूर्तियाँ। शिव का नटेश या नटराज स्वरूप सौम्य एवं संहारक दोनों ही स्वरूपों का द्योतक है। अतः इसे एक अलग वर्ग में रखना उपयुक्त होगा।

शिव की अनुग्रह मूर्तियों का एक स्वतन्त्र वर्ग है, जिसके साहित्यिक सन्दर्भ *रामायण* एवं *महाभारत* एवं मूर्त उदाहरण गुप्तकाल से मिलने लगते हैं। भारतीय कला में इन स्वरूपों की सातवीं से १३वीं शती ई० के मध्य विभिन्न क्षेत्रों में मूर्तियाँ बनीं, जिनके उदाहरण एलोरा एवं भुवनेश्वर के अतिरिक्त अधिकांशतः दक्षिण भारत के चालुक्य, पल्लव, चोल, होयसल कालीन मन्दिरों पर द्रष्टव्य हैं। ये उदाहरण मुख्यतः पट्टडकल, महाबलीपुरम्, कांचीपुरम्, तंजौर, गंगैकोण्डचोलपुरम्, दारासुरम्, चिदम्बरम्, हलेबीड, बेलूर एवं सोमनाथपुर से प्राप्त हैं।[२७] रावणानुग्रह और अर्जुनानुग्रह स्वरूपों की मूर्तियाँ दक्षिण भारत के लगभग सभी स्थलों से मिलती हैं, वहीं चण्डेशानुग्रह और विष्ण्वनुग्रह स्वरूप मुख्यतः पल्लव एवं चोल मन्दिरों पर उत्कीर्ण किये गये हैं। इन स्वरूपों में भक्तों पर शिव के अनुग्रह भाव का रूपायन अलग-अलग रूपों में दिखाया गया है। रावणानुग्रह स्वरूप में रावण को खड्ग प्रदान करने, चण्डेशानुग्रह स्वरूप में चण्डेश के मस्तक पर पुष्प की माला से उष्णीष बाँधने, अर्जुनानुग्रह स्वरूप में अर्जुन को पाशुपतास्त्र देने और विष्ण्वनुग्रह स्वरूप में विष्णु को चक्र प्रदान करने की मुद्रा में शिव का रूपायन उनकी असीम कृपा का सूचक है। शिव का यह अनुग्रह बिना किसी भेद के रावण जैसे असुर, अर्जुन जैसे धनुर्धर, चण्डेश जैसे भक्त और सृष्टि के पालक विष्णु तक को समान रूप से प्राप्त होता है, जो देवता के महादेव या महेश्वर रूप के अनुरूप है। नन्दीशानुग्रह स्वरूप में उनकी कृपा नन्दी को भी प्राप्त होती है। यही शिव का शिवत्व है। अन्य पारम्परिक अनुग्रह स्वरूपों के साथ ही यमान्तक और गंगाधर स्वरूपों में भी शिव के अनुग्रह का भाव रेखांकित है और इसी कारण प्रस्तुत पुस्तक में इन स्वरूपों का भी अध्ययन किया गया है। यमान्तक स्वरूप में शिव यम को दण्डित करते हैं लेकिन इस कार्य का कारण शिव-भक्त मार्कण्डेय हैं जिन्हें शिव का अनुग्रह प्राप्त होता है। इसी प्रकार गंगाधर स्वरूप में भगीरथ की तपस्या के फलस्वरूप उन्हें शिव का अनुग्रह प्राप्त होता है। गंगाधर स्वरूप में भक्त की इच्छा के अनुरूप शिव अनुग्रहपूर्वक गंगा को धारण कर पृथ्वी पर उनके आगमन का मार्ग प्रशस्त करते हैं। गंगा के वेग को जटाओं में धारण करना और इस प्रकार पृथ्वी पर उनके आगमन को सहज करना सम्पूर्ण जगत् के प्रति शिव के मंगल भाव का सूचक है।

पाद-टिप्पणी

१. *ऋग्वेद*, ७-४६-३; १-११४-१०
२. *यजुर्वेद*, १६-२-३
३. *एतरेय ब्राह्मण*, ३.३३.१

४. *अथर्ववेद,* ११-२-९
५. *तैत्तिरीय संहिता,* ७-५-१
६. *वाजसनेय संहिता,* अध्याय १६
७. एस०बी० सिंह, *ब्रह्मैनिकल आइकोनोग्राफी इन नॉर्थ इण्डिया,* दिल्ली, १९७७, पृ० ४
८. *शांखायन श्रौतसूत्र,* ५-३-२
९. मीना संड, शिव की संहार प्रतिमाएँ, *अप्रकाशित शोधप्रबन्ध,* कला-इतिहास विभाग, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, सितम्बर १९९३, पृ० १८
१०. *अष्टाध्यायी,* ४-१-४९
११. आर०जी० भण्डारकर, *वैष्णव-शैव एवं अन्य धार्मिक मत,* वाराणसी १९७८, पृ० १३४
१२. वी०स्मिथ, *अर्ली हिस्ट्री ऑफ इण्डिया,* लन्दन, १९६२, पृ० १९०
१३. राजबली पाण्डेय, *प्राचीन भारत,* वाराणसी, १९७७, पृ० २०४
१४. सविता शर्मा एवं एम०एन०पी० तिवारी, 'शिव ऑन कुषाण क्वायंस' *जर्नल ऑफ दि न्यूमिस्मैटिक सोसाइटी ऑफ इण्डिया,* १९८३, पृ० ३४-४९
१५. आर०सी० मजूमदार (सम्पा०) , *दि एज ऑफ इम्पीरियल यूनिटी,* बम्बई, १९६०, पृ० १६९
१६. *म०भा०प्र०,* पृ० १९-२०
१७. *कुमारसम्भव,* ६/२३
१८. पी०के० अग्रवाल, *गुप्त टेम्पुल आर्किटेक्चर,* वाराणसी, १९६८
१९. उदय नारायण राय, *गुप्त राजवंश तथा उसका युग,* इलाहाबाद, १९७७, पृ० ७-५१
२०. एस०एन० राजगुरु, *इन्वोकेटरी वर्सेस फ्रॉम इन्स्क्रिप्शन्स,* खं० दो, भुवनेश्वर, १९७३, पृ० ७
२१. उदय नारायण राय, *पू०नि०,* पृ० ७-५१
२२. एस०एन० राजगुरु, *पू०नि०,* पृ० ३८-३९
२३. वही
२४. बालचन्द्र जैन, *उत्कीर्ण लेख,* रायपुर, १९६१, पृ० ६७-१३७
२५. *म०भा०प्र०,* पृ० २०-२१
२६. *प्रबन्धचिन्तामणि,* पृ० १०२, १०४
२७. *म०भा०प्र०,* पृ० २२

तृतीय अध्याय

रावणानुग्रह मूर्तियाँ

शिव के अनुग्रह स्वरूपों में प्रारम्भिक एवं बहुप्रचलित मूर्ति स्वरूप रावणानुग्रह स्वरूप है, जिनकी मूर्तियाँ शिव की अन्य किसी भी अनुग्रह स्वरूप की तुलना में सबसे अधिक उकेरी गयीं। इस स्वरूप की मूर्तियों के उदाहरण प्राय: गुप्तकाल से लेकर मध्यकाल तक तथा उसके बाद के काल में भी उपलब्ध हैं। प्रस्तर, धातु तथा मृत्तिका—तीनों उपादानों में इस स्वरूप के उदाहरण भारत में प्राय: प्रत्येक कला-केन्द्र से विपुल संख्या में उपलब्ध हैं। बाद के कुछ चित्रों में भी इस स्वरूप का अंकन हुआ है जो रावणानुग्रह स्वरूप की लोकप्रियता को प्रमाणित करता है।

रावणानुग्रह स्वरूप का कथात्मक वर्णन वाल्मीकि कृत *रामायण* (उत्तर-काण्ड, अध्याय १६) एवं *शिवपुराण* में विस्तारपूर्वक किया गया है, जबकि कालिदास कृत *रघुवंश* (४/८०/१२,८९), *मेघदूत* (१/६२), *कुमारसम्भव* (८/२४) तथा माघ कृत *शिशुपालवध* (१/५०) में भी इस स्वरूप के सन्दर्भ मिलते हैं। रावणानुग्रह स्वरूप का प्रतिमालाक्षणिक सन्दर्भ उत्तर अथवा दक्षिण भारत के किसी भी शिल्पशास्त्रीय ग्रन्थ में प्राप्त नहीं होता है परन्तु पल्लव एवं कलचुरि कालीन अभिलेखों में इस स्वरूप का उल्लेख हुआ है।

वाल्मीकि कृत *रामायण* के अनुसार दशानन अपने भाई कुबेर को पराजित कर आकाश-मार्ग से लंका जा रहा था, उसी समय जब उसका विमान (पुष्पक) कैलाश के ऊपर पहुँचा तो गतिहीन हो गया। अपने विमान को इस प्रकार गतिहीन होते देख दशानन क्षुब्ध हो गया और कारण जानने के लिये वह विमान से नीचे उतरा। वानरमुख वाले नन्दिकेश्वर से रावण को यह ज्ञात हुआ कि शिव-पार्वती विहार कर रहे हैं अतएव देव, दानव, गन्धर्व किसी को भी कैलाश पर जाने की अनुमति नहीं है। इस प्रकार की बातों को सुनकर एवं वानरमुखी नन्दिकेश्वर को देखकर दशानन उपहास के रूप में अट्टहास कर उठा। इस पर नन्दिकेश्वर ने रावण को वानरमुखी प्राणी द्वारा ही उसके संहार का शाप दिया। नन्दिकेश्वर के वचन को सुनकर दशानन अत्यन्त क्रोधित हो उठा—

इति नन्दिवचः श्रुत्वा क्रोधात् कम्पितकुण्डलः।

उत्तरकाण्ड, १६/११

दम्भ और क्रोध के कारण अभिमानी दशानन ने शिव समेत कैलाश उठा ले जाने का निश्चय किया।

रोषात् तु ताम्रनयनः पुष्पकादवरुह्य सः।
कोऽयं शङ्कर इत्युक्त्वा शैलमूलमुपागतः॥

उत्तरकाण्ड, १६/१२

इस कारण नन्दिकेश्वर और दशानन के बीच भयंकर युद्ध हुआ और अन्ततः पुलस्त्यपुत्र दशानन ने नन्दिकेश्वर को परास्त किया। कैलाश को बाहुबल से उठाने के उपक्रम में दशानन किञ्चित् सफल भी रहा जिससे पर्वत में कम्पन की स्थिति पैदा हो गयी थी।

.........तोलयामास तं शीघ्रं स शैलः समकम्पत॥

उत्तरकाण्ड, १६/२५

फलस्वरूप पार्वतीसहित कैलाश स्थित गण एवं पशु-पक्षीजनों में भय का संचार हो गया और पार्वती ने पर्वत के चलायमान होने के कारण भयवश महादेव शिव को कस कर पकड़ लिया। पर अविचलित शिव ने शान्त भाव से अपने पैर के अँगूठे-मात्र के भार से पर्वत को दबा दिया—

चालनात् पर्वतस्यैव गणा देवस्य कम्पिताः।
चचाल पार्वती चापि तदाश्लिष्टा महेश्वरम्॥
ततो राम महादेवो देवानां प्रवरो हरः।
पादाङ्गुष्ठेन तं शैलं पीडयामास लीलया॥

उत्तरकाण्ड, १६/२६-२७

फलस्वरूप दशानन की भुजायें पर्वत खण्ड के नीचे शिव के अँगूठे के भार से दब गईं और दशानन चीत्कार उठा। दशानन एक हजार वर्षों तक निरन्तर इसी प्रकार रुदन करता रहा। इस पीड़ा से मुक्ति के लिये अपने मन्त्रियों से प्राप्त परामर्श, जिसमें शिव-स्तुति द्वारा ही इस बन्धन से छुटकारा पाने की बात कही गयी थी, के अनुसार दशानन ने शिव की स्तुति की। दशानन के इस प्रकार अनवरत रुदन के कारण ही उसका नाम 'रावण' विख्यात हुआ।

यस्माल्लोकत्रयं चैतद् रावितं भयमागतम्।
तस्मात् त्वंरावणो नाम नाम्ना राजन् भविष्यसि॥

उत्तरकाण्ड, १६/३७

रावण द्वारा इस प्रकार कातर अवस्था में प्रार्थना करने से शिव प्रसन्न हुए और अनुग्रह करते हुए उन्होंने रावण को 'चन्द्रहास' खड्ग प्रदान किया। साथ ही यावत्जीवन पृथ्वी पर राज्य करने का आशीर्वाद भी दिया।[१]

एवमुक्तस्ततस्तेनं रावणेन स शङ्करः।
ददौ खड्गं महादीप्तं चन्द्रहासमिति श्रुतम्॥
आयुषश्चावशेषं च ददौ भूतपतिस्तदा॥

उत्तरकाण्ड, १६/४३-४४

शिवपुराण में वर्णित कथा के अनुसार शिव कैलाश पर्वत के मानसरोवर के समीप अपने अन्तःपुर में पार्वती के साथ विश्राम कर रहे थे, उसी समय उनका अनन्य भक्त रावण उनसे मिलने आया। गणों द्वारा रोके जाने पर रावण को आवेश आ गया और अपने आराध्यदेव को लंका में अपने पास रखने के विचार से दम्भस्वरूप रावण ने कैलाश पर्वत को ही साथ ले जाने का प्रयास किया । पर्वत के हिलने-मात्र से ही शिव को सम्पूर्ण घटना का भान हो गया तब उन्होंने सहज भाव से पर्वत पर अपने पैर के अँगूठे को टिका दिया। जिससे अनेक प्रयास करने के बाद भी रावण पर्वत को हिला न सका और अपनी पराजय स्वीकार करते हुए उसने एक हजार वर्षों तक शिव की पूजा की और उन्हें प्रसन्न करके वरदानस्वरूप खड्ग प्राप्त किया।

इसी प्रकार एक अन्य कथा के अनुसार स्वयं शिव ने रुष्ट पार्वती को मनाने के लिये रावण को इस कार्य के लिए प्रोत्साहित किया था। रावण के प्रयास की सफलता से शिव अत्यन्त प्रसन्न हुए।[२]

कालिदास कृत काव्यों में इस स्वरूप से सम्बन्धित वर्णन मिलता है जिसमें सांकेतिक रूप से रावण द्वारा पर्वत उठाये जाने, पर्वत-प्रकम्पन से पार्वती में भय का संचार होने और परिणामस्वरूप भयवश शिव से लिपटने तथा पार्वती के इस प्रकार समीप आने से शिव के प्रसन्न होने का सन्दर्भ मिलता है।

तत्राक्षोभ्यं यशोराशिं निवेश्यावरुरोह सः।
पौलस्त्यतुलितस्याद्रेरादधान इव ह्रियम्॥

रघुवंश, ४/८०

जेतारं लोकपालानं स्वमुखैरर्चितेश्वरम्।
रामस्तुलितकैलासमरातिं बह्वमन्यत॥

रघुवंश, १२/८९

गत्वा चोर्ध्वं दशमुखभुजोच्छ्वासितप्रस्थसंधेः
कैलासस्य त्रिदशवनितादर्पणस्यातिथिः स्या।

मेघदूत, पूर्वमेघ/५८

रावणध्वनितभीतया तया कण्ठसक्तमृदुबाहुबन्धनः।
एकपिङ्गलगिरौ जगद्गुरुर्निर्विवेश विशदाः शशिप्रभाः॥

कुमारसम्भव, ८/२४

महाकवि माघ कृत *शिशुपालवध* में कालिदास के काव्यों की भाँति संकेत-रूप में रावणानुग्रह का सन्दर्भ मिलता है, जिसके अनुसार रावण द्वारा कैलाश उठाये जाने से डरी पार्वती ने शिव को आलिंगन का सुख प्रदान किया।

समुत्क्षिपन्यः पृथिवीभृतां वरं वरप्रदानस्य चकार शूलिनः।
त्रसत्तुषाराद्रिसुताससंभ्रमस्वयंग्रहाश्लेषसुखेन निष्क्रयम्॥

शिशुपालवध, १/५०

पल्लव एवं कलचुरि राजवंशों के प्रस्तर एवं ताम्रलेखों में शिव के स्तवन के सन्दर्भ में कालिदास कृत काव्यों एवं महाकवि माघ कृत काव्य जैसा ही संकेत इस स्वरूप के लिये मिलता है। पल्लव कालीन सप्तरथ अभिलेख (ल० सातवीं शती ई०)[३] में उल्लेख है कि शिव के अँगुष्ठभार-मात्र से ही रावण कैलाश पर्वत के नीचे दब कर मूर्च्छित हो गया।

यस्याङ्गुष्ठभाराक्रान्तः कैलास स दशाननः।
पातालमगमन्यूर्द्धा श्रीनिधिस्तद् विवर्जनम्॥ ३॥

(तीसरी पंक्ति)

कलचुरि लेखों (अमोदा ताम्रपत्र लेख, १०७९; डैकोनी ताम्रपत्र लेख, ११३८ ई०; बिलैगढ़ ताम्रपत्र लेख एवं बनारस ताम्रपत्र लेख १०४१ ई०) में राजा के बल-पौरुष को शिव के समान बताते हुए इस स्वरूप का सांकेतिक वर्णन मिलता है जिसके अनुसार "राजा पृथ्वी के आभूषण थे और उन्होंने उस रावण को बाँध लिया था जिसने कैलाश पर्वत को सहजता से उठाकर पर्वत के हिलने से डरी पार्वती के आलिंगन का मार्ग प्रशस्त कर शिव को प्रसन्न किया था।"[४] यह वर्णन कलचुरि अभिलेखों की प्रायः प्रत्येक तीसरी पंक्ति में मिलता है—

देवः श्रीकार्त्तवीर्यः क्षितिपतिरभवद्भूषणं भूतधात्र्या
हेलोत्क्षिप्ताद्रिबिभ्यत्तुहिन गिरिसुताश्लेषसन्तोषितेशम्।

(तीसरी पंक्ति)

उपरोक्त कथानकों एवं अन्य साहित्यिक विवरणों की पृष्ठभूमि में ही रावणानुग्रह स्वरूप की मूर्तियों का प्रचुर संख्या में निरूपण हुआ। सामान्य रूप से इस स्वरूप में शिव-पार्वती को सुखासन में पर्वत शिखर (कैलाश) पर आसीन दिखाया जाता है। इस रूप में चतुर्भुज शिव जटामुकुट से युक्त होते हैं। रावण द्वारा कैलाश पर्वत उठाये जाने की चेष्टा की प्रक्रिया में पर्वत के किञ्चित् हिलने-मात्र से भयाक्रान्त एवं सहमी हुई पार्वती का शिव एक हाथ से आलिंगन करते हुए दिखाये गये हैं, जबकि अन्य हाथों में सर्प, त्रिशूल तथा वरद या अभय-मुद्रा प्रदर्शित है। रावणानुग्रह मूर्तियों में अलग-अलग रूपों में सहमी हुई पार्वती को शिव के समीप आते दिखाया गया है जिसकी श्रेष्ठतम् जीवन्त अभिव्यक्ति एलोरा के कैलाश मन्दिर की मूर्ति में द्रष्टव्य है। पर्वत के कम्पन से पार्वती सहित (शिव

को छोड़कर) पर्वत स्थित गणाकृतियों, पशु-पक्षियों सभी में भय का संचार हुआ जिसका अलग-अलग क्षेत्रों के शिल्पियों ने अपने ढंग से रूपायन किया है। एलोरा के कैलाश मन्दिर के उदाहरण में भयजन्य परिस्थिति का बड़ा ही सटीक अंकन हुआ है, जिसमें विभिन्न आकृति विशेषतः नारी आकृति (सम्भवतः पार्वती की परिचारिका या सखी) को विपरीत दिशा में मुख कर भागते दिखाया गया है। जबकि शिव पूरी तरह शान्त एवं अविचलित रूप में विराजमान हैं। इनके दाहिने लटकते पैर का अँगुष्ठ-भार पर्वत पर रखा है, जो पर्वत को दबाकर रावण के सम्पूर्ण प्रयास को निष्फल करने का सांकेतिक अंकन है। सबसे नीचे दशानन- रावण की आकृति बनी है। रावण के सामने के पाँच मुख ही सामान्यतः दिखाये गये हैं।[५] पर्वत की ओर मुख करके पर्वत उठाने की चेष्टा में रावण का मूर्त अंकन हुआ है। रावण के बैठने की मुद्रा से पर्वत को उठाने में उसकी सम्पूर्ण शारीरिक शक्ति के लगे होने का संकेत दिया गया है। कहीं-कहीं पर्वत के मध्य भाग को कुछ उठा दिखाया गया है (भारत कला भवन, वाराणसी), जबकि पट्टडकल (विरुपाक्ष मन्दिर, नवीं शती ई०) एवं वाराणसी (सोरइया महादेव मन्दिर, भैरवनाथ, १२वीं शती ई०) के दो उदाहरणों में सम्पूर्ण पर्वत भाग को ही बायीं ओर या दायीं ओर झुके दिखलाकर पर्वत के कम्पायमान होने और इस प्रकार रावण के प्रयास के किञ्चित् सफलता का मूर्त अंकन किया गया है, जो पारम्परिक कथा के अनुरूप है।

रावण की सामान्यतः दस (पृष्ठदर्शन के कारण) या उससे अधिक भुजायें प्रदर्शित हैं और उसकी शारीरिक चेष्टा से उसकी आसन्न असफलता का पूर्वानुमान भी सहज ही लगाया जा सकता है। रावण के दो, चार या उससे अधिक हाथ पर्वत को उठाने की चेष्टा में ऊपर की ओर लगे हैं। रावणानुग्रह मूर्तियों में रावण को कभी तीन या कभी पाँच (पृष्ठ दर्शन के कारण) मुख वाला दिखलाया गया है। सर्वालंकृत पार्वती को इन मूर्तियों में सर्वदा द्विभुज ही दिखाया गया है। वस्तुतः रावणानुग्रह मूर्तियों का विकास उत्तर एवं दक्षिण भारत में अलग-अलग द्रष्टव्य है और उनमें क्षेत्रीय विशेषताओं के तत्त्व भी देखे जा सकते हैं। शिल्प की दृष्टि से रावणानुग्रह मूर्तियों का अपना अलग वैशिष्ट्य है, जिसमें एकसाथ तीन अलग-अलग मनोभावों या रसों की अभिव्यक्ति हुई है। शिव की शान्त, निश्चल आकृति शान्त भाव की सूचक है जबकि पार्वती सहित गणों एवं पशु-पक्षियों की उद्वेलित आकृतियाँ भय की मनःस्थिति का दिग्दर्शन कराती हैं और पर्वत शिखर के नीचे आसुरी शक्ति का प्रतीक रावण पर्वत उठाने की चेष्टा में दर्प, अहंकार और क्रोध का मूर्तिमान रूप दिखायी देता है।

रावणानुग्रह मूर्ति को लक्षण और कथात्मक पृष्ठभूमि के आधार पर तीन वर्गों में बाँटा जा सकता है। पहले वर्ग की मूर्तियों में शिव-पार्वती और रावण की

आकृतियाँ लगभग समान आकार वाली बनी हैं, जिनके उदाहरण मथुरा, कांचीपुरम्, एलिफेण्टा, एलोरा, ओसियाँ एवं आबनेरी (चित्र ४,१०,११) से प्राप्त हुए हैं। दूसरे वर्ग की रावणानुग्रह मूर्तियों में पर्वत शिखर पर विराजमान शिव-पार्वती की आकृति रावण की तुलना में छोटी दिखायी गयी है।[६] इस वर्ग के उदाहरण भुवनेश्वर, कांचीपुरम्, पट्टडकल, एलोरा तथा कर्नाटक (चित्र १-३, १२) के विभिन्न पुरास्थलों से प्राप्त होते हैं। तीसरे वर्ग की मूर्तियों में रावण की आकृति शिव-पार्वती की अपेक्षा छोटी है। इस वर्ग की मूर्तियों के उदाहरण होयसल कला-केन्द्र हलेबीड, बेलूर एवं उत्तर भारत के पुरास्थलों (चित्र १६-१८, २०-२७) से प्राप्त हैं।

पहले वर्ग की मूर्तियों में शिल्पी ने कथा-दृश्य संयोजन के सम्पूर्ण दृश्य को एकसाथ और स्वयं को केन्द्र में रखकर किया है जिसके कारण शिव-पार्वती और रावण तीनों समान आकार वाले हैं जबकि दूसरे वर्ग की मूर्तियों में शिल्पी ने सम्पूर्ण कथा-दृश्य की कल्पना स्वयं को पर्वत के नीचे भूमि पर रखकर की है। इसी कारण रावण की आकृति पर्वत और पर्वत के ऊपर विराजमान शिव-पार्वती की आकृतियों की अपेक्षा स्वाभाविक रूप से बड़ी दिखायी देती है। यह किसी दृश्य को कैमरे या नेत्र से किसी निश्चित दूरी या स्थान से देखने का परिणाम है। वैसे यह धारणा भी व्यक्त की जाती है कि दक्षिण भारत में रावण की विद्वान् के रूप में प्रतिष्ठा और पूजन की परम्परा के कारण उसकी आकृति शिव-पार्वती की अपेक्षाकृत बड़ी दिखायी गयी है। तीसरे वर्ग की मूर्तियाँ विशेषतः उत्तर भारत के सन्दर्भ में उमा-महेश्वर (चित्र १७-२७) मूर्तियों के रूप में परिकल्पित हैं जिसमें पीठिका के मध्य में खड्गधारी रावण की आकृति को दिखाया गया है। पीठिका के निर्माण में ऊपरी भाग में कुछ शिला-खण्डों के निर्माण से पर्वत का भी संकेत दिया गया है जिसे रावण उठाने की चेष्टा कर रहा है। उमा-महेश्वर मूर्तियों के साथ पीठिका पर खड्गहस्त, बहुमुखी और बहुभुज रावण द्वारा पर्वत उठाने की चेष्टा से सम्बन्धित उत्तर भारत के उदाहरणों में दो विशेष बाते हैं—एक, रावण के मानव मुखों के ऊपर कभी-कभी गर्दभ मुख (चित्र १६, २२, २७) दिखाया गया है जो एलोरा एवं कुछ अन्य स्थलों की स्वतन्त्र रावणानुग्रह मूर्तियों में भी द्रष्टव्य है। दूसरा, पर्वत उठाने की चेष्टा में किञ्चित् लड़खड़ाती रावण की आकृति के दोनों ओर उपहास का भाव व्यक्त करती गण आकृतियों (चित्र २, ६, ७, १५, २०, २१, २३, २५, २७) का अंकन हुआ है जो महत्त्वपूर्ण है। उपहास दृश्य एलोरा के एक उदाहरण के अतिरिक्त दक्षिण भारत में सामान्यतः नहीं मिलता है। कभी-कभी उमा-महेश्वर मूर्तियों में रावण को वीणा-वादन करते (चित्र १८, १९) एवं पार्श्वों में वाद्य-वादन करती सहायक आकृतियों सहित आमूर्तित किया गया है। स्मरणीय है कि रावण

स्वयं संगीत का महान् ज्ञाता था। साथ ही दक्षिण भारत में आज भी 'रावण वीणा' के नाम से एक वाद्य-यन्त्र प्रसिद्ध है। रावण के द्वारा वीणा-वादन करना रावणानुग्रह कथा के उस प्रसंग का मूर्त रूपान्तरण भी हो सकता है जिसमें रावण ने पर्वत के नीचे दबे होने की स्थिति में शिव की वन्दना की थी।

रावणानुग्रह मूर्ति का प्रारम्भिक उदाहरण मथुरा स्थित पुरातत्त्व संग्रहालय (क्रमांक-२५७७) में है। डींग दरवाजा, मथुरा (उत्तर प्रदेश) से प्राप्त यह प्रतिमा पाँचवीं शती ई० की है।[७] इस मूर्ति में एक पर्वत-शिखर पर शिव-पार्वती की द्विभुज आकृति उत्कीर्ण है। यहाँ पर पार्वती शिव के दायीं ओर स्थित हैं। पार्वती का एक हाथ जानु पर और दूसरा शिव के स्कन्ध पर स्थित है। यह मूर्ति *मेघदूत* (१/६२) और *रघुवंश* (४/८०) के सन्दर्भों की पृष्ठभूमि में बनी जान पड़ती है।[८] रावण की आकृति द्विभुज है जिसके एक हाथ पर शिव का पैर कुछ ऐसे स्थित है मानों शिव उसके हाथ को दबाकर उसके सम्पूर्ण प्रयास निष्फल कर रहे हों। वर्तमान में यह प्रतिमा काफी घिसी हुई है।

रावणानुग्रह स्वरूप के अन्य प्रारम्भिक उदाहरण भुवनेश्वर स्थित शत्रुघ्नेश्वर और परशुरामेश्वर मन्दिरों की मूर्तियाँ हैं। दोनों मूर्तियाँ मन्दिर के पश्चिमी राहापग पर उत्कीर्ण हैं। यद्यपि भुवनेश्वर में सातवीं शती ई० से लेकर १३वीं शती ई० तक के लगातार मन्दिरों पर शिव के अनुग्रह स्वरूपों का रूपायन न होना आश्चर्य की बात है। रावणानुग्रह स्वरूप की आरम्भिक मूर्तियों में भुवनेश्वर से प्राप्त मूर्तियाँ विवरण के कारण एक विशिष्ट स्थान रखती हैं।

भुवनेश्वर की प्रथम रावणानुग्रह मूर्ति (चित्र १) शत्रुघ्नेश्वर मन्दिर (ल० सातवीं शती ई०) पर उत्कीर्ण है। मन्दिर के पश्चिमी राहापग की इस मूर्ति में शिव-पार्वती की लघु आकृति शीर्ष पर मण्डलाकार अलंकरण के मध्य एक आसन पर निरूपित है। जटामुकुटधारी द्विभुज शिव सौम्य दर्शन वाले हैं। उत्कुटकासन में विराजमान शिव ऊर्ध्वलिंग हैं। शिव का दायाँ हाथ अभय-मुद्रा में है जबकि बायें हाथ से शिव-पार्वती का आलिंगन करते निरूपित हैं। द्विभुजा पार्वती अचानक पर्वत प्रकम्पन से भयभीत होकर शिव के गले में अपने बाँहों को डाले तथा विस्मय-मुद्रा में नीचे की ओर देखती निरूपित हैं। पार्वती का स्वाभाविक चित्रण मनोहारी और नारी सुलभ व्यवहार के अनुरूप है। शिव-पार्वती दोनों ही सामान्य आभूषणों से सज्जित हैं। शिव दायें पैर के अँगूठे से पर्वत को दबाकर[९] और दायें हाथ से अभयदान देकर मानों सबको आश्वस्त कर रहे हैं। शिव-पार्वती के पैरों के पास पीठिका पर क्रमशः वाहन नन्दी एवं सिंह का अंकन हुआ है। इस मूर्ति के मण्डलाकार परिपथ पर दायीं ओर परशुधारी गणेश तथा बायीं ओर मयूरारूढ़ शूलधारी कार्त्तिकेय का रूपायन है। साथ ही

वानरों की आकृतियाँ भी द्रष्टव्य हैं। गणेश एवं कार्त्तिकेय दोनों को अपने-अपने आयुधों से रावण पर प्रहार करने की मुद्रा में निरूपित किया गया है। इस परिमण्डलाकार चित्रण के मध्य शिव-पार्वती की अपेक्षा रावण की पंचमुख व दसभुज आकृति काफी बड़ी बनी है। रावण वीरासन में भयंकर मुखाकृति वाला और सामान्य आभूषणों से युक्त है। रावण की दो भुजायें घुटनों तथा जाँघ पर हैं और शेष छः भुजाओं से रावण पर्वत उठाने की चेष्टा कर रहा है। शेष दो करों में से दायें हाथ में खड्ग है जो नीचे से ऊपर की ओर इंगित कर रहा है। खड्ग के धारण करने का अंकन इस प्रकार हुआ है मानो रावण उससे भी पर्वत उठाने में सहायता प्राप्त कर रहा हो। रावण के पार्श्व में कुछ गणाकृतियों एवं सहायक आकृतियों का भी अंकन हुआ है। पशु-पक्षी सहित विस्मय-मुद्रा में एक नारी अनुचर आकृति का निरूपण स्वाभाविक रूप में हुआ है।

रावणानुग्रह स्वरूप की दूसरी मूर्ति (चित्र २) भुवनेश्वर के परशुरामेश्वर मन्दिर (ल० सातवीं शती ई०) पर उत्कीर्ण है। यह मूर्ति भी लगभग शत्रुघ्नेश्वर मन्दिर की मूर्ति की तरह है। इस मूर्ति में शत्रुघ्नेश्वर मन्दिर की रावणानुग्रह मूर्ति से भिन्नता केवल परिकर की आकृतियों के सन्दर्भ में है। मण्डलाकार मूर्ति-संयोजन में दायीं ओर ऊपरी भाग में चतुर्भुज ब्रह्मा की ललितासीन आकृति है जबकि बायीं ओर की मूर्ति खण्डित है। सम्भवतः यहाँ विष्णु की आकृति रही होगी।[१०] इस मूर्ति की अन्य विशेषताओं के रूप में मण्डलाकार परिपथ में क्रमशः शिव-पार्वती की मूर्तियों के दायें एवं बायें शक्ति के दो अन्य स्वरूप कंकालस्वरूपा चामुण्डा और दुर्गा की क्रमशः आसीन एवं स्थानक आकृतियों को अपने-अपने आयुधों को प्रहार की मुद्रा में उठाये दिखाया गया है। इसी प्रकार शिव-पार्वती के पार्श्वों में परशुधारी गणेश एवं शूलधारी मयूरारूढ़ कार्त्तिकेय को अत्यन्त उग्र भाव से रावण पर प्रहार करने को उद्यत दिखाया गया है। यहाँ रावण की त्रिमुख व दसभुज मूर्ति पूरी तरह खण्डित है। रावण के पार्श्वों में गणाकृतियों को उपहास की मुद्राओं में रावण की ओर पृष्ठ भाग से झुके दिखाया गया है। साथ ही दो वानर आकृतियों का भी चित्रण हुआ है।

भुवनेश्वर की दोनों मूर्तियों में पर्वत के प्रकम्पन के कारण भयवश पार्वती का शिव से लिपटना और नीचे की ओर देखना तथा पशु व गणाकृतियों को भयाक्रान्त दिखाना *रामायण* में वर्णित कथा का जीवन्त स्वरूप प्रस्तुत करता है। साथ ही शिव का शान्त व अविचल स्वरूप में सबको आश्वस्त करके अभयदान देना उनके महादेव स्वरूप को प्रस्तुत करता है। अन्य क्षेत्रों से भिन्न शिव परिवार के सदस्यों यथा—चामुण्डा, दुर्गा, गणेश, कार्त्तिकेय आदि को कुछ विचलित तथा आक्रामक मुद्राओं में अपने-अपने शस्त्रों को उठाये एवं रावण की ओर निर्दिष्ट

करते निरूपित किया गया है। भुवनेश्वर के शिल्पी ने एक अभिनव प्रयोग की दृष्टि से पूरे कथा-प्रसंग को उसकी निरन्तरता में व्यक्त किया है। सम्भवतः पहली बार शिव परिवार के लगभग सभी सदस्यों को एक साथ रावण की ओर प्रहार की मुद्रा में दिखाया गया है, जो अन्यत्र दुर्लभ है।[११] रावण के पार्श्वों में उत्कीर्ण उपहास का प्रदर्शन करती गणाकृतियों का अंकन भी सर्वप्रथम यहीं से मिलता है।

रावणानुग्रह स्वरूप की एक मूर्ति (चित्र ३) विरूपाक्ष मन्दिर (पट्टडकल, बीजापुर, कर्नाटक) पर उकेरी (ल० सातवीं-आठवीं शती ई०) है। यह मूर्ति मन्दिर के दक्षिणी स्तम्भ पर उत्कीर्ण है। भुवनेश्वर की मूर्तियों की तरह इस मूर्ति में भी शिव-पार्वती की लघु आकृतियों को पर्वत-शीर्ष पर एक ही आसन पर सुखासन में आसीन दिखाया गया है। द्विभुज शिव जटामुकुट व अन्य आभूषणों से युक्त हैं। शिव एक हाथ से आसन का टेक लगाये तथा दूसरे से पार्वती का आलिंगन करते निरूपित हैं। शिव दायें पैर के अँगुष्ठ-भार से पर्वत को दबाकर उसमें उत्पन्न हलचल को शान्त करते दर्शाये गये हैं, जबकि द्विभुजा पार्वती मुड़कर दोनों हाथों से शिव को भयवश पकड़े हुए हैं। शिवासन के दोनों पार्श्वों में क्रमशः नृत्य एवं वादन करती आकृतियों का अंकन हुआ है। साथ ही आसन के नीचे कई गणाकृतियों का अंकन हुआ है जिसमें ये आकृतियाँ पर्वत के हिलने के कारण भयवश भागने एवं गिरने की स्वाभाविक अवस्था में दिखायी गयी हैं। शिव-पाद के पास गणेश की द्विभुज आकृति आसीन निरूपित है। पर्वत-शिखर के ऊपर दो गणाकृतियों को रावण को लक्ष्य कर बाण एवं प्रस्तर-खण्ड को फेंकते दिखाया गया है।[१२] पर्वत खण्ड के नीचे रावण की काफी बड़ी आकृति १९ भुजाओं से तथा एक पैर पर टेक लगाकर पूरे बल और उत्साह के साथ पर्वत उठाने में संलग्न है। रावण यहाँ पृष्ठ दर्शन वाला एवं पंचमुख है। रावण को यज्ञोपवीत, मुकुट तथा अन्य आभूषणों से अलंकृत दिखाया गया है जो उसके वैभवशाली होने का सूचक है। इस मूर्ति में पर्वत को थोड़ा-सा एक ओर झुका दिखलाकर शिल्पी ने पर्वत उठाने की रावण की चेष्टा के आंशिक सफलता को दर्शाया है। यह मूर्ति पश्चिमी चालुक्य शैली की सुन्दरतम एवं विलक्षण मूर्तियों में से एक है।

रावणानुग्रह स्वरूप की प्रथम वर्ग की एक मूर्ति एलिफेण्टा (मुम्बई, महाराष्ट्र, ल० सातवीं-आठवीं शती ई०) की मुख्य गुहा (रिलीफ पैनल) में उत्कीर्ण (चित्र ४) है। यह मूर्ति प्रायः खण्डित अवस्था में है, जिसमें शिव सहित कुछ आकृतियाँ शेष हैं। फिर भी यह मूर्ति सुन्दर रूपांकन की साक्षी है। इस प्रतिमा में शिव पार्वतीसहित पर्वत पर एक पैर मोड़कर तथा दूसरे बायें पैर को घुटने से मोड़कर पर्वत खण्ड पर इस प्रकार आसीन हैं, मानों रावण द्वारा पर्वत प्रकम्पन को उन्होंने बिना किसी अतिरिक्त प्रयास के ही स्थिर कर दिया हो। इस

स्वरूप में शिव अष्टभुज हैं जिसमें दो हाथों को छोड़ शेष खण्डित हैं। ये दोनों हाथ गणों की गिरती आकृति को पकड़ कर स्थिर करते हुए प्रदर्शित हैं।[१३] शिव जटामुकुट, ग्रैवेयक (हार), मकर-कुण्डल, केयूर, उदर-बन्ध आदि आभूषणों से विभूषित हैं और उनका दायाँ हाथ पार्वती के कन्धे पर आलिंगन की मुद्रा में है।[१४] पार्वती (लगभग खण्डित आकृति) परम्परा से अलग यहाँ दायीं ओर निरूपित हैं। पार्वती की देह-यष्टि की बनावट और मुद्रा नारी-सौन्दर्य की मनभावन अभिव्यक्ति है। पार्वती का शिव की तरफ मुड़ना उनकी नारियोचित भय की सहज अभिव्यक्ति है। पार्वती के पैरों के पास शृङ्गी ऋषि और शिव के पार्श्व में गणेश की आसीन आकृतियाँ द्रष्टव्य हैं। दोनों पार्श्वों में विशालकाय सर्पधारी गणाकृतियाँ उत्कीर्ण हैं।[१५] शिव-पार्वती मूर्तियों की पृष्ठभूमि में आकाश-मार्ग की देव, गन्धर्व एवं अप्सराओं आदि का उत्कीर्णन हुआ है। दस मुख और बीस भुजाओं वाला रावण पृष्ठदर्शन एवं बलिष्ठ आकृति वाला है। शिव का ध्यान अपनी ओर आकर्षित करने के लिये उसने अपना पूरा बल लगाकर वीरासन में सभी हाथों से पर्वत हिलाने का जो उपक्रम किया, उससे डरकर पार्वती शिव के निकट आ गयीं। शिव निश्चल भाव से अपने बायें पैर के अँगूठे के दाब-मात्र से रावण के प्रयास को निष्फल[१६] करते रूपायित हैं। पूरे कथात्मक परिवेश में प्रतिमा-निरूपण अद्भुत सर्जना-शक्ति के साथ उभरा है।

एलोरा की गुफाओं में रावणानुग्रह स्वरूप की कुल आठ मूर्तियाँ हैं जो कथात्मक पृष्ठभूमि में और विभिन्नता के साथ निरूपित हैं। इनमें कैलाश मन्दिर (गूढ़मण्डप, गुफा सं० १६) की मूर्ति अब तक की ज्ञात रावणानुग्रह मूर्तियों में सर्वोत्कृष्ट है। इस मूर्ति की विशिष्टता पर प्रायः सभी विद्वान् एकमत हैं। एलोरा में रावणानुग्रह स्वरूप की एक-एक मूर्ति क्रमशः दशावतार (गुफा सं० १५), रामेश्वर (गुफा सं० २१), रावण की खाई (गुफा सं० १४), डूमरलेण (गुफा सं० २९) तथा लंकेश्वर गुफाओं में है। कैलाश मन्दिर (गुफा सं० १६) में तीन रावणानुग्रह मूर्तियाँ हैं।[१७]

एलोरा से प्रथम रावणानुग्रह मूर्ति का उदाहरण गुफा सं० १४ (रावण की खाई, ल० सातवीं शती ई० का उत्तरार्द्ध) से प्राप्त है। यह मूर्ति मण्डप की दक्षिणी भित्ति (चित्र ५) पर उत्कीर्ण है। इस मूर्ति में शिव-पार्वती पर्वत के शीर्ष पर आसीन हैं। चतुर्भुज शिव जटामुकुट, प्रभामण्डल, कुण्डल, यज्ञोपवीत तथा अन्य आभूषणों से युक्त हैं। शिव का एक हाथ जाँघ पर एवं दूसरा पार्वती के पयोधर का स्पर्श करता अंकित है। तीसरा हाथ पार्वती के स्कन्ध पर है और चौथा विचित्र-मुद्रा में आमूर्तित है। साथ ही शिव के हाथों में सर्प भी लिपटा है। शिव का दायाँ पैर आसन से नीचे ठीक रावण के शीर्ष भाग के पार्श्व में पर्वत

खण्ड पर उसे दबाने की मुद्रा में प्रदर्शित है। शिव का बायाँ पैर जो दुहरा मुड़ा हुआ है, उस पर पार्वती आसीन हैं। द्विभुजा पार्वती सुन्दर शिरोभूषा एवं अन्य अलंकरणों से सुशोभित तथा भयवश एक हाथ से शिव के स्कन्ध को पकड़े हैं। पार्वती का दूसरा हाथ वक्ष पर रखा है जो पर्वत के हिलने से उत्पन्न भय से अपने आपको व्यवस्थित करने की मुद्रा में निरूपित है। शिवासन पर ही दो अनुचर युगल आकृतियों का स्थानक स्वरूप में अंकन हुआ है। आसन के नीचे पर्वत खण्ड शीर्ष के कोनों पर दो-दो गणाकृतियाँ उकेरी हैं। सबसे नीचे पर्वत कन्दरा में पंचमुख एवं दसभुज रावण की पृष्ठदर्शन वाली आकृति है। रावण अपने दोनों पैर घुटनों से मोड़कर तथा एक हाथ घुटने पर रखकर मानों अपनी सम्पूर्ण शक्ति और शेष हाथों से पर्वत उठाने को उद्धत है। आकृतियों के अंकन के स्तर पर इस मूर्ति में गुप्त-वाकाटक शैली का प्रभाव अधिक स्पष्ट है। कलात्मक स्तर पर यह चित्रण कैलाश मन्दिर एवं रामेश्वर गुफा के रावणानुग्रह मूर्तियों के समान न तो सुनियोजित और न ही भाव पक्ष की दृष्टि से प्रबल है।[१८]

एलोरा में रावणानुग्रह की दूसरी मूर्ति दशावतार गुफा (गुफा सं० १५, उत्तरी भित्ति, ल० आठवीं शती ई०) में है। इस प्रतिमा (चित्र ६) में चतुर्भुज शिव दोनों पैर मोड़कर ललितासन में पार्वती के साथ विराजमान हैं। शिव जटामुकुट, कुण्डल, ग्रैवेयक, सर्प, बाजू-बन्ध, कंकण आदि आभूषणों से अलंकृत हैं। उनका दायाँ हाथ सूचीहस्त-मुद्रा में है जबकि दूसरे में सर्प है। बायें हाथों से शिव-पार्वती को सहारा देते अंकित हैं, जिनमें से एक पार्वती के मस्तक के पार्श्वभाग को छूता हुआ इस प्रकार प्रदर्शित है, मानों शिव-पार्वती को हृदय से लगाकर पर्वत कम्पन से उत्पन्न भय का शमन कर रहे हों। शिव का शेष एक हाथ पार्वती के कटि भाग पर स्थित है। पार्वती सुन्दर केश-विन्यास एवं अन्य आभूषणों से अलंकृत तथा द्विभुज स्वरूप में शिव के जानु पर आसीन हैं। पर्वत कन्दरा में पंचमुख एवं दसभुज रावण एक पैर पृथ्वी पर सीधा फैलाकर और दूसरा पैर घुटने से मोड़कर एलिफेण्टा के समान एक भुजा द्वारा मुड़े हुए पैर पर टेक लगाकर शेष भुजाओं से पूरी शक्ति को संयोजित कर पर्वतोत्तोलन करते आमूर्तित है।[१९] रावण के दायें पार्श्व में एक गणाकृति को स्थानक रूप में उपहास की मुद्रा में दिखाया गया है।

एलोरा की तीसरी रावणानुग्रह मूर्ति रामेश्वर गुफा (गुफा सं० २१) में उत्कीर्ण है। इस मूर्ति में शिव सुखासन में पार्वतीसहित आसीन हैं। शिव एलोरा की उपरोक्त मूर्तियों के समान ही चतुर्भुज हैं तथा इस मूर्ति में शिव के एक हाथ में सर्प है एवं दूसरा हाथ खण्डित है। एक दाहिना हाथ उनके बायें पैर पर स्थित है तथा बायें हाथ से पार्वती का आलिंगन करते निरूपित हैं।[२०] यहाँ पार्वती शिव

के अत्यन्त समीप आमूर्तित हैं या दूसरे रूप में भय के कारण कुछ लिपटी हुई सी प्रतीत होती हैं। इस स्वरूप में पार्वती का एक हाथ शिव के कन्धे पर स्थित है। शिव-पार्वती के पार्श्वों में कुछ युगल नर-नारी आकृतियों को भी दिखाया गया है जिनके ऊपर विद्याधर और अप्सरा आकृतियों का अंकन हुआ है। शिव-पार्वती के अतिरिक्त अन्य आकृतियों का अंकन रावणानुग्रह प्रतिमा के क्रमिक विकास के चरण के रूप में देखा जा सकता है। पर्वत खण्ड के नीचे अवस्थित रावण पंचमुख और दसभुज है जो सम्पूर्ण शक्ति के साथ पर्वतोत्तोलन में संलग्न है। रावण के पार्श्व में कई गण आकृतियों का अंकन हुआ है। उनमें से एक ने रावण की भुजा पकड़ रखी है जो उसके द्वारा रावण के पर्वतोत्तोलन में सहायता करते हुए अथवा उसका उपहास करने का प्रतीक हो सकता है।[२१]

रावणानुग्रह स्वरूप की एलोरा में चतुर्थ मूर्ति डूमरलेण गुफा (गुफा सं० २९, मण्डप, दक्षिणी भित्ति) में आकारित है। यह मूर्ति ल० आठवीं शती ई० की है। इस गुफा को 'सीता की चावड़ी' अथवा 'सीता की नहानी' के नाम से भी जाना जाता है। इस मूर्ति में शिव पार्वतीसहित सुखासन में विराजमान हैं और उनका दायाँ पैर आसन से नीचे लटका हुआ इस प्रकार पर्वत खण्ड पर स्थित है मानों रावण द्वारा पर्वत के प्रकम्पन को मात्र अपने अँगुष्ठ-भार से ही शिव नियन्त्रित कर रहे हों। शिव का बायाँ पैर दोहरा मुड़ा हुआ है जिस पर पार्वती एक हाथ से टेक लगाकर आसीन हैं। इस स्वरूप में पार्वती मानों आकस्मिक पर्वत के कम्पन से उत्पन्न स्थिति से अपने आपको व्यवस्थित कर रही हैं।[२२] शिव लम्बे जटामुकट से अलंकृत एवं एक हाथ से पार्वती के पयोधर का स्पर्श करते आलिंगन-मुद्रा में निरूपित हैं। शिव के शेष हाथ खण्डित हैं। सुन्दर केशराशि व अन्य आभूषणों से आभूषित द्विभुजा पार्वती के पार्श्व में एक चामरधारी सेविका का स्थानक रूप में अंकन हुआ है।[२३] शिव-पार्वती के समान आकार वाले द्विभुज द्वारपालों (दो) को जटामुकुट आदि से शोभित पार्श्वाकृति के रूप में निरूपित किया गया है।[२४] द्वारपालों व मुख्याकृति के ऊपरी भाग में विद्याधर, अप्सरा व अन्य देवाकृतियाँ अपनी-अपनी शक्ति के साथ शिव की स्तुति एवं पुष्प-वर्षा करते प्रदर्शित हैं।[२५] त्रिमुख एवं बहुभुज रावण अपनी सम्पूर्ण शक्ति के साथ पर्वत उठाने की चेष्टा कर रहा है। विरूपाक्ष मन्दिर (पट्टडकल), एलिफेण्टा एवं रावण की खाई (एलोरा) की मूर्तियों के समान रावण पृष्ठदर्शन में दायाँ पैर भूमि पर सीधे फैलाकर एवं बायाँ पैर दोहरा मोड़कर पर्वतोत्तोलन में संलग्न है।[२६] अन्य आकृतियों की तुलना में शिव का शान्त, अविचल स्वरूप उनके महादेव स्वरूप के अनुरूप है। यह मूर्ति विवरण की दृष्टि से एलोरा की गुफा सं० १५ की मूर्ति के समान है एवम् सम्पूर्ण मूर्ति में एक स्थिरता का भाव व्यक्त हुआ है।

एलोरा स्थित कैलाश मन्दिर की तीनों रावणानुग्रह मूर्तियाँ (आठवीं शती ई०) अपनी रचना शैली, भाव-भंगिमा, अंगविन्यास आदि की दृष्टि से अद्वितीय हैं। कैलाश मन्दिर के गूढ़ मण्डप वाली मूर्ति अब तक प्राप्त रावणानुग्रह मूर्तियों में सर्वश्रेष्ठ है। कैलाश मन्दिर होने के कारण ही सम्भवतः इसमें तीन रावणानुग्रह मूर्तियाँ उकेरी गयीं।

कैलाश मन्दिर की पहली मूर्ति लंकेश्वर गुफा के प्रदक्षिणापथ की पूर्वी भित्ति (चित्र ७) पर है। इस मूर्ति में शिव चतुर्भुज स्वरूप में दोनों पैर मोड़कर ललितासन में बैठे दिखाये गये हैं। शिव ऊँचे जटामुकुट और अन्य आभूषणों से युक्त हैं।[२७] शिव त्रिशूल , सर्प, अभय-मुद्रा सहित पार्वती के कटिप्रदेश का स्पर्श करते अंकित हैं। द्विभुजा पार्वती सुन्दर केशभूषा के साथ ही एक हाथ अपने वक्ष पर रखे सहमी-सी प्रदर्शित हैं। उनके मुख तथा शरीर के भाव पर्वत के हिलने से उत्पन्न भय में अपना सन्तुलन बनाये रखने का संकेत देते हैं। उनकी पाद स्थिति विशिष्ट है। दायाँ पैर आसन के नीचे लटका हुआ तथा बायाँ पैर उसको लाँघ कर आसन पर स्थित है। शिव और पार्वती के मुख आमने-सामने और एक-दूसरे को निहारने की मुद्रा में हैं। देवी के पार्श्व में एक भागती हुई गणाकृति का भी अंकन हुआ है जो मारे डर के पीछे मुड़कर भी देख रहा है।[२८] पर्वताकृति के नीचे पंचमुख और विंशतिभुज रावण की आकृति डूमरलेण गुफा के उदाहरण की भाँति पृष्ठदर्शन में एक पैर दोहरा मोड़कर दूसरे पैर से भूमि पर टेक लगाकर अपनी पूरी ताकत से पर्वत उठाने की मुद्रा में निरूपित है। इस स्वरूप में रावण मुकुट, यज्ञोपवीत आदि से शोभित है। उसके दायें हाथ में मुद्गर तथा बायें हाथ में खड्ग (असीपत्र से निकालते) है। रावण और मुख्याकृति के मध्य पर्वत खण्ड पर कई गण व पशु आकृतियाँ उकेरी हैं, जो विभिन्न मुद्राओं में रावण की ओर देख रही हैं और उसका उपहास भी कर रही हैं। नीचे रावण के दायें पार्श्व में एक शीर्ष विहीन खण्डित सहायक आकृति पर्वतोत्तोलन में उसकी सहायता करती निरूपित है।

दूसरा उदाहरण दो विशालकाय द्वारपाल आकृतियों के मध्य प्रकोष्ठ (बाह्य भित्ति, चित्र ८) में निर्मित है। शिव-पार्वती एक ही आसन पर विराजमान हैं। शिव अर्द्धपर्यंकासन में दायाँ पैर आसन से नीचे लटकाएँ हुए और बायाँ पैर आसन पर दोहरा मोड़कर रखे हुए निरूपित हैं। शिव का दायाँ पैर कुछ इस प्रकार रखा है, मानों वे बड़े सहज भाव से अँगूठे के भार से ही पर्वत को दबाकर रावण के सम्पूर्ण प्रयास को निष्फल कर रहे हों। चतुर्भुज शिव के एक हाथ में त्रिशूल है जबकि दूसरा अभय-मुद्रा में है। शेष एक हाथ पार्वती के स्कन्ध पर एवं दुसरा जानु पर आराम कर रहा है। इस रूप में शिव विभिन्न आभूषणों और

जटामुकुट से सज्जित दिखाये गये हैं। खण्डित मस्तक वाली द्विभुजा पार्वती का निरूपण शिल्पी ने कुछ इस प्रकार किया है मानों पार्वती भयवश शिव की ओर सिमटती हुई हैं। जहाँ पर्वत कम्पन के कारण पार्वती भयभीत हैं वहीं शिव शान्त और अविचल हैं।[२९] शिव के पीछे उनके वाहन नन्दी का अंकन इस प्रकार है मानो वह भी अचानक उत्पन्न इस विषम स्थिति का कारण जानने के लिए पीछे से निकला चला आ रहा है। शिव-पाद के पास एवं आसन के नीचे क्रमशः दायें से बायें प्रस्तर-खण्ड उठाये गणाकृति और चतुर्भुज गणेश की आकृति है। ठीक उसी तरह पार्वती के पैरों के पास प्रस्तर-खण्ड उठाये गण और कार्त्तिकेय की आकृति का रूपायन हुआ है। दोनों के मध्य कंकाल स्वरूप वाले शृङ्गी ऋषि द्रष्टव्य हैं। इसके नीचे पर्वत खण्ड पर वानर व गणाकृतियों को घबराकर भागते हुए दिखाया गया है। सबसे नीचे शिव-पार्वती की तुलना में रावण की काफी बड़ी दशमुख और बीस भुजाओं वाली आकृति है, जो दोनों पैरों को घुटने से मोड़कर एड़ी के जोर पर, दो हाथों से खड्ग पकड़े हुए एवं शेष हाथों से पर्वत को उठाने की पुरजोर कोशिश करते हुए रूपायित है।

एलोरा के कैलाश मन्दिर की तीसरी मूर्ति (दक्षिणी भद्र, उपपीठ, गूढ़-मण्डप, चित्र ९) ल० आठवीं शती के उत्तरार्द्ध की है। रावणानुग्रह स्वरूप की यह मूर्ति राष्ट्रकूटों की भारतीय कला को अद्‌भुत भेंट है। इस प्रतिमा में पर्वत शीर्ष पर शिव-पार्वती की आकृति भव्य और उर्जायुक्त दिखाई गई है, जबकि नीचे अज्ञान का द्योतक रावण अपने बाहुबल से पर्वततोत्तोलन का असफल प्रयास करता निरूपित है। शिव चतुर्भुज स्वरूप में चन्द्र-शोभित जटामुकुट एवं अन्य आभूषणों से अलंकृत दिखाये गये हैं। शिव के दोनों पैर आसन से नीचे लटके हैं एवं उनका मुख भाग दायीं तरफ घूमा हुआ दिखाया गया है। शिव के एक हाथ में टंक या परशु है, दूसरा खण्डित है, जबकि तीसरा पार्वती के स्कन्ध पर है। चौथे हाथ से शिव आसन पर टेक लगाकर आराम करने की मुद्रा में निरूपित हैं। द्विभुजा पार्वती का एक हाथ शिव के स्कन्ध पर है एवं दूसरे से देवी आसन पर टेक लेकर शिव के समीप आती निरूपित हैं। इस स्वरूप में पार्वती को आसन पर दोनों पैर फैलाकर शिव के समीप आते दिखाया गया है। पर्वत प्रकम्पन से भयाक्रान्त, लता के समान तरंगित और इकहरे बदन वाली पार्वती का सुन्दर रूपायन हुआ है।[३०] एक ओर जहाँ पर्वत के हिलने के कारण पार्वती सहित अन्य आकृतियों में भय व्याप्त है, वहीं दूसरी ओर शिव पूरी तरह शान्त और अविचलित रूप में हैं और दायें पैर के अँगूठे से पर्वत को दबाकर सम्पूर्ण वातावरण को यथास्थिति प्रदान करते हुए अभयदान दे रहे हैं। शिव-पार्वती के पैरों के पास दो शिवगण आकृतियाँ हैं, जो मुख्य मूर्ति के आकार वाली हैं।

गणाकृतियों का अंकन वीरासन-मुद्रा में हुआ है। एक गण के हाथ में त्रिशूल है तथा दूसरे गण के हाथ का आयुध अस्पष्ट है। ये गणाकृतियाँ सम्भवतः नन्दीकेश्वर की मूर्तियाँ हैं।[३१] पार्वती के चरणों के समीप की नारी अनुचर आकृति का अंकन मनोहारी रूप में हुआ है,[३२] जो भयवश पर्वत के विपरीत दिशा में भाग रही है। शिव-पार्वती आकृतियों के दोनों शीर्ष कोणों पर कई देवगण, गन्धर्व, किन्नर एवं अप्सरा आकृतियों को आकाश-मार्ग से शिव-लीला का अवलोकन एवं शिव-स्तुति करते दिखाया गया है। शिवासन के नीचे पर्वत खण्ड पर गणेश, कार्त्तिकेय एवं कुछ गणाकृतियों को रावण पर प्रस्तर-खण्ड का प्रक्षेपण करते तथा भयभीत अवस्था में वानर एवं अन्य पशु आकृतियों के पलायन का दृश्य कथानक के अनुकूल है। साथ ही पार्वती के शिव के समीप सिमटने, दासी की भागने की मुद्रा तथा वानर एवं अन्य आकृतियों का भयवश भागते-गिरते हुए अंकन सम्पूर्ण वातावरण में व्याप्त भय का सटीक चित्रण प्रस्तुत करता है।[३३] नीचे पर्वत प्रकोष्ठ में रावण की आकृति उकेरी है। यहाँ रावण के पाँच मुखों का अंकन वृत्ताकार रूप में हुआ है। बीस भुजाओं वाला रावण वीरासन-मुद्रा में विराजमान है और सभी हाथों से पर्वत उठाने की असफल चेष्टा करता निरूपित है। पृष्ठदर्शन वाला रावण लम्बे मुकुट एवं अन्य अलंकरणों से सज्जित है। शैली और निर्माण की दृष्टि से प्रस्तुत मूर्ति में इकहरे बदन वाली और भारहीन तथा पूरी तरह क्रियाशील आकृतियाँ कला के जीवन्त उदाहरण हैं।[३४] यह प्रतिमा न केवल राष्ट्रकूट कला अपितु भारतीय मूर्तिकला के श्रेष्ठतम् उदाहरणों में से एक है।

रावणानुग्रह स्वरूप के गुर्जर-प्रतिहार कालीन दो उदाहरण राजस्थान में ओसियाँ और आबनेरी से प्राप्त हुए हैं। पहली मूर्ति ओसियाँ के हरिहर मन्दिर संख्या २ (उत्तर-पश्चिम भद्र रथिका, उत्तरी जंघा, ल० आठवीं शती ई०) पर उत्कीर्ण (चित्र १०) है। प्रस्तुत उदाहरण में शिव-पार्वती आसन पर विराजमान हैं। चतुर्भुज शिव जटाजूट से शोभित और पद्मासीन हैं। शिव के दायें हाथ में त्रिशूल है जबकि एक अन्य हाथ पार्वती के मस्तक पर उनके भय का शमन करने के प्रयास में रखा है। शेष हाथ खण्डित हैं। द्विभुजा पार्वती शिव के जानु पर आसीन हैं तथा उनका एक पैर पर्वत खण्ड पर स्थित है। पार्वती ने भयवश अपनी भुजा को शिव की ग्रीवा में लपेट रखा है।[३५] शान्त-चित्त शिव भयभीत पार्वती की ओर देख रहे हैं।[३६] नीचे चतुर्भुज़ रावण अपने दो हाथों से पर्वत उठाने की चेष्टा करते और शेष दो हाथों से खड्ग एवं खेटक लिए प्रदर्शित है। रावण की गतिशीलता और पर्वत उठाने की सफल चेष्टा स्वाभाविक प्रतीत होती है। इस मूर्ति की सबसे बड़ी विशेषता रावण द्वारा अपने प्रयास के सफलतापूर्वक सम्पादित कर लेने के भाव का

अंकन है। रावण ने अपनी दो भुजाओं से पर्वत को उठा रखा है, जो अन्य किसी भी उदाहरण में नहीं मिलता है।[३७] ओसियाँ का यह उदाहरण भुवनेश्वर और आबनेरी (जयपुर, राजस्थान) की मूर्तियों से काफी साम्य रखता है।[३८]

राजस्थान से रावणानुग्रह स्वरूप का दूसरा उदाहरण आबनेरी (जयपुर) से प्राप्त है जो वर्तमान में केन्द्रीय संग्रहालय, जयपुर (क्रमांक ५९/६४) में सुरक्षित है। प्रस्तुत मूर्ति (चित्र ११) दो घटपल्लव से अलंकृत स्तम्भों के मध्य निर्मित स्वतन्त्र मूर्ति के रूप में है। इस मूर्ति (ल० आठवीं-नवीं शती ई०) में पर्वत खण्ड पर शिव सम्भवतः नन्दी पर अर्द्धपर्यंकासन में विराजमान हैं। शिव के मुड़े हुए बायें जानु पर देवी (पार्वती) आसीन हैं। चतुर्भुज शिव त्रिनेत्र एवं सुन्दर जटामुकुट, कुण्डल, ग्रैवेयक, बाजू-बन्ध से शोभित और प्रसन्नवदन रूपायित हैं। शिव के दायें हाथ में वरद एवं त्रिशूल है जबकि बायें एक हाथ से शिव डरी हुई पार्वती का आलिंगन कर उन्हें आश्वस्त कर रहे हैं। एक अन्य हाथ से शिव-पार्वती का स्तन स्पर्श करते निरूपित हैं।[३९] शिव की तुलना में छोटी किन्तु मृदु व कोमल आकृति वाली पार्वती का अंकन मनोहारी है। पार्वती का मुख भाग कुछ खण्डित है। पार्वती का दायाँ हाथ शिव के बायें पैर पर व बायाँ हाथ वक्षस्थल पर है जो एलोरा की मूर्ति से साम्य रखता है। यह मूर्ति भी अपनी शारीरिक रचना व भाव के आधार पर अन्य मनोहारी मूर्तियों में से एक है। जहाँ एक ओर भय का संचार पार्वती में द्रष्टव्य है वहीं दूसरी ओर शिव प्रसन्न-भाव से वरद-मुद्रा में रावण पर अनुग्रह कर रहे हैं। पार्वती के पैरों के पास एक नारी परिचारिका आकृति की पहचान स्टेला क्रैमरिश ने जया के रूप में की है।[४०] पर्वत खण्ड के नीचे रावण की हताशा से भरी आकृति विशेषतः ध्यान आकृष्ट करती है। यहाँ दसभुज व दसमुख रावण के मध्य मुख पर गोलाकार रूप में कलाकार ने नौ मुखों का अंकन किया है। रावण एक हाथ में खड्ग व दूसरे में खेटक लिये शेष हाथों से पर्वतोत्तोलन करता निरूपित है। शिव के दायें पैर के दबाव से रावण का प्रयास व्यर्थ हो गया जिसका परिणाम मूर्ति में द्रष्टव्य है। रावण ने जिस प्रकार उल्टे खड्ग के मुठिया भाग पर अपना सिर (दसमुख) रखा है, उससे स्वतः उसकी हताशा का भाव व्यक्त हो रहा है।[४१]

पल्लव कालीन कला-केन्द्रों महाबलीपुरम् (ओलंकनेश्वर मन्दिर, एक उदाहरण) तथा कांचीपुरम् (कैलाशनाथ मन्दिर एवं मुक्तेश्वर मन्दिर से तीन उदाहरण) से रावणानुग्रह स्वरूप के कुल चार उदाहरण मिले हैं। कैलाशनाथ मन्दिर से प्राप्त उदाहरणों में अलग-अलग प्रकार से रावणानुग्रह स्वरूप का अंकन हुआ है।

कांचीपुरम् की रावणानुग्रह मूर्ति (कैलाशनाथ मन्दिर, उत्तरी प्राकार, देव प्रकोष्ठ) ल० आठवीं शती ई० की है। इस मूर्ति में नन्दिकेश्वर द्वारा रावण को रोके जाने पर दर्प व क्रोधवश रावण द्वारा कैलाश उठाने का उपक्रम अंकित है। इस स्वरूप में त्रिनेत्र शिव जटाजूट आदि से सुशोभित और हाथों में त्रिशूल एवं आसन पर टेक लगाये, सर्प तथा वरद-मुद्रा युक्त हैं। प्रशान्त भाव वाले शिव, पार्वतीसहित विराजमान हैं। द्विभुजा पार्वती का एक हाथ खण्डित है तथा दूसरा वक्ष पर स्थित है। सर्वालंकृत पार्वती के मुखमण्डल से पर्वत कम्पन्न से उत्पन्न भय का भाव स्पष्ट है। पार्वती रावण की ओर संकेत भी कर रही हैं। ऊपर दायीं तरफ कोने में एक नारी आकृति को अंजलिबद्ध-मुद्रा में दिखाया गया है जो सम्भवतः शिव-लीला के इस दृश्य का अवलोकन एवं शिव-स्तुति करती निरूपित है। सबसे नीचे पर्वत-कन्दरा में रावण की त्रिमुख व चतुर्भुज आकृति दोनों पैर मोड़कर तथा एक हाथ से आसन पर टेक लगाकर शेष तीनों हाथों से पर्वत उठाने की चेष्टा करती आमूर्तित है। रावण की सहायता करती एक आकृति के हाथ में खड्ग है।

कैलाशनाथ मन्दिर की दूसरी मूर्ति (उत्तरी प्राकार, देव प्रकोष्ठ) में भुवनेश्वर व पट्टडकल की प्रारम्भिक मूर्तियों के समान ही रावण की आकृति को शिव-पार्वती की अपेक्षा बड़ा बनाया गया है, जो शिल्पी की दृश्य एवं कथा संयोजन की कल्पना की विशेष दृष्टि का सूचक है।[४२] शिव-पार्वती एक ही आसन पर आसीन हैं। यहाँ त्रिनेत्र शिव जटामुकुट व अन्य अलंकरणों से भूषित हैं। चतुर्भुज शिव प्रत्यालीढ़-मुद्रा में एक हाथ से आसन का टेक लगाये, दूसरे को जानू पर रखे तथा क्रमशः तीसरे-चौथे में त्रिशूल व अभय-मुद्रा सहित आमूर्तित हैं। यहाँ शिव दायें पैर के अँगूठे के दबाव से रावण के उपक्रम को निष्प्रभावी करते अंकित हैं। सर्वाभूषित द्विभुजा पार्वती का एक हाथ विस्मय-मुद्रा में है।[४३] नीचे रावण की अपेक्षाकृत बड़ी आवक्ष आकृति (त्रिमुख और अष्टभुज) उकेरी है। रावण के सभी हाथ कैलाश पर्वत उठाने में संलग्न है। शिव के पार्श्व में दो अनुचर आकृतियों का अंकन हुआ है। कांचीपुरम् के कैलाशनाथ मन्दिर से प्राप्त यह मूर्ति उपरोक्त मूर्ति से अंकन की दृष्टि से दो बातों में भिन्न है—प्रथम इसमें रावण द्वारा किए गए प्रयास को शिव स्वयं निष्फल कर रहे हैं, दूसरे रावण की आवक्ष आकृति भी मुख्याकृति (शिव-पार्वती) की तुलना में बड़ी है।

महाबलीपुरम् की मूर्ति संरचनात्मक मन्दिर ओलंकनेश्वर या ईश्वर मन्दिर (उत्तरी रथिका, ल० आठवीं शती ई०) से प्राप्त है। इस मूर्तिफलक में शिव महारांजलीलासन में बायाँ पैर दुहरा मोड़कर आसन पर विराजमान हैं, जबकि

दायाँ पैर रावण शीर्ष के ऊपर लटका है। चतुर्भुज शिव के दो करों में अभय-मुद्रा और सर्प हैं जबकि एक हाथ पार्वती स्कन्ध पर है। शिव-पार्वती पर्वत शीर्ष पर सुखासन में आसीन हैं। द्विभुजा पार्वती के दोनों पैर आसन से नीचे लटके हुए हैं। पार्वती का एक हाथ शिव-स्कन्ध पर है जबकि दूसरे में पद्म है। पर्वत खण्ड के नीचे वीरासन में बैठे रावण की त्रिमुखी व षड्भुजी आकृति चार हाथों से पर्वतोत्तोलन का असफल प्रयास करती निरूपित है।[४४] इस मूर्ति में रावण भयंकर मुखाकृति वाला है जिसमें उसके दो दाँत बाहर की तरफ निकले हुए हैं तथा मुख खुला हुआ है। रावण एवं शिव-पार्वती की आकृतियाँ समान आकार वाली हैं। यह मूर्ति प्रथम वर्ग के उदाहरण के रूप में द्रष्टव्य है।[४५]

पल्लव काल की चौथी मूर्ति मुक्तेश्वर मन्दिर, कांचीपुरम् (मण्डप की अन्तः भित्ति, ल० आठवीं शती ई०) पर उत्कीर्ण है। यहाँ रावण का बड़ा ही भव्य प्रदर्शन हुआ है। त्रिमुख व बहुभुज रावण लम्बे किरीटमुकुट, उदर-बन्ध, हार आदि आभूषणों से अलंकृत है। रावण की अतिशय उद्विग्न आकृति का अंकन *रामायण* और मावल्लिवरम् के गणेश मन्दिर अभिलेख में उल्लिखित सन्दर्भ से साम्य रखता है।[४६] इस मूर्ति में पर्वत शीर्ष पर शिव-पार्वती अर्द्धपर्यंकासन में विराजमान हैं। शिव जटामुकुट, ग्रैवेयक, कुण्डल, यज्ञोपवीत से शोभित हैं। त्रिशूल, सर्पधारी चतुर्भुज शिव दो हाथों से पार्वती का आलिंगन करते निरूपित हैं।[४७] द्विभुजा पार्वती का एक हाथ शिव के स्कन्ध पर है। शिव-पार्वती के हाथों की स्थिति शिव द्वारा पार्वती में उत्पन्न भय का शमन करने एवं भयाक्रान्त पार्वती को भय से मुक्ति हेतु शिव स्कन्ध का सहारा लेने के भाव को व्यक्त करता है। यहाँ पार्वती को भी शिव की भाँति जटामुकुट से अलंकृत दिखाया गया है। पार्वती थोड़ी सी मुड़कर शिव की ओर निहारती प्रदर्शित हैं जबकि नीचे रावण का उपहास करती कई गणाकृतियों का अंकन हुआ है।

रावणानुग्रह स्वरूप की एक मूर्ति कडूर (चिकमंगलूर, कर्नाटक) से प्राप्त स्तम्भ पर अलंकरणों के मध्य (ल० नवीं शती ई०) उत्कीर्ण है। वर्तमान में यह स्तम्भ (चित्र १२) शासकीय संग्रह (पुरातत्त्व विभाग), मैसूर में सुरक्षित है। इसमें शिव-पार्वती शिला खण्ड पर क्रमशः अर्द्धपर्यंकासन और ललितासन में विराजमान हैं। शिव चतुर्भुज स्वरूप में बायें पैर के अँगुष्ठ-भार से पर्वत पर दबाव डालते तथा हाथों में त्रिशूल, सर्प, अभय सहित एवं एक हाथ से देवी का आलिंगन करते हुए निरूपित हैं, जबकि पार्वती कुछ अधलेटी जैसी स्थिति में शिव के बायें पार्श्व में उपस्थित हैं। नीचे रावण पंचमुख और बहुभुज स्वरूप में दो हाथों से खड्ग एवं एक हाथ से पेट के बल लेटी उपहास की मुद्रा में शिवगण आकृति का पैर पकड़े हुए प्रदर्शित है। शेष हाथों से वीरासन-मुद्रा में

पर्वत को उठा लेने का उपक्रम व्यक्त है। कथात्मक परिदृश्य के दोनों पार्श्वों में त्रिमुख स्वरूप वाले विशाल आकृतियों (खड्ग तथा वरद-मुद्रा) का अंकन इसकी विशेषता है। यहाँ शिव-पार्वती की तुलना में रावण की आकृति बड़ी है।

सिद्धेश्वर मन्दिर (हेमावती, अनन्तपुर, कर्नाटक) की रावणानुग्रह मूर्ति मुखमण्डप स्तम्भ पर उकेरी है। यह मूर्ति (चित्र १३) ल० १०वीं शती ई० की है। इसमें सबसे ऊपर गोलाकार भाग में चतुर्भुज शिव व द्विभुजा पार्वती एक ही आसन पर विराजमान हैं। शिव जटामुकुट व अन्य आभूषणों से अलंकृत और दायें पैर से पर्वत पर दबाव डालते दिखाये गये हैं जबकि वामांगी पार्वती एक हाथ से आसन पर टेक लगाए अधलेटी-मुद्रा में शिव की ओर प्रस्तुत हैं। नीचे पीठिका पर त्रिमुख व दसभुज रावण वीरासन में सभी हाथों से पर्वत उठाने का असफल उपक्रम करता हुआ उत्कीर्ण है। उसके पार्श्वों में एक-एक सहायक आकृतियाँ भी पर्वतोत्तोलन में उसकी सहायता करती निरूपित हैं।

रावणानुग्रह स्वरूप की एक और मूर्ति स्तम्भ पर उत्कीर्ण है, जो वर्तमान में राजकीय संग्रहालय, हैदराबाद में सुरक्षित है। ल० ११वीं शती ई० की इस मूर्ति में शिव-पार्वती पर्वत शीर्ष पर आसीन हैं। सबसे नीचे मुख्याकृति की तुलना में एक मुख और बीस भुजाओं से युक्त रावण की काफी बड़ी आकृति वीरासन में उत्कीर्ण है जो अपनी समस्त भुजाओं से पर्वततोत्तोलन करती आकारित है। शिव-पार्वती और रावण के मध्य शिला-खण्ड पर नाना प्रकार के जीव-जन्तुओं का अंकन हुआ है।

चोल कालीन पुरास्थलों यथा-गंगैकोण्डचोलपुरम् (बृहदीश्वर मन्दिर), दारासुरम् (ऐरावतेश्वर मन्दिर) और तंजौर (सोमनाथ मन्दिर) से रावणानुग्रह स्वरूप की ११वीं-१२वीं शती ई० की तीन मूर्तियाँ मिली हैं जिनमें दारासुरम् की मूर्ति पूरे कथात्मक विवरण के साथ उत्कीर्ण है।

गंगैकोण्डचोलपुरम् के बृहदीश्वर मन्दिर की रावणानुग्रह मूर्ति (पूर्वी अन्त:भित्ति, मण्डप) को कथात्मक पृष्ठभूमि के साथ निरूपित किया गया है। रावणानुग्रह स्वरूप में कथा के तीनों अंशों यथा—रावण के आगमन, शिव-पार्वती सहित कैलाश पर्वत को उठाने में सन्नद्ध रावण और अन्ततः प्रसन्न होकर शिव का रावण पर अनुग्रह करने का अंकन तीन अलग-अलग किन्तु क्रमबद्ध फलकों के रूप में किया गया है। पहले फलक में इच्छा-शक्ति से संचालित पुष्पक विमान पर रावण को आकाश-मार्ग से आते दिखलाया गया है। दूसरे फलक में पर्वत शीर्ष पर विराजमान शिव-पार्वती की आकृति और पर्वत खण्ड के नीचे रावण को अपने सम्पूर्ण बल से कैलाशोत्तोलन की प्रक्रिया में संलग्न दिखलाया गया है। शिव मात्र अपने अँगुष्ठ-भार से दाब डालकर उसके प्रयास को निष्फल करते अंकित हैं।

सबसे अन्तिम अथवा तीसरे खण्ड में अंजलिबद्ध रावण के समक्ष शिव-पार्वती की आसीन मूर्ति उकेरी हैं जो रावण की प्रार्थना से प्रसन्न होकर उस पर अनुग्रह करने के भाव के साथ रूपांकित हैं।[४८] उल्लेखनीय है कि गंगैकोण्डचोलपुरम् के बृहदीश्वर मन्दिर पर यमान्तक, कामान्तक, चण्डेशानुग्रह एवं अन्य स्वरूपों की मूर्तियों को भी इसी प्रकार दो या तीन किन्तु क्रमबद्ध दृश्यों के रूप में कथात्मक शैली में दर्शाया गया है जो इस मन्दिर का वैशिष्ट्य है।

रावणानुग्रह स्वरूप की दूसरी चोल कालीन मूर्ति दारासुरम् के ऐरावतेश्वर मन्दिर (ल० १२वीं शती ई०) के मण्डप (उत्तरी भित्ति, अधिष्ठान रथिका) पर उत्कीर्ण है। इस मूर्ति फलक का अंकन एक ही खण्ड के दो हिस्सों में हुआ है। ऊपरी भाग में शिव के रावण पर अनुग्रह करने और नीचे रावण द्वारा शिव पार्वतीसहित कैलाशोत्तोलन का अंकन हुआ है। नीचे वाले भाग पर शिव-पार्वती सुखासन में आसीन हैं। त्रिनेत्र व चतुर्भुज स्वरूप में शिव जटामुकुट एवं अन्यान्य आभूषणों से विभूषित हैं। उनके करों में परशु, अभय, मृग व वरद-मुद्रा का प्रदर्शन हुआ है। शिव का दायाँ पैर आसन से नीचे है। पैर के अँगूठे से दबाव डालकर रावण के प्रयास को निष्प्रभावी करते शिव शान्त और अविचल स्वरूप में हैं जबकि वाम पार्श्व में द्विभुजा पार्वती एक हाथ से आसन को पकड़े व दूसरे हाथ से रावण की ओर निर्दिष्ट करती दिखायी गयी हैं। रावण द्वारा चलायमान पर्वत के कारण पार्वती इस संकेत के माध्यम से शिव को सम्भवतः घटना से अवगत करा रही हैं। नीचे रावण की पंचमुख व दसभुज आकृति वीरासन-मुद्रा में अपनी सम्पूर्ण शक्ति से पर्वतोत्तोलन में संलग्न है। मुख्याकृति व रावण के मध्य पर्वत-खण्ड पर तीन प्रकोष्ठों में ऋषि व दो अन्य आकृतियों को शिव-स्तुति करते तथा वानरादि जीव-जन्तुओं को भय के कारण विभिन्न प्रकार की मुद्राओं में गतिशील दिखाया गया है।[४९] सबसे ऊपर वाले भाग में शिव-स्तुति द्वारा शिव-बन्धन से छुटकारा पाकर अष्टभुज रावण को शिव-पार्वती के समक्ष श्रद्धावनत् भाव से अंजलिबद्ध-मुद्रा में खड़ा दिखाया गया है। यहाँ शिव व रावण के मध्य एक छोटी गणाकृति का अंकन विशेषतः द्रष्टव्य है। शिव चतुर्भुज रूप में पार्वतीसहित विराजमान हैं। चतुर्भुज शिव एवं द्विभुजा पार्वती दोनों ही वरद-मुद्रा में रावण के ऊपर अनुग्रह करते अंकित हैं। इस मूर्ति में रावणानुग्रह स्वरूप का कथात्मक अंकन मुख्य रूप से दो भागों में हुआ है। प्रथम में शिव-पार्वती सहित रावण द्वारा कैलाश उठाने की कथा और द्वितीय भाग में सहस्र वर्षों से दबे रावण की करुण प्रार्थना पर प्रसन्न शिव का रावण पर अनुग्रह करने का अंकन है। मूर्ति में पार्वतीसहित शिव का रावण पर अनुग्रह करना महत्त्वपूर्ण हैं।

रावणानुग्रह स्वरूप की एक और मूर्ति तंजौर के सोमनाथपुर मन्दिर के मुखमण्डप की रथिका (ल० १२वीं शती ई०) पर उत्कीर्ण है। यह मूर्ति एकाश्म प्रस्तर मूर्ति है। इसमें शिला-खण्ड के ऊपर सुखासन में चतुर्भुज शिव और द्विभुजा पार्वती आसीन हैं। शिव को जटामुकुट व अन्य आभूषणों से अलंकृत दिखाया गया है। शिव दायें पैर से जो ठीक रावण मस्तक के ऊपर स्थित है, से दबाव डालते तथा एक हाथ से पार्वती को नीचे की तरफ निर्दिष्ट करते रूपायित हैं। शिव के एक हाथ में त्रिशूल है जबकि एक अन्य से पार्वती का आलिंगन कर रहे हैं। इसी क्रम में द्विभुजा पार्वती शिव की ओर झुकी हुई हैं। पार्वती का एक हाथ शिव के कन्धे पर है व दूसरा उनके वक्ष पर इस प्रकार रखा है मानों अपने अन्दर व्याप्त भय पर स्वयं से नियन्त्रण करने का प्रयास कर रही हों। रावण के बहुभुज और बहुमुख आकृति को ऊर्ध्व बाहु से कैलाशोत्तोलन में संलग्न दिखाया गया है जबकि उसका एक हाथ घुटने पर रखा है।[५०] रावण की आकृति की अपेक्षा शिव-पार्वती की आकृति बड़ी है। इस मूर्ति में शिव का अविचल स्वरूप उनके महादेव रूप को व्यक्त करता है। शिवासन के नीचे शिला-खण्ड के मध्य अण्डाकार प्रकोष्ठ में शिव-पार्वती के वाहन नन्दी व सिंह भी द्रष्टव्य हैं।

रावणानुग्रह स्वरूप की मूर्तियों का शिल्पांकन होयसल कला (१२वीं-१३वीं शती ई०) में भी हुआ है जिसके चार उदाहरण बेलूर तथा हलेबीड के मन्दिरों से प्राप्त होते हैं। इन चारों मूर्तियों में होयसल शैली की विशेषता अलंकरण तत्त्वों की प्रधानता के रूप में द्रष्टव्य है। सभी मूर्तियों में रावण की आकृति को शिव-पार्वती की तुलना में छोटे रूप में अंकित किया गया है। तुलनात्मक दृष्टि से महाबलीपुरम् व भुवनेश्वर के मन्दिरों से प्राप्त रावणानुग्रह मूर्तियाँ होयसल कालीन मूर्तियों से तुलनीय हैं[५१]

चेन्नकेशव मन्दिर (बेलूर, कर्नाटक) से होयसल कालीन (ल० १२वीं शती ई०) रावणानुग्रह स्वरूप की दो मूर्तियाँ मिली हैं। पहली मूर्ति मन्दिर के दक्षिण पार्श्वभित्ति की मध्य रथिका में उत्कीर्ण है। इस मूर्ति में सर्वोपरि शिव-पार्वती सुखासन में एक मण्डप में कई देवगणों व अनुचर आकृतियों से आवृत्त अंकित हैं। चतुर्भुज स्वरूप में शिव दायाँ पैर आसन से नीचे रखे तथा पर्वत खण्ड पर इस प्रकार विश्राम करते हुए अंकित हैं मानों रावण के प्रयास को निष्फल करने हेतु बिना किसी अतिरिक्त प्रयास के उन्होंने अँगुष्ठ-भार से पर्वत को दबा दिया हो। शिव का बायाँ पैर आसन पर दुहरा मुड़ा हुआ है जिस पर द्विभुजा पार्वती की आकृति आलिंगन-मुद्रा में निरूपित है। शिवासन के नीचे पर्वत खण्ड पर उत्कीर्ण वन के दृश्य में अनेक प्रकार के वन्य जीव-जन्तुओं को घने जंगल के मध्य रूपायित किया गया है। वन्य दृश्य में वृक्ष, सर्प, वानर, मृग, सिंह और

गज आदि का भी अंकन विविध रूपों में हुआ है।[५२] इससे सम्पूर्ण कथाकन जीवन्त हो उठा है। शिव-पार्वती कई देवाकृतियों से आवृत्त हैं। ऊपर की ओर भृङ्गी, अनुचर व ऋषियों आदि को अंजलिबद्ध-मुद्रा में शिव-स्तुति करते अंकित किया गया है। पर्वत खण्ड के नीचे वीरासन में पंचमुख व दसभुज रावण को सम्मुख दो हाथों से असिपत्र से खड्ग निकालते एवं शेष भुजाओं से कैलाशोत्तोलन की मुद्रा में निरूपित किया गया है।[५३] चेन्नकेशव मन्दिर की दूसरी मूर्ति विवरण में पहली मूर्ति की तरह है। शिव-पार्वती की आकृति कई देव, अनुचर, गणादि आकृतियों से आवृत्त हैं, जो शिवार्चन में अंजलिबद्ध और हाथ में माला लिये रूपायित हैं।[५४]

होयसल कालीन रावणानुग्रह स्वरूप का एक और उदाहरण हलेबीड के होयसलेश्वर मन्दिर (ल० १२वीं शती ई०) की उत्तरी बाह्य भित्ति पर उत्कीर्ण है। इस मूर्ति में पर्वत-शीर्ष पर सुखासन में चतुर्भुज शिव को त्रिशूल धारण किये और वाम पार्श्व में विराजमान द्विभुजा पार्वती का आलिंगन करते दिखाया गया है। विभिन्न अलंकरणों से अलंकृत शिव कई देवाकृतियों एवं उपास्य आकृतियों से आवृत्त हैं। शिव के आसन के नीचे पर्वत खण्ड पर वन प्रदेश को अति सघन और सूक्ष्म उकेरन के साथ दर्शाया गया है, जहाँ पूर्ण विस्तार के साथ गज, सिंह, वानरादि की आकृतियाँ द्रष्टव्य हैं।[५५] पर्वत खण्ड के नीचे पंचमुख एवं दसभुज रावण को खड्ग, खेटक व अन्य आयुधों को सम्मुख करों में धारण किये एवं शेष हाथों से वीरासन-मुद्रा में कैलाशोत्तोलन में संलग्न दिखलाया गया है।[५६]

रावणानुग्रह स्वरूप का एक दूसरा उदाहरण केदारेश्वर मन्दिर (ल० १२वीं शती ई०) पर उत्कीर्ण है। यह होयसल शैली का प्रतिनिधि उदाहरण है। यह मूर्ति भी उपरोक्त वर्णित अन्य होयसल कालीन रावणानुग्रह मूर्तियों के अनुरूप है। रचना के आधार पर केवल कुछ ही भिन्नताएँ इसमें द्रष्टव्य हैं। पर्वत शीर्ष पर सुखासन में विराजमान शिव-पार्वती की आकृति को अन्य देवाकृतियों से आवृत्त दिखाया गया है। साथ ही साथ शिवपुत्रों—गणेश व कार्त्तिकेय का भी अंकन हुआ है। शिव के साथ देवत्रयी के दो अन्य देव ब्रह्मा एवं विष्णु की उपस्थिति भी विशेष रूप से ध्यातव्य है,[५७] जो भुवनेश्वर और उत्तर भारत से प्राप्त उदाहरणों में भी द्रष्टव्य है। शिवासन के नीचे पीठिका पर सघन-वन के अनुरूप घने वृक्षों तथा वन्य-दृश्य में अनेकानेक पशु-पक्षियों का अंकन हुआ है।

रावणानुग्रह स्वरूप की यथेष्ट मूर्तियों के उदाहरण परमार, चन्देल, गुर्जर-प्रतिहार, कलचुरि एवं गहड़वाल कालीन पुरास्थलों से भी प्राप्त हुए हैं। ये मूर्तियाँ मुख्यतः उत्तर प्रदेश एवं मध्य प्रदेश से प्राप्त हैं और साथ ही इन प्रदेशों के

विभिन्न संग्रहालयों से संगृहीत हैं। इन मूर्तियों में काल के अन्तर के कारण कुछ शैलीगत विभिन्नताएँ होते हुए भी वस्तुतः ये लगभग एक ही प्रकार की कथात्मक पृष्ठभूमि में उकेरी गयी हैं। इन मूर्तियों में मध्यकालीन तत्त्व यथा—मालाधारी गन्धर्व, प्रभामण्डल और परिकर में अन्यान्य आकृतियों का अंकन उमा-महेश्वर मूर्तियों के अनुरूप हुआ है। उत्तर भारत की मूर्तियों में उमा-महेश्वर मूर्ति स्वरूप की पृष्ठभूमि में पीठिका पर रावण की पर्वतोत्तोलन की मुद्रा में लघु मूर्ति के माध्यम से रावणानुग्रह मूर्तियों को अभिव्यक्त किया गया है। ये मूर्तियाँ ल० आठवीं से १३वीं शती ई० के मध्य की हैं। इसी कारण इन उदाहरणों में सामान्य उमा-महेश्वर मूर्तियों की विशेषताएँ यथा—वृषभ-सिंह वाहन, गणेश, कार्त्तिकेय, भृङ्गी ऋषि और परिकर के शीर्ष भाग में ब्रह्मा और विष्णु की आकृतियाँ भी द्रष्टव्य हैं। इनमें शिव-पार्वती सर्वदा आलिंगन-मुद्रा में ही रूपायित हैं। पर्वत शीर्ष पर शिव-पार्वती की सुखासन में आसीन मूर्तियाँ उकेरी होती हैं। पर्वत खण्ड के नीचे पीठिका पर सामान्यतया एक मुख व चतुर्भुज रावण को सहायक आकृतियों के साथ पर्वतोत्तोलन में संलग्न दिखाया गया है। इस उकेरन के माध्यम से शिल्पी ने एक मूर्ति से दूसरी मूर्ति में आयुधों, शारीरिक रचना तथा अन्य प्रकार के भावों को जोड़कर या निकालकर अन्तर उत्पन्न किया है, जिससे मूर्तिगत एकरसता नहीं आ सकी है। उत्तर प्रदेश से प्राप्त उदाहरण म्यूनिसिपल संग्रहालय, इलाहाबाद; राष्ट्रीय संग्रहालय, नई दिल्ली; पुरातत्त्व संग्रहालय, कन्नौज; शासकीय संग्रहालय, झाँसी; भारत कला भवन, वाराणसी; राजकीय संग्रहालय, लखनऊ तथा कुमायूँ (शिव मन्दिर), हरदोई (शिव मन्दिर), कंपिल (कायमगंज) के विमलनाथ मन्दिर के एक कक्ष में, व्यक्तिगत संग्रह में तथा वाराणसी (सोरइया महादेव मन्दिर) एवं फतेहगढ़ (चित्रगुप्त मन्दिर) से प्राप्त हुए हैं।

लच्छगीर (इलाहाबाद) से प्राप्त और सम्प्रति इलाहाबाद संग्रहालय (क्रमांक ६५७) में सुरक्षित प्रतिहार कालीन (ल० नवीं शती ई०) मूर्ति में पर्वत शीर्ष पर शिव-पार्वती की आकृतियाँ सुखासन में आसीन हैं। चतुर्भुज शिव के तीन करों में अभय, पद्म, अक्षमाला है जबकि एक हाथ आलिंगन की मुद्रा में पार्वती के वक्ष पर है।[५८] वाम पार्श्व में ललितासन में विराजमान द्विभुजा पार्वती का एक हाथ शिव के स्कन्ध पर है और दूसरे में दर्पण है। शिवासन के नीचे क्रमशः मुदग्रधारी गणेश, कंकाल रूप भृङ्गी ऋषि एवं मयूरारूढ़ कार्त्तिकेय की आकृतियाँ हैं। पार्वती का दायाँ पैर एक गण के मस्तक पर स्थित है। पार्वती के शीर्ष भाग के ऊपर चाँवरधारिणी नारी आकृति का अंकन विशेष रूप से उल्लेखनीय है।[५९] पर्वत खण्ड के नीचे एक मुख व चतुर्भुज रावण ऊर्ध्व

भुजाओं से पर्वत उठाने में प्रयासरत है तथा उसके सम्मुख हाथों में से एक में खड्ग है। दूसरे हाथ से वह भूमि पर टेक लगाये है। रावण के सम्मुख पार्श्व में आगे की ओर झुकी और नितम्ब भाग रावण की ओर किये दो गण आकृतियाँ उसका उपहास करती जान पड़ती हैं। रावण के मस्तक के ऊपर 'गर्दभशीर्ष'[६०] का भी अंकन हुआ है जो उसके वेदज्ञ या मूढ़ होने का सूचक है। रचना-शैली और विषयवस्तु की दृष्टि से यह मूर्ति अनूठी और महत्त्वपूर्ण है।

इलाहाबाद संग्रहालय की ही चन्देल कालीन (ल० ११वीं शती ई०) दूसरी रावणानुग्रह प्रतिमा (क्रमांक-ए०एम० २९१) खजुराहो (छतरपुर, म०प्र०) से मिली है। इस मूर्ति में शिव-पार्वती आलिंगन-मुद्रा में पद्म पर आसीन हैं। चतुर्भुज शिव लम्बे जटामुकुट, श्रीवत्स एवं अन्यान्य अलंकरणों से आभूषित हैं। द्विभुजा पार्वती का भी एक हाथ आलिंगन-मुद्रा में है। शिव का दायाँ पैर पद्मासन पर आधारित है। शिवासन के नीचे पीठिका पर नन्दी एवं सिंह आकृतियों के मध्य शृङ्गी ऋषि का अंकन हुआ है, साथ ही पार्श्वों में गणेश व कार्त्तिकेय की मूर्तियाँ (खण्डित) पीठिका पर ही उकेरी हैं।[६१] पीठिका के नीचे रावण चतुर्भुज स्वरूप में दो ऊर्ध्व करों से पर्वत उठाते एवं अन्य दो हाथों में खड्ग धारण किये तथा तीन-तीन गणाकृतियों के मध्य द्रष्टव्य है। गणाकृतियों को यहाँ विभिन्न मुद्राओं में उसका उपहास करते अंकित किया गया है। शिव शीर्ष के चन्द्राकार-प्रभामण्डल के दोनों पार्श्वों में अपनी-अपनी शक्तियों सहित कमलासीन ब्रह्मा एवं विष्णु की मूर्तियाँ भी द्रष्टव्य हैं। सर्वोपरि चतुर्भुज स्वरूप में सम्भवतः शिव के योगी स्वरूप के दोनों ओर मालाधारी विद्याधर आकृतियों को दिखाया गया है। परिकर में कला-अभिप्राय, मकरव्याल, शिवगण एवं अनुचर आकृतियाँ दृश्यमान हैं।

उत्तर प्रदेश से प्राप्त रावणानुग्रह स्वरूप की एक मूर्ति वर्तमान में राष्ट्रीय संग्रहालय, नई दिल्ली (क्रमांक-६८/७८) में सुरक्षित है। गुर्जर-प्रतिहार (ल० नवीं शती ई०) काल की इस मूर्ति में चतुर्भुज शिव-पार्वती के साथ ललितासन में पर्वत शीर्ष पर आसीन हैं। शिव जटामुकुट एवं अन्य आभूषणों से आभूषित और अभय, सर्प, त्रिशूल आदि से युक्त हैं। शिव, पार्वती की गोद में स्थित स्कन्द पर एक हाथ रख कर मानों उनको निर्भय होने का आश्वासन दे रहे हैं, जबकि पार्वती की कुछ अधलेटी आकृति का भय के कारण एक हाथ शिव के स्कन्ध पर आधारित है। शिवासन के नीचे पर्वत खण्ड पर क्रमशः नन्दी, गणेश एवं नृत्यरत शृङ्गी ऋषि का अंकन हुआ है। पर्वत खण्ड के नीचे वीरासन में एक मुख व द्विभुज स्वरूप वाले रावण को एक लम्बे खड्ग सहित कैलाशोत्तोलन में संलग्न दिखाया गया है। परिकर में क्रमशः ऊपर से नीचे अंजलिबद्ध नारी-आकृति, वीरभद्र या गण आकृति एवं नीचे रावण का उपहास करती आकृतियों का अंकन हुआ है।

मूर्ति में सबसे ऊपर उमा-महेश्वर मूर्तियों की सामान्य परम्परा में कमलासीन चतुर्भुज ब्रह्मा तथा गरुडासीन विष्णु का रूपायन हुआ है। मूर्ति शीर्ष के मध्य मालाधारी विद्याधर युगल आकृतियों को निरूपित किया गया है। प्रस्तुत उदाहरण उत्तर भारत के रावणानुग्रह मूर्ति-स्वरूपों में एक सुन्दर उदाहरण है।[६२]

राष्ट्रीय संग्रहालय, नई दिल्ली की एक अन्य रावणानुग्रह मूर्ति (क्रमांक-६९.३०) मध्य प्रदेश से प्राप्त प्रतिहार काल (ल० १०वीं शती ई०) की मूर्ति है। इस आलिंगन मूर्ति में भूत-भावन शिव पार्वतीसहित सुखासन में विराजमान हैं। चतुर्भुज शिव लम्बे जटामुकुट व अन्य अलंकरणों से युक्त हैं। शिव का एक हाथ अभय-मुद्रा में है जबकि अन्य हाथ खण्डित हैं। सुन्दर केशभूषा में द्विभुजा पार्वती एक हाथ से शिव का स्कन्ध पकड़े तथा उनकी ओर निहारती हुई शिव के बायें जानु पर आसीन हैं। यहाँ गणेश और कार्त्तिकेय क्रमशः दायें-बायें आमूर्तित हैं। शिवासन के नीचे नन्दी (शिव की ओर देखते) एवं सिंह का अंकन हुआ है। पीठिका के नीचे पर्वत-कन्दरा के अन्तः भाग में एक मुख व चतुर्भुज रावण को पारम्परिक स्वरूप में एक हाथ में दुधारी खड्ग तथा खेटक लिये सहायक आकृतियों के साथ पर्वतोत्तोलन में संलग्न दिखाया गया है।[६३]

एक अन्य उदाहरण अल्मोड़ा (कुमायूँ) के शिव-मन्दिर की शुकनासिका पर उत्कीर्ण है। यह मूर्ति प्रतिहार कालीन (ल० १०वीं शती ई०) है जिसमें चतुर्भुज शिव जटामुकुट व अन्य अलंकरणों से आभूषित और द्विभुजा पार्वती सहित आमूर्तित हैं। पार्वती शिव को बायें हाथ से पकड़ी हुई हैं जबकि उनका दायाँ हाथ आसन पर टेक लगाने की मुद्रा में है। ऐसा भान होता है, मानों पर्वत कम्पन से भयभीत होकर पार्वती पुनः अपने आपको संयत करने का प्रयास कर रही हैं। शिव-पार्वती के पार्श्वों में एक-एक अनुचर आकृतियों का अंकन अंजलिबद्ध-मुद्रा में हुआ है मानों वे भय के निवारण हेतु शिव-स्तुति कर रहे हों। मदान्ध चतुर्भुज रावण सम्मुख दर्शन वाला है। रावण के पैरों की स्थिति उसके द्वारा लगाये जा रहे सम्पूर्ण बल की पुष्टि कर रही है। परिकर में नीचे दोनों कोनों पर दानकर्त्ता पुरुष और दानकर्त्री महिला की आकृतियों को स्थानक एवं अंजलिबद्ध-मुद्रा में उकेरा गया है। मूर्ति के शीर्ष भाग में उत्तर भारत की परम्परा के अनुरूप ब्रह्मा एवं विष्णु की लघु आकृतियाँ उकेरी हैं।[६४]

रावणानुग्रह स्वरूप की दो मूर्तियाँ कन्नौज (फर्रूखाबाद, उत्तर प्रदेश) से प्राप्त हैं तथा वर्तमान में कन्नौज स्थित पुरातत्त्व संग्रहालय में संगृहीत हैं। दोनों मूर्तियाँ काफी खण्डित अवस्था में हैं परन्तु अपनी उकेरन व भाव-भंगिमा के कारण मध्यकालीन मूर्तिकला में अपना एक विशिष्ट स्थान रखती हैं। कन्नौज की पहली मूर्ति (ल० १०वीं शती ई०, चित्र १४) में अन्य मूर्तियों की तरह शिव

पार्वतीसहित सुखासन में विराजमान हैं। चतुर्भुज शिव जटामुकुट से शोभित हैं और उनके दो हाथों में अभय-मुद्रा व त्रिशूल प्रदर्शित है जबकि एक हाथ आलिंगन-मुद्रा में पार्वती के स्कन्ध पर स्थित है तथा दूसरा घुटने पर है। शिवासन के नीचे नन्दी व नृत्यरत भृङ्गी ऋषि का अंकन हुआ है। पर्वत-कन्दरा में एकमुख व चतुर्भुज तथा विकराल स्वरूप वाले रावण की आकृति है जिसे ऊर्ध्व बाहु से कैलाशोत्तोलन में संलग्न दिखाया गया है। शिव पद्मालंकृत प्रभामण्डल से शोभित हैं जिनके ऊपर शीर्ष पर पंच-शिवलिङ्गों का अंकन महत्त्वपूर्ण है। पंच-शिवलिंग का अंकन सम्भवतः लिंगायत सम्प्रदाय से सम्बन्ध का द्योतक है। साथ ही शिव के 'पंचाक्षर मन्त्र' का भी सूचक हो सकता है।

कन्नौज की दूसरी मूर्ति (ल० १०वीं शती ई०, चित्र १५) भी पुरातत्त्व संग्रहालय, कन्नौज (क्रमांक-७९/२७०) के संग्रह में है। इस मूर्ति में पीठिका तथा ऊपर का कुछ अंश छोड़कर शेष भाग खण्डित है। पर्वत खण्ड पर दायें से बायें शिव वाहन नन्दी, शिव का खण्डित दायाँ पैर, गणेश, भृङ्गी ऋषि और पार्वती वाहन सिंह का अंकन ही द्रष्टव्य है। पर्वत खण्ड के नीचे रावण की खण्डित मस्तक वाली षड्भुज आकृति है जिसे ऊर्ध्व बाहु से पर्वत उठाये तथा दो सम्मुख भुजाओं में खड्ग व खटेक लिये दर्शाया गया है। खड्ग का मूल भाग पर्वत खण्ड को इस प्रकार छू रहा है मानों उसकी सहायता से भी रावण कैलाश पर्वत को उठाने की चेष्टा कर रहा है। नीचे के दो हाथों को घुटने पर रखने तथा एक हाथ से भूमि का टेक लगाने का भाव कार्य में उसके निष्फल होने का सूचक है। रावण के पार्श्व में तीन-तीन सहायक आकृतियों में से प्रथम दो को स्थानक व तीसरी आकृति को आसीन मुद्रा में दण्ड सहित दिखाया गया है जो रावण की सहायता करने की मुद्रा में जान पड़ती हैं। रावण के पैरों के पास दो गणाकृतियों का अंकन उसका उपहास करने वाले भाव के साथ किया गया है।[६५]

शासकीय संग्रहालय, झाँसी (उत्तर प्रदेश) में चार उदाहरण सुरक्षित हैं। ये मूर्तियाँ 'सिरोन-खुर्द' से प्राप्त हैं। प्रायः सभी मूर्तियाँ वर्तमान में खण्डित अवस्था में हैं। इन मूर्तियों में अंकन के स्तर पर एकरूपता उपरोक्त मूर्तियों की तरह है। साथ ही उत्तर भारत की मध्यकालीन उमा-महेश्वर मूर्तियों के लक्षण अन्य उदाहरणों की भाँति हैं। केवल पीठिका पर रावण का अंकन और पार्वती की भंगिमा उमा-महेश्वर मूर्ति से अलग स्वरूप का संकेत करती है। सभी मूर्तियों में सुखासन में विराजमान शिव-पार्वती आकृतियों के नीचे पर्वत खण्ड पर शिव-परिवार के सदस्यों का अंकन हुआ है और सबसे नीचे रावण को अपनी सहायक आकृतियों के साथ कैलाशोत्तोलन में संलग्न दिखाया गया है। सभी मूर्तियाँ प्रतिहार-काल (ल० १०वीं-११वीं शती ई०) की हैं।

पहली मूर्ति (क्रमांक-८१.६०) में शिव का महादेव और पार्वती का लौकिक रूप में अंकन हुआ है।[६६] पीठिका के नीचे एकमुख व चतुर्भुज रावण वीरासन में अपने दो हाथों से पर्वत उठाने का उपक्रम करता निरूपित है। रावण के दो सामान्य हाथों में एक लम्बा खड्ग इस प्रकार स्थित है मानों दशानन खड्ग की सहायता से भी पर्वतोत्तोलन कर रहा है। रावण के पार्श्वों की दो आकृतियाँ आगे कुछ इस प्रकार झुकी हुई हैं मानों पर्वत के भार से दबी जा रही हों। परिकर में शिव-पार्वती के दोनों पार्श्वों में गणेश, कार्त्तिकेय, खट्वांगधारी एवं त्रिशूलधारी गणाकृतियाँ द्रष्टव्य हैं। *दूसरी मूर्ति* (क्रमांक-८१.९३) में रावण उसकी सहायक आकृति एवं ग़ण आकृतियों के रूप में पहली मूर्ति से अन्तर स्पष्ट है। इस मूर्ति में त्रिमुख रावण षड्भुज है और दो ऊर्ध्व करों से पर्वत उठाने में प्रयासरत है। उसके दो मध्य करों में खड्ग एवं खेटक भी स्पष्ट है। यहाँ रावण को नीचे के दो हाथों से उपहास करती पार्श्ववर्ती गणाकृतियों के पैर पकड़े हुए दिखाया गया है, जो रावण की असफलता और उससे उत्पन्न झुँझलाहट की मनःस्थिति की सुन्दर अभिव्यक्ति है। ग़णेश, कार्त्तिकेय की आकृतियाँ स्थान-परिवर्तन के साथ आकारित हैं। *तीसरी मूर्ति* (ल० १०वीं शती ई०, क्रमांक ८१.२३२) पूरी तरह खण्डित है, किन्तु इसका वैशिष्ट्य शिव-पार्वती का स्थानक मुद्रा में रूपायन है।[६७]

रावणानुग्रह स्वरूप की *चौथी मूर्ति* (ल० ११वीं शती ई०, क्रमांक-८१.१११) में शिव का हाथ, पैर व मस्तक खण्डित हैं। सुन्दर केश विन्यास वाली द्विभुजा पार्वती शिव के जानु पर स्थित हैं। आसन के नीचे मध्य में नृत्यरत भृङ्गी ऋषि का अंकन पूर्व परम्परा के अनुरूप है। पर्वत खण्ड के नीचे चतुर्भुज रावण दो सहायक आकृतियों सहित पर्वतोत्तोलन करता निरूपित है। इस मूर्ति में पर्वत खण्ड के नीचे रावण के दायें परशुधारी गणेश व बायें मयूरारूढ़ कार्त्तिकेय को भी एक हाथ से कैलाशोत्तोलन में रावण की सहायता करते निरूपित किया गया है। शिल्पी ने शिव परिवार के सदस्यों द्वारा पर्वतोत्तोलन में रावण की सहायता का प्रसंग अंकित कर प्रश्नचिह्न खड़ा कर दिया है।[६८] सम्भव है कि *कुमारसम्भव* एवं अन्य ग्रन्थों में वर्णित रावणानुग्रह स्वरूप की कथा की पृष्ठभूमि में इस मूर्ति का निर्माण हुआ हो जिसमें पार्वती का नैकट्य प्राप्त करने की शिव की इच्छा और प्रेरणा से रावण ने कैलाश उठाने का उपक्रम किया। इस कथा की पृष्ठभूमि में गणेश एवं कार्त्तिकेय की उपस्थिति प्रासंगिक है। इस प्रकार यह मूर्ति महत्त्वपूर्ण और काव्यात्मक हो जाती है।

रावणानुग्रह स्वरूप का एक अन्य उदाहरण हरदोई (उत्तर प्रदेश) के प्राचीन शिव मन्दिर की भित्ति पर उत्कीर्ण (ल० १०वीं-११वीं शती ई०) है। इस प्रतिमा में पर्वत-शिखर पर शिव-पार्वती विराजमान हैं। पारम्परिक अलंकरण एवं

जटामुकुट से युक्त चतुर्भुज शिव के ऊपरी हाथों में त्रिशूल एवं सर्प है और नीचे के सामान्य हाथों से अभय-मुद्रा व्यक्त है तथा पार्वती का आलिंगन करते निरूपित हैं। द्विभुजा पार्वती का एक हाथ शिव के पैर पर है और दूसरे से गोद में स्थित बालक स्कन्द को सम्भालते हुए निरूपित हैं। पार्वती को शिव की ओर निहारते अंकित किया गया है। युगलमूर्ति का अंकन मध्यकालीन 'कसियाँ अभिलेख' में वर्णित उल्लेख के अनुरूप है, जिसके अनुसार "रावण द्वारा पर्वत हिलाये जाने से भयभीत पार्वती शिव के अत्यधिक निकट आ गयीं और उनके आलिंगन से शिव प्रसन्न हुए।"[६९] पार्वती की गोद में स्थित बालक स्कन्द की केशराशि 'शितिखण्ड' शैली में तथा द्विभुज बालक स्कन्द के करों में बाण अथवा शूल एवं पात्र का अंकन अतिविशिष्ट है।[७०] इसके अतिरिक्त अन्य मूर्तियों के समान ब्रह्मा, विष्णु, गणेश, कार्त्तिकेय, वीरभद्र एवं वाहन नन्दी तथा सिंह का अंकन भी हुआ है। पर्वत खण्ड के नीचे त्रिमुख व षड्भुज रावण सहायक आकृतियों एवं हास्य-व्यंग्य करती दो गण आकृतियों के मध्य रूपायित है।

रावणानुग्रह स्वरूप की पाँच मूर्तियाँ भारत कला भवन, वाराणसी (उत्तर प्रदेश) के संग्रह में हैं। ये मूर्तियाँ मध्य प्रदेश से प्राप्त एवं कलचुरि काल (ल० १०वीं-११वीं शती ई०) में निर्मित हैं। प्रथम मूर्ति (क्रमांक-२३९८३) में पर्वत खण्ड की शीर्ष पीठिका पर उपरोक्त मूर्तियों के समान शिव-पार्वती (चित्र २७) विराजमान हैं। त्रिनेत्र व चतुर्भुज शिव जटामुकुट व अन्य आभूषणों से अलंकृत तथा करों में अभय, सनालपद्म, त्रिशूल प्रदर्शित है एवं उनका एक हाथ पार्वती स्कन्ध पर है। इस स्वरूप में शिव शान्त एवं अविचल स्वरूप में रूपायित हैं। वामपार्श्व में द्विभुजा पार्वती सुन्दर केश- विन्यास व आभूषणों से सुसज्जित हैं। हरदोई के प्राचीन शिव मन्दिर की मूर्ति के अनुरूप इस मूर्ति में भी उमा स्कन्दसहित आमूर्तित हैं। शिवासन के नीचे वाहन नन्दी को रावण की ओर देखते तथा नन्दी के सम्मुख नृत्यरत भृङ्गी की आकृति का अंकन है। सबसे नीचे रावण सहित अन्य आकृतियों की मूर्तियाँ प्रायः खण्डित हो चुकी हैं। त्रिमुख एवं सम्भवतः चार भुजाओं से युक्त रावण को दो ऊर्ध्व बाहुओं से पर्वतोत्तोलन करते तथा एक हाथ से सूचीहस्त-मुद्रा प्रदर्शित करते दिखाया गया है। अन्य भुजाएँ खण्डित हैं। रावण भयंकर मुख और ज्वालामय आँखों वाला है। रावण के मध्य मुख के ऊपर गर्दभ मुख का अंकन भी है।[७१] परिकर में क्रमशः कमलासीन ब्रह्मा, गरुडासीन विष्णु, शिवगण तथा गणेश और बायीं ओर स्थानक वीरभद्र की मूर्तियाँ आमूर्तित हैं। मूर्ति में सबसे ऊपर एक पीठिका पर चार शिवलिङ्गों का अंकन है जिसमें से एक मुखलिङ्ग के रूप में द्रष्टव्य है। मुखलिङ्ग से शिव के हाथ में सुशोभित त्रिशूल के बीच वाला फल स्पर्श कर रहा है। उत्तर भारत की

उमा-महेश्वर मूर्तियों में पंचशिवलिङ्गों के रूपायन के अनुरूप इस मूर्ति में एक मुखलिङ्ग का रूपायन कर शिल्पी ने पंचलिङ्गों के रुपायन का भाव व्यक्त किया है। डॉ० एन०पी० जोशी के अनुसार ये पंचशिवलिङ्ग सम्भवत: तन्त्र में शिव के नाम 'पंचपिण्डनाथ' या 'पंचानन' स्वरूप के द्योतक हैं। इस मूर्ति में वाहन नन्दी की मुड़कर देखती आकृति का अंकन बहुत सुन्दर रूप में हुआ है।

दूसरी रावणानुग्रह मूर्ति (क्रमांक-पी० २३९८७) का अंकन अन्य मध्यकालीन रावणानुग्रह मूर्ति की परम्परा में हुआ है। त्रिनेत्र एवं चतुर्भुज शिव के करों में अभय, सनालपद्म और त्रिशूल प्रदर्शित है। शिव एक हाथ से पार्वती का आलिंगन करते निरूपित हैं। द्विभुजा पार्वती अपने हाथों से शिव स्कन्ध एवं पैर पकड़े आमूर्तित हैं। इस मूर्ति में पार्वती के दोनों पैर आसन से नीचे लटके हैं। शिवासन के नीचे गणेश, नृत्यरत भृङ्गी, नन्दी, सिंह का अंकन उत्तर भारत के मूर्ति परम्परा के अनुरूप है। पीठिका पर वीरासन में त्रिमुख एवं चतुर्भुज रावण एक-एक पार्श्व सहायक आकृतियों की सहायता से कैलाशोत्तोलन में संलग्न है। इस मूर्ति में भी शीर्ष के दोनों कोणों पर ब्रह्मा, विष्णु और मध्य में चार शिवलिङ्गों का अंकन हुआ है।

रावणानुग्रह स्वरूप की तीसरी मूर्ति (क्रमांक-१५९/क) का केवल पीठिका ही शेष है। ऊपर का भाग प्राय: खण्डित हो चुका है। शिवासन पर शिव-पार्वती अपने पारम्परिक स्वरूप में हैं। शिव-पार्वती का केवल कटि भाग ही शेष है। शिवासन के नीचे नन्दी को ऊपर मुख किए तथा कंकालस्वरूपा चामुण्डा को गतिमान एवं आक्रामक मुद्रा में खड्ग व कपाल पात्र लिये भुवनेश्वर की मूर्ति परम्परा में निरूपित किया गया है। पर्वत खण्ड के नीचे रावण की एकमुख व चतुर्भुज आकृति दो ऊर्ध्व करों से पर्वत के दबाव को नियन्त्रित करती तथा दो सामान्य करों में वीणा धारण किए निरूपित है। इस खण्ड में रावण के पार्श्वों में स्थानक सहायक आकृतियों के समक्ष उपहास करती गणाकृतियों का अंकन भी हुआ है। परिकर की अन्य आकृतियों में वीरभद्र, गणेश (सूँड़ में मोदक पकड़े) और बाँयीं ओर मयूरारूढ़ कार्त्तिकेय (एक हाथ मयूर मस्तक पर एवं दूसरे में शूल लिये) द्रष्टव्य हैं। सम्पूर्ण मूर्ति में कथा के दो चरणों का भावपूर्ण अंकन है। पहले चरण में रावण द्वारा कैलाश पर्वत हिलाने से पार्वती का भयाक्रान्त हो शिव के समीप आना, नन्दी का ऊपर मुख कर इस घटना के कारण को जानने की इच्छा तथा क्रोधवश शिव परिवार के सदस्य यथा—चामुण्डा, गणेश, कार्त्तिकेय सहित गणाकृतियों द्वारा रावण पर प्रहार दर्शनीय है। दूसरे चरण में अविचल एवं सभी कालों के ज्ञाता सर्वज्ञ शिव द्वारा कौतुकवश पर्वत पर अँगुष्ठ-भार डालने से उत्पन्न विषम स्थिति और इससे पराजित रावण की पर्वत खण्ड में दबी आकृति द्वारा

वीणा-वादन कर शिव का अनुग्रह प्राप्त करने का अंकन हुआ है। शिल्पी ने कथा के सम्पूर्ण भाव को बहुत ही सुन्दर रूप में व्यक्त किया है।

भारत कला भवन की शेष दो रावणानुग्रह मूर्तियाँ (क्रमांक-टी/४७५ ख एवं ८६.८१) उपरोक्त मूर्तियों के समान विवरणों वाली हैं।

रावणानुग्रह स्वरूप के छः उदाहरण राज्य संग्रहालय, लखनऊ (उत्तर प्रदेश) में संगृहीत हैं। ये मूर्तियाँ प्रतिहार काल की हैं (ल० नवीं शती ई० से ११वीं शती ई० के मध्य) एवं बलुए प्रस्तर में उकेरी गयी हैं। प्राप्त उदाहरणों में से अधिकतर उदाहरण खण्डित अवस्था में हैं।

प्रथम रावणानुग्रह मूर्ति उत्तर प्रदेश से प्राप्त है। ल० नवीं शती ई० की इस मूर्ति में शिव-पार्वती के कटि भाग के ऊपर का अंश पूर्णतया नष्ट हो चुका है। सुखासन में आसीन शिव-पार्वती के नीचे पीठिका पर गणेश, कार्त्तिकेय, शृङ्गी ऋषि और उनके वाहन नन्दी एवं सिंह का अंकन पारम्परिक रूप में हुआ है। यहाँ रावण एक मुख और द्विभुज है। रावण दो हाथों से खड्ग पकड़े तथा पर्वत के बोझ से दबे हुए भाव के साथ निरूपित है।[७२] यह मूर्ति भारत कला भवन, वाराणसी (क्रमांक-१५९/क) के उदाहरण के समतुल्य है।

बसॅवा (एटा, उत्तर प्रदेश) से प्राप्त ल० १०वीं शती ई० की एक अन्य रावणानुग्रह मूर्ति भी उपरोक्त मूर्ति की तरह खण्डित है। इसमें केवल पीठिका के नीचे का ही भाग शेष है। पर्वत पीठिका पर गणेश, नन्दी, नृत्यरत शृङ्गी और मयूरारूढ़ कार्त्तिकेय का अंकन पूर्व परम्परा में हुआ है। पर्वत खण्ड के नीचे एकमुख व षड्भुज रावण अपनी दो ऊर्ध्व बाहुओं से कैलाश उठाये, सामान्य करों में खड्ग एवं खेटक तथा नीचे के हाथों से घुटने एवं भूमि से टेक लगाये प्रदर्शित है। इस मूर्ति में रावण के पार्श्वों की सहायक आकृतियाँ रावण के पर्वतोत्तोलन में सहायता करती निरूपित हैं।

रावणानुग्रह स्वरूप की तीसरी प्रतिहार कालीन (ल० १०वीं शती ई०) मूर्ति (क्रमांक-एच० ४६) उपरोक्त दोनों मूर्तियों की तरह है। शिवासन के नीचे दायीं ओर ललितासन में परशुधारी गणेश (खण्डित मस्तक) का अंकन हुआ है। शिव-पार्वती के पाद भाग के मध्य शिव वाहन नन्दी का सुन्दर रूपायन हुआ है।[७३] पर्वत खण्ड के नीचे एकमुख एवं चतुर्भुज रावण अपने दो ऊर्ध्व बाहुओं से पर्वत के भार को नियन्त्रित करता एवं शेष सम्मुख भुजाओं से वीणा-वादन करता निरूपित है। रावण के दोनों पार्श्वों में दो-दो सहायक आकृतियों को आसीन व द्विभुज स्वरूप में कन्धे पर अलंकृत खड्ग लिए निरूपित किया गया है जबकि पर्वत का अंकन वक्र रेखाओं के माध्यम से हुआ है। इस मूर्ति में भी भारत कला भवन के उदाहरण (क्रमांक-१५९/क) की भाँति रावण को वीणा-

वादन करते रूपायित किया गया है। शिल्पी ने कथा के उस अंश का रूपायन किया है जिसके अनुसार शिव के अँगुष्ठ-भार से दबे रावण ने शिव-स्तुति द्वारा शिव को प्रसन्न किया था।

उत्तर प्रदेश से प्राप्त एवं ल० १०वीं-११वीं शती ई० की एक अन्य मूर्ति में (क्रमांक-एच० ७२) भी उपरोक्त तीनों मूर्तियों की तरह पीठिका के ऊपर का भाग खण्डित है। पीठिका के ऊपर क्रमशः दायें से बायें वृषभ (नन्दी), कमल पर आधारित शिव का पाद भाग एवं नृत्यरत भृङ्गी का अंकन शेष है और वाहन सिंह के मस्तक पर पार्वती का पाद भाग भी द्रष्टव्य है। पर्वत खण्ड के नीचे दो सहायक आकृतियों के साथ एकमुख व षड्भुज रावण अपने दो ऊर्ध्व बाहु से पर्वतोत्तोलन करता प्रदर्शित है। अन्य दो सामान्य करों में खड्ग एवं खेटक लिए और एक अन्य भुजा से भूमि पर टेक लगाये दिखलाया गया है।[७४] दो उपास्य आकृतियों का अंकन रावण के दायें एवं बायें पार्श्वों में हुआ है।

राज्य संग्रहालय, लखनऊ में संगृहीत रावणानुग्रह स्वरूप की पाँचवीं मूर्ति (क्रमांक-११४) मैहर (मध्य प्रदेश) से प्राप्त है। यह मूर्ति (ल० १०वीं-११वीं शती ई०) बलुए प्रस्तर में निर्मित है। इस खण्डित मूर्ति में शिव-पार्वती सुखासन में आलिंगनबद्ध हैं। चतुर्भुज शिव शेष दो करों में सनालपद्म लिए और पार्वती का आलिंगन करते निरूपित हैं। पार्वती द्विभुज स्वरूप में शिव जानु पर स्थित हैं उनका एक हाथ शिव स्कन्ध पर है एवं दूसरे में शृंगार का प्रतीक दर्पण है। शिवासन के नीचे वाहन नन्दी और सिंह आकृतियों के मध्य नृत्यरत भृङ्गी ऋषि का निरूपण हुआ है। साथ ही पर्वत खण्ड के नीचे एकमुख व चतुर्भुज स्वरूप में रावण की वीणा-वादन करती आकृति राज्य संग्रहालय, लखनऊ (क्रमांक-एच० ४६) के रावणानुग्रह मूर्ति के अनुरूप भाव-भंगिमा वाली है। इस मूर्ति की पीठिका के पार्श्वों में एक नर एवं एक नारी आकृति का अंकन सम्भवतः मूर्ति के दानकर्त्ता दम्पत्ति के रूप में हुआ है।[७५]

राज्य संग्रहालय, लखनऊ की छठी रावणानुग्रह मूर्ति (क्रमांक-२२१, ल० ११वीं शती ई०) प्रतिहार कला का प्रतिनिधि उदाहरण है।[७६] शिव-पार्वती पूर्ण विकसित कमल के आसन पर विराजमान हैं। त्रिनेत्र एवं चतुर्भुज स्वरूप में शिव ऊँचे अलंकृत जटामुकुट एवं त्रिनेत्रयुक्त हैं। इस स्वरूप में शिव अभय एवं त्रिशूलसहित पार्वती का कोमल स्पर्श करते ललितासन में द्रष्टव्य हैं। द्विभुजा पार्वती शिव जानु पर आसीन हैं। पार्वती एक हाथ से शिव के कन्धे को पकड़े हुए एवं दूसरे हाथ में दर्पण लिए आमूर्तित हैं। इस स्वरूप में पार्वती को शिव की ओर निहारते प्रदर्शित किया गया है। शिवासन के नीचे क्रमशः दायें से बायें शिव वाहन नन्दी (नीचे रावण की ओर देखते), क्रोधित मुद्रा में उमा वाहन सिंह, द्विभुज

गणेश, नृत्यरत ऋषि भृङ्गी तथा मयूरासीन कार्त्तिकेय का अंकन विशेष रूप से ध्यातव्य है। नीचे एकमुख व षड्भुज रावण की आकृति रूपायित है। इस स्वरूप में रावण ऊपरी करों से पर्वत को उठाते तथा मध्य करों में खड्ग एवं खेटक लिए प्रदर्शित है। रावण निचले दायें हाथ से उपहास करती लेटी आकृति का पैर पकड़े एवं एक अन्य हाथ घुटने पर रखकर सम्पूर्ण बल के साथ पर्वत उठाने में संलग्न दिखाया गया है। रावण के दोनों पार्श्वों की तीन-तीन आकृतियाँ उसकी सहायता करती अंकित हैं, जबकि बायें पार्श्व की दो गणाकृतियाँ पशुमुख एवं खट्वांग के द्वारा रावण पर आक्रमण करने की मुद्रा में निरूपित हैं। ऊपर के शीर्ष खण्ड में दायीं ओर आसीन ब्रह्मा एवं बायीं ओर विष्णु की आकृतियों के मध्य तथा शिव के मस्तक के ऊपर पंचलिङ्गों का अंकन हुआ है। सम्भवतः सृष्टि के प्रमुख पंचतत्त्व यथा—पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु तथा आकाश के प्रतीक के रूप में इन पंचलिङ्गों का अंकन हुआ हो।[७७] साथ ही यह भी सम्भव है कि यहाँ पंचलिङ्गों के उकेरन के माध्यम से शिल्पी ने शिव के 'पंचमुख' का सांकेतिक रूपायन किया हो। यह मूर्ति इलाहाबाद संग्रहालय, इलाहाबाद (क्रमांक-६५७) और भारत कला भवन, वाराणसी (क्रमांक-२३९८३) की मूर्तियों के समान है।[७८] इस मूर्ति में नन्दी वाहन का नीचे की ओर देखना, क्रोधित उमा वाहन सिंह और पशुमुख गण आकृतियों का रावण पर प्रहार करना उल्लेखनीय है। साथ ही दो गणाकृतियों का रावण के उपहास की मुद्रा में प्रदर्शन कथात्मक पृष्ठभूमि में रावण के पर्वतोत्तोलन में असफलता की स्थिति के क्रोध और उसकी प्रतिक्रिया का परिचायक है।

रावणानुग्रह स्वरूप की एक मूर्ति कंपिल (कायमगंज, उत्तर प्रदेश) से प्राप्त है और वर्तमान में विमलनाथ मन्दिर (कंपिल) के प्रांगण में स्थित श्री हजारीमल बाँठिया के व्यक्तिगत संग्रह में सुरक्षित है। यह प्रतिमा ल० १२वीं शती ई० की है। इस मूर्ति में शिव-पार्वती के कटि के नीचे का ही भाग शेष है। पार्वती शिव के जानु पर स्थित हैं। शिवासन के नीचे शिव की ओर मुँह उठाकर देखते नन्दी का अंकन स्वाभाविक रूप में हुआ है। पर्वत खण्ड के नीचे चतुर्भुज रावण दो ऊर्ध्व करों से पर्वतोत्तोलन करता एवं दो सामान्य करों में लम्बे खड्ग से सहायता लेकर कैलाशोत्तोलन में संलग्न दिखाया गया है। रावण के मध्य मुख के ऊपर गर्दभ शीर्ष के अंकन के माध्यम से शिल्पी ने उसके वेदज्ञ होने और साथ ही मुर्खतापूर्ण कार्य करने का एक साथ सांकेतिक अंकन किया है।[७९] रावण के दोनों ओर की सहायक आकृतियों को क्रमशः अपनी भुजाओं, स्कन्ध और पृष्ठभाग से पर्वत का भार वहन करते अंकित किया गया है।

सोरइया महादेव मन्दिर (भैरवनाथ, वाराणसी) की ल० १२वीं शती ई० की रावणानुग्रह मूर्ति क्षतक्षारित होने के कारण अपने पूर्ण विवरण के साथ स्पष्ट

नहीं है। शिव चतुर्भुज स्वरूप में त्रिशूल धारण किये (अन्य की स्थिति स्पष्ट नहीं) निरूपित हैं। रावण के द्वारा उठाये जाने से पर्वत कम्पायन हो उठा जिससे भयभीत पार्वती को शिव की ओर झुके दिखाया गया है।[८०] नीचे रावण की पर्याप्त खण्डित आकृति है जिसका एक मुख ही स्पष्ट है। हाथ, पैरों की स्थिति भी अस्पष्ट है। रावण को अपनी सम्पूर्ण शक्ति के साथ पर्वतोत्तोलन करते निरूपित किया गया है। इस मूर्ति की विशिष्टता रावण द्वारा उठाये गये पर्वत के किंचित् एक ओर झुके होने में है जिसके माध्यम से शिल्पी ने कथा के उस बिन्दु जिसमें पर्वत के हिलने से सम्पूर्ण वातावरण में भय व्याप्त हो गया था, का जीवन्त चित्रण प्रस्तुत किया है।

नवनिर्मित चित्रगुप्त मन्दिर (फतेहगढ़, उत्तर प्रदेश) की दीवार पर उमा-महेश्वर स्वरूप की एक प्रतिहार कालीन मूर्ति (ल० नवीं-१०वीं शती ई०) जड़ी हुई है जिसमें रावणानुग्रह मूर्ति का भाव स्पष्टतः पीठिका के नीचले भाग पर रावण की चतुर्भुज और एकमुख आकृति की उपस्थिति द्वारा दर्शाया गया है। ललित-मुद्रा में पार्वतीसहित विराजमान शिव जटामुकुट एवं अन्य आभूषणों से शोभित हैं। शिव के तीन करों में अभय-मुद्रा, पद्म, त्रिशूल है जबकि एक हाथ आलिंगन-मुद्रा में है। पीठिका पर शिव वाहन नन्दी और पार्वती के वाहन सिंह के साथ ही नृत्यरत भृङ्गी की आकृतियाँ भी उकेरी हैं जबकि पीठिका छोरों पर गणेश और कार्तिकेय की आकृति उपस्थित है। सबसे नीचे पर्वत उठाने की चेष्टा करती हुई रावण की आकृति का सुन्दर अंकन हुआ है जिसमें रावण के गर्दन का झुका होना पर्वत के नीचे उसके दबने का संकेत जान पड़ता है।[८१]

रावणानुग्रह स्वरूप की कई मूर्तियाँ मध्य प्रदेश के विभिन्न स्थलों से प्राप्त हुई हैं। इस स्वरूप की अधिकतर मूर्तियाँ भारतीय संग्रहालय, कलकत्ता सहित मध्य प्रदेश के विभिन्न संग्रहालयों यथा—रानी दुर्गावती पुरातत्त्व संग्रहालय, जबलपुर; केन्द्रीय संग्रहालय, इन्दौर; आशापुरी राज्य संग्रहालय, रायसेन; महात्मा गांधी स्मृति संग्रहालय, जबलपुर; जिला पुरातत्त्व संग्रहालय, शहडोल; छत्रसाल संग्रहालय, धुबेला; बघेला संग्रहालय, रीवा; रायगढ़ संग्रहालय; रायगढ़; सागर विश्वविद्यालय संग्रहालय, सागर एवं मध्य प्रदेश के कुछ अन्य स्थलों (लक्ष्मणेश्वर मन्दिर, बिलासपुर, खण्डवा व निमाड़) से प्राप्त हैं। सभी उदाहरणों में सामान्य अंकन के स्तर पर उत्तर-मध्यकालीन रावणानुग्रह मूर्ति के तत्त्व स्पष्ट रूप से परिलक्षित होते हैं।

रानी दुर्गावती पुरातत्त्व संग्रहालय, जबलपुर (मध्य प्रदेश) में संगृहीत एवं मध्य प्रदेश से प्राप्त रावणानुग्रह मूर्ति (चित्र १६) प्रतिहार कालीन (ल० नवीं-१०वीं शती ई०) हैं। इस खण्डित मूर्ति में शिव-पार्वती सुखासन में विराजमान

हैं। शिव एवं पार्वती के पाद भाग पद्मपीठ पर स्थित हैं। शिव के शेष एक हाथ में बीजपूरक है। पार्वती उनके बायें जानु पर स्थित हैं। शिवासन के नीचे आसीन गणेश की खण्डित आकृति मोदक-पात्र एवं दण्डयुक्त (परशु ?) है। शिव-पार्वती के पाद भाग के मध्य पीठिका पर रावण की ओर देखते वाहन नन्दी का अंकन प्रमुखता से हुआ है। नीचे रावण के मुख्य मुख के ऊपर गर्दभ शीर्ष का अंकन है। रावण चतुर्भुज रूप में पर्वतोत्तोलन करता एवं खड्ग पकड़े दिखाया गया है। रावण के पार्श्व की दो-दो सहायक आकृतियाँ स्थानक एवं दण्ड युक्त अंकित हैं। इस मूर्ति में परिकर का अंश खण्डित है।

रानी दुर्गावती पुरातत्त्व संग्रहालय की दूसरी (ल० १०वीं शती ई०) रावणानुग्रह मूर्ति (चित्र १७) बहुत ही अलंकृत परन्तु दुर्भाग्यवश खण्डित है। इस मूर्ति में कमलासन पर आसीन शिव-पार्वती के मस्तक तथा हाथ और पैर के भाग प्रायः नष्ट हो चुके हैं। पीठिका पर गणेश (परशु एवं मोदक पात्र युक्त) मयूरारूढ़ कार्त्तिकेय, वाहन नन्दी (खण्डित मस्तक) तथा नृत्यरत शृङ्गी का अंकन हुआ है जो उत्तर भारतीय उमा-महेश्वर मूर्तियों की सामान्य परम्परा रही है। पीठिका के नीचे चतुर्भुज रावण वीरासन-मुद्रा में है तथा दो ऊर्ध्व बाहुओं से पर्वतोत्तोलन करता एवं दो सामान्य करों में खड्ग धारण किये प्रदर्शित है। रावण की पार्श्वाकृति के रूप में दोनों ओर तीन-तीन स्थानक सहायक आकृतियाँ निरूपित हैं। परिकर में हंसारूढ़ ब्रह्मा, गरुडासीन चतुर्भुज विष्णु, सिंह, व्याल तथा ऊपर की ओर देखते सिंह वाहन का अंकन प्रभावशाली रूप में हुआ है। प्रभामण्डल के दोनों पार्श्वों में युगल मालाधारी विद्याधर आकृतियों (मस्तक खण्डित) की शारीरिक संरचना एवं भारी मालाओं का अंकन बहुत ही सुन्दर है। मुख्याकृति की देहयष्टि की स्थिति और भंगिमा *शिशुपालवध* में वर्णित कथा के उस अंश को व्यक्त करने में सक्षम है, जिसमें रावण द्वारा पर्वत हिलायें जाने से भयाक्रान्त पार्वती सिमटकर शिव के समीप आती हैं और शिव उनके प्रगाढ़ आलिंगन से प्रसन्न होते हैं।

रावणानुग्रह स्वरूप (चित्र १८) की तीसरी मूर्ति (ल० १०वीं शती ई०) रानी दुर्गावती पुरातत्त्व संग्रहालय (क्रमांक-१०८) में संरक्षित है। यह मूर्ति उपरोक्त मूर्तियों की तरह खण्डित है। इस मूर्ति में शिव-पार्वती प्रसन्न मुद्रा में विराजमान हैं। शिव एक हाथ में सनालपद्म धारण किये और दूसरे हाथ से पार्वती का स्पर्श करते हुए आलिंगनबद्ध निरूपित हैं। पार्वती एक हाथ से नीचे रावण की ओर निर्दिष्ट कर पर्वत हिलाने के कारण की ओर शिव का ध्यान आकृष्ट करा रही हैं। शिव और पार्वती का पाद भाग पद्म पर है। पीठिका पर वाहन नन्दी को गर्दन उठाकर शिव की ओर देखते अंकित किया गया है। पर्वत खण्ड के

नीचे रावण की वीणा-वादन करती आकृति और साथ ही उसकी दो सहायक आकृतियाँ शंख एवं झाल बजाती हुई निरूपित हैं। यहाँ रावण अपने सहायकों के साथ शिव द्वारा पर्वत दबाये जाने के पश्चात् शिव की संगीतमय आराधना में संलग्न दिखाया गया है।

रानी दुर्गावती संग्रहालय (क्रमांक-४७) की चौथी रावणानुग्रह मूर्ति (ल० ११वीं शती ई०) तेवर, जबलपुर (चित्र १७) से प्राप्त है। शिव-पार्वती का अंकन पूर्वोक्त रावणानुग्रह मूर्ति के समान है। चतुर्भुज शिव के हाथों में बीजपूरक, त्रिशूल एवं सनालपद्म हैं, शेष एक हाथ से शिव पारम्परिक स्वरूप में पार्वती का आलिंगन करते निरूपित हैं। पीठिका पर गणेश, कार्त्तिकेय (आसीन मुद्रा) और नन्दी (नीचे रावण की ओर देखने की मुद्रा में) का अंकन हुआ है। पर्वत खण्ड के नीचे चतुर्भुज रावण के पाश्र्वों की सहायक आकृतियों को वाद्य-यन्त्रों (तुरही और झाल) का प्रयोग करते दिखाया गया है जिसके माध्यम से रावण में पर्वत उठाने के लिये अतिरिक्त ऊर्जाशक्ति का संचार प्राप्त करने का भाव व्यक्त हुआ है।[८२] रावण मुख भाग के ऊपर गर्दभ शीर्ष का भी अंकन है। रावण अपने ऊर्ध्व करों से पर्वतोत्तोलन करता एवं सामान्य करों में दुधारी खड्ग लिए निरूपित है।[८३] परिकर और शीर्ष पर अंकित आकृतियाँ उपरोक्त मूर्तियों की परम्परा में हैं।

रानी दुर्गावती पुरातत्त्व संग्रहालय (चित्र १९) की पाँचवीं रावणानुग्रह मूर्ति मध्य प्रदेश से प्राप्त (ल० ११वीं शती ई०) है। इस मूर्ति में शिव-पार्वती रानी दुर्गावती संग्रहालय की वर्णित तीसरी प्रतिमा (क्रमांक-१०८) के समान निरूपित हैं। मूर्ति के मध्य में नीचे आसीन रावण दो ऊर्ध्व बाहुओं से शिव द्वारा पर्वत को दबाये जाने के पश्चात् पर्वत के भार को नियन्त्रित करता एवं अन्य दो सामान्य करों से वीणा-वादन करता द्रष्टव्य है। इस स्थिति में रावण के दोनों पैर पीछे की ओर मुड़े हुए हैं। रावण के पाश्र्वों में तीन-तीन द्विभुज आकृतियाँ अंजलिबद्ध एवं आसीन-मुद्रा में आकारित हैं।

भारतीय संग्रहालय, कलकत्ता (क्रमांक-४९८) में सुरक्षित एवं खजुराहो (मध्य प्रदेश) से प्राप्त रावणानुग्रह स्वरूप (चित्र २०) की चन्देल कालीन मूर्ति अपने सुन्दर नियोजन एवं भावाभिव्यक्ति के कारण विशेषतः उल्लेखनीय है। शिव-पार्वती एक आसन पर विराजमान हैं। चतुर्भुज शिव जटामुकुट, प्रभामण्डल एवं अन्य अलंकरणों से शोभित हैं। शिव एक हाथ में त्रिफण सर्प धारण किये तथा एक अन्य हाथ से पार्वती का आलिंगन करते अंकित हैं। यहाँ शिव के शान्त एवं अविचल स्वरूप का सुन्दर अंकन हुआ है जबकि द्विभुजा पार्वती एक हाथ में दर्पण लिए उद्विग्न स्वरूप में शिव के जानु पर आकारित हैं। पीठिका पर गणेश,

मयूरासीन कार्त्तिकेय एवं भृङ्गी ऋषि का अंकन है। शिव वाहन नन्दी को शिवासन के नीचे से झाँकते एवं उमा वाहन सिंह को क्रोधित अवस्था में दिखाया गया है। पीठिका के नीचे चतुर्भुज रावण को वीरासन-मुद्रा में पारम्परिक स्वरूप में खड्ग सहित पर्वत उठाने में क्रियाशील दिखाया गया है। रावण के पार्श्व में एक-एक सहायक आकृतियों का अंकन हुआ है। रावण के सम्मुख आगे की ओर झुककर अश्लील-मुद्रा में उसका उपहास उड़ाते दो गणाकृतियों का अंकन है। इस मूर्ति के अगल-बगल बनी स्तम्भाकृति के शीर्ष पर दायें त्रिमुख ब्रह्मा और बायें चतुर्भुज विष्णु अपने पारम्परिक आयुधों के साथ आसीन हैं। मूर्ति के शीर्ष भाग के मध्य में एक पीठिका पर अंकित पंचलिङ्ग को लेकर गदाधारी गन्धर्व युगल आकृतियाँ उड़ने की अवस्था में निरूपित हैं जो इस मूर्ति की विशिष्टता भी है। यह मूर्ति राज्य संग्रहालय, लखनऊ (क्रमांक-२२१) की रावणानुग्रह मूर्ति से शिव-पार्वती वाहनों की क्रोधित मुद्रा और शिवगणों द्वारा रावण के उपहास के अंकन की दृष्टि से साम्य रखती है। मध्यकालीन मूर्तियों में मौली (मुकुट) लेकर उड़ती गन्धर्व आकृतियों के स्थान पर पंचशिवलिङ्गों के साथ गन्धर्वाकृतियों का अंकन विशेष रूप से ध्यातव्य है। पंचलिङ्गों के माध्यम से शिल्पी ने शिव के 'पंचाक्षर मन्त्र' का मूर्त स्वरूप प्रस्तुत किया है।

केन्द्रीय संग्रहालय, इन्दौर (मध्य प्रदेश) में रावणानुग्रह स्वरूप की दो मूर्तियाँ हैं। दोनों ही मूर्तियाँ हिंगलाजगढ़, मन्दसौर (मध्य प्रदेश) से प्राप्त एवं परमार कालीन (ल० १०वीं शती ई०) हैं। शैली एवं रचना की दृष्टि से ये दोनों मूर्तियाँ लगभग एक जैसी ही हैं। हिंगलाजगढ़ की प्रथम रावणानुग्रह मूर्ति (चित्र २१) में कमलासन पर चतुर्भुज शिव व द्विभुजा पार्वती आलिंगनबद्ध स्वरूप में विराजमान हैं। इसमें शिवासन के पार्श्व से निकलते एवं नीचे की ओर देखते शिव-पार्वती के वाहन नन्दी एवं सिंह का अंकन सुन्दर है। पंचमुख व अष्टभुज रावण को वीरासन-मुद्रा में और शिव-पार्वती को कमलासन सहित उठाते दिखाया गया है। रावण खड्ग, शूल, धनुष व खेटक धारण किये हुए है जबकि शेष दो भुजाओं से उसे उपहास करती शिवगण आकृतियों का पैर पकड़े निरूपित किया है। इस मूर्ति में परम्परा के विरुद्ध और सिरोन-खुर्द प्रतिमा के लगभग समान रावण के पार्श्वों में क्रमशः दायें व बायें कार्त्तिकेय व गणेश को आसीन-मुद्रा में आकारित किया गया है। परिकर में सिंह, व्याल व शिवगण स्थानक रूप में द्रष्टव्य हैं। ब्रह्मा एवं विष्णु का निरूपण पूर्व परम्परा के अनुरूप है। शीर्ष पर एक प्रतिमा (खण्डित) के पार्श्वों में युगल मालाधारी विद्याधरों की आकृतियों का अंकन है।[८४]

हिंगलाजगढ़ की दूसरी रावणानुग्रह मूर्ति (चित्र २२) में ललितासन में बैठे चतुर्भुज शिव और द्विभुजा पार्वती को आलिंगनबद्ध अंकित किया गया है। शिव

अभय-मुद्रा के अतिरिक्त हाथों में त्रिशूल, सर्प धारण किये तथा अन्य एक हाथ से पार्वती के स्तन को स्पर्श करते दिखाये गये हैं। पीठिका पर शिवगण, आक्रामक मुद्रा में गणेश, कार्त्तिकेय, कंकाल रूप में नृत्यरत भृङ्गी, नन्दी एवं सिंह की आकृतियाँ निरूपित हैं। पीठिका के नीचे एकमुख एवं चतुर्भुज रावण का अंकन पारम्परिक रूप में दो-दो सहायक आकृतियों के मध्य हुआ है। रावण के मुख के ऊपर गर्दभ शीर्ष का भी अंकन है। पर्वतोत्तोलन करते रावण के सम्मुख भयवश भागती गण आकृतियों में से एक का पैर पकड़कर फेकने जैसा अंकन रावण की शक्ति और क्रोध का समवेत रूप प्रस्तुत करता है।[८५] मूर्ति के शीर्ष भाग पर उत्कीर्ण शिवलिङ्ग का दो गन्धर्व आकृतियों द्वारा उठाया जाना भारतीय संग्रहालय, कलकत्ता (क्रमांक-४९८) के उदाहरण से साम्य रखता है। ब्रह्मा एवं विष्णु का अंकन यथास्थान परम्परागत रूप में हुआ है। इस मूर्ति की विशिष्टता शिव द्वारा पार्वती को अभय-दान और गणेश का उग्र रूप में प्रदर्शन है।

रायसेन के भूतनाथ मन्दिर से प्राप्त और सम्प्रति राज्य संग्रहालय, आशापुरी (मध्य प्रदेश) में सुरक्षित रावणानुग्रह मूर्ति (चित्र २३) परमार काल की (ल० १०वीं शती ई०) है। इस मूर्ति में शिव-पार्वती के मस्तक का भाग पूर्णतया नष्ट हो चुका है। प्रस्तुत मूर्ति के उत्कीर्णन द्वारा शिल्पी ने मूर्ति के कलात्मक एवं भावात्मक दोनों पक्षों की सुन्दरतम अभिव्यक्ति प्रस्तुत की है।[८६] अलंकृत प्रभामण्डल से युक्त एवं अलंकृत आसन पर विराजमान शिव-पार्वती की आकृतियाँ सुन्दर हैं। चतुर्भुज शिव एक हाथ में त्रिशूल लिये एवं अन्य हाथों से पार्वती के चिबुक एवं स्तन का स्नेहिल स्पर्श करते तथा सर्प सहित दिखाये गये हैं। पार्वती शिव जानु पर आसीन हैं तथा एक हाथ से शिव स्कन्ध को पकड़े हुए हैं। पीठिका पर रावण की ओर देखते नन्दी एवं सिंह की क्रोधित आकृतियों का अंकन विशेष रूप से द्रष्टव्य है। शिव और पार्वती के पाद भाग में स्थित क्रमशः गणेश एवं मयूरारूढ़ कार्त्तिकेय का रावण के कृत्य पर उत्तेजित अवस्था में अपने-अपने आयुधों से रावण पर प्रहार करने की मुद्रा में अंकन हुआ है जो भुवनेश्वर के परशुरामेश्वर मन्दिर के समान है। पीठिका के नीचे पाँच पार्श्वाकृतियों के मध्य त्रिमुख एवं चतुर्भुज रावण को पर्वतोत्तोलन में संलग्न दिखाया गया है। रावण की पार्श्व आकृतियों को भी पर्वतोत्तोलन में उसकी सहायता करते प्रदर्शित किया गया है। पूर्वोक्त मूर्ति के समान रावण के सम्मुख दो शिवगण आकृतियों का अंकन अश्लील-उपहास की मुद्रा में हुआ है। प्रभामण्डल के दोनों पार्श्वों में त्रिमुख एवं चतुर्भुज ब्रह्मा तथा चतुर्भुज विष्णु की आकृतियाँ उत्कीर्ण हैं। प्रभामण्डल के दोनों ओर युगल मालाधारी गन्धर्व आकृतियाँ द्रष्टव्य हैं।

करितलाई, जबलपुर से प्राप्त एवं महात्मा गांधी स्मृति संग्रहालय, रायपुर (क्रमांक-२५२४) में संग्रहीत रावणानुग्रह मूर्ति (चित्र २४, ल० १०वीं शती ई०) के पीठिका शीर्ष पर आसीन चतुर्भुज शिव एवं पार्वती आलिंगनबद्ध हैं। शिव के हाथों में बीजपूरक (खण्डित), त्रिशूल, तीन फणों वाला सर्प है तथा एक हाथ से शिव-पार्वती स्तन स्पर्श करते रूपायित हैं। द्विभुजा पार्वती परम्परानुसार शिव जानु पर स्थित और शिव की तरफ इस प्रकार से झुकी हैं जिससे उनका सम्पूर्ण भार शिव पर आ गया है। पार्वती के भार से प्रभावित शिव भी मानो थोड़ा आगे की ओर झुक गये हैं। पीठिका के नीचे त्रिमुख व षड्भुज रावण की आकृति वीरासन में है तथा दो सामान्य करों में खड्ग धारण किये निरूपित है। पार्श्वाकृतियों के रूप में यहाँ गणेश (खण्डित) और त्रिमुख व द्विभुज स्वरूप वाले कार्त्तिकेय की उपस्थिति आक्रामक-मुद्रा में विशेषतः ध्यातव्य है। ऊपर प्रभामण्डल के पार्श्वों में क्रमशः ब्रह्मा व विष्णु तथा प्रभामण्डल के ऊपर मध्य में पंचशिवलिङ्ग का अंकन हुआ है। इस मूर्ति में कथा के उस अंश का अंकन हुआ है जिसमें रावण द्वारा पर्वत उठाने से भयाक्रान्त पार्वती शिव के अतिसमीप आ जाती हैं। मूर्ति की दूसरी विशेषता यह है कि रावण के खण्ड में ही अपने-अपने आयुधों से सज्जित गणेश व कार्त्तिकेय की आक्रामक एवं गतिशील-मुद्रा में रूपायन हुआ है।

वीरसिंहपुर, पाली (मध्य प्रदेश) से प्राप्त रावणानुग्रह मूर्ति (ल० १०वीं-११वीं शती ई०) वर्तमान में जिला पुरातत्त्व संग्रहालय (क्रमांक-१), शहडोल (मध्य प्रदेश) में सुरक्षित है। इस मूर्ति में उत्तर भारत की सामान्य रावणानुग्रह प्रतिमाओं की भाँति आलिंगन मुद्रा में ललितासन में विराजमान शिव-पार्वती द्रष्टव्य हैं। पाद-पीठिका पर नन्दी व सिंह के मध्य शृङ्गी ऋषि की नृत्यरत मूर्ति आकारित है, जबकि पीठिका के दोनों पार्श्वों में क्रमशः गणेश व कार्त्तिकेय उपस्थित हैं। चतुर्भुज रावण ऊर्ध्व करों से पर्वतोत्तोलन एवं सामान्य करों में खड्ग धारण किये अपनी सहायक आकृतियों के साथ असफल प्रयास करता दिखलाया गया है। परिकर में उपासक, उपासिका, शिवगण एवं अन्य आकृतियों का अंकन है।[८७]

छत्रसाल संग्रहालय, धुबेला (मध्य प्रदेश) में सुरक्षित एवं मोहनगढ़-टीकमगढ़ (मध्य प्रदेश) से प्राप्त रावणानुग्रह मूर्ति (ल० १०वीं शती ई०) में शिव-पार्वती को ललितासन में दिखाया गया है। शिव जटामुकुट एवं अन्य अंलकरणों से सुशोभित हैं। चतुर्भुज शिव का दायाँ पैर पद्म स्थण्डिल पर स्थित है। शिव के ऊपर के दोनों हाथ खण्डित हैं, जबकि शेष हाथों से अभय-मुद्रा एवं पार्वती के स्तन का सूक्ष्म स्पर्श करते अंकित हैं। द्विभुजा पार्वती का दायाँ पैर सिंह (वाहन) के मस्तक पर है। पीठिका पर नन्दी व सिंह के मध्य नृत्यरत शृङ्गी ऋषि तथा दोनों शीर्षों पर क्रमशः गणेश व कार्त्तिकेय का अंकन है। नीचे रावण परम्परागत स्वरूप में पर्वतोत्तोलन की मुद्रा में है। यह मूर्ति चन्देल कालीन अन्य

उदाहरणों (पुरातत्त्व संग्रहालय, खजुराहो एवं इलाहाबाद संग्रहालय) के विवरण और कलात्मक अंकन से समानता रखता है।[८८] परन्तु भाव प्रदर्शन की दृष्टि से अन्य उदाहरणों की तुलना में यह मूर्ति कमजोर है।[८९]

गुर्गी, रीवा (मध्य प्रदेश) से प्राप्त कलचुरि कालीन (ल० १०वीं-११वीं शती ई०) रावणानुग्रह मूर्ति वर्तमान में बघेला संग्रहालय, रीवा में सुरक्षित है। इस प्रतिमा में पीठिका के ऊपर का भाग पूर्णरूपेण भग्नावस्था में है। पीठिका पर दायें से बायें क्रमशः आसीन गणेश, नन्दी, नृत्य-मुद्रा में शृङ्गी ऋषि एवं मयूरारूढ़ कार्त्तिकेय को देखा जा सकता है। नीचे चतुर्भुज रावण परम्परागत रूप में अपने सहायकों के साथ पर्वतोत्तोलन का प्रयास करते हुए निरूपित है। शेष आकृतियाँ खण्डित हैं।

भोपाल स्थित राजकीय संग्रहालय एवं बिड़ला संग्रहालय में कुल तीन रावणानुग्रह मूर्तियाँ हैं। इनमें से एक राजकीय संग्रहालय में एवं शेष दो बिड़ला संग्रहालय में सुरक्षित हैं। तीनों मूर्तियाँ कलचुरि एवं परमार कालीन (ल० ११वीं से १२वीं शती ई० के मध्य निर्मित) उदाहरण हैं। राजकीय संग्रहालय (क्रमांक-७९०) की रावणानुग्रह मूर्ति (चित्र २५) में शिव-पार्वती ललितासन में विराजमान हैं। इस स्वरूप में चतुर्भुज शिव जटामुकुट एवं अन्य अलंकरणों से सज्जित हैं। इसमें शिव त्रिशूल, सर्प एवं पार्वती स्तन और ठुड्डी का स्पर्श करते निरूपित हैं। शिव जानु पर स्थित द्विभुजा पार्वती शिव स्कन्ध को पकड़कर रावण की ओर संकेत करने की मुद्रा में दृष्टव्य हैं। शिव-पार्वती के पैरों के मध्य पर्वत पीठिका पर वाहन नन्दी और सिंह के बीच प्रहारक मुद्रा में शृङ्गी का अंकन विशेषतया ध्यातव्य है। पर्वत खण्ड के नीचे चतुर्भुज रावण ऊर्ध्व बाहुओं से पर्वतोत्तोलन करता निरूपित है। उसकी दो सामान्य भुजाओं में लम्बा खड्ग है। रावण के पार्श्वों की एक-एक गण आकृतियाँ उसका उपहास करती अंकित हैं। रावण के दायें एवं बायें क्रमशः कार्त्तिकेय तथा गणेश का अंकन है, जिनके मस्तक पर क्रमशः शिव व पार्वती के पाद भाग स्थित हैं।

नियोरी मन्दिर, भोपाल (मध्य प्रदेश) से प्राप्त रावणानुग्रह मूर्ति वर्तमान में बिड़ला संग्रहालय में (क्रमांक-बी०एम० ११४३) सुरक्षित है। इस मूर्ति में पद्मालंकृत प्रभामण्डल ये युक्त शिव-पार्वती ललितासन में विराजमान हैं। त्रिनेत्र एवं चतुर्भुज शिव जटाजूट व अन्य परम्परागत आभूषणों से युक्त हैं। इस स्वरूप में शिव, पार्वती स्तन का मृदु स्पर्श करते एवं स्वयं के घुटने पर हाथ रखें आकारित हैं। पीठिका पर आसीन गणेश की आकृति परशु से प्रहार की मुद्रा में निरूपित है। इसी प्रकार कार्त्तिकेय की मस्तकविहीन आकृति भी रावण पर अपने शूल द्वारा प्रहार की मुद्रा में शिव वाहन नन्दी एवं शृङ्गी ऋषि के साथ आकारितं है। पीठिका के नीचे त्रिमुख व चतुर्भुज रावण अपने दो ऊर्ध्व बाहुओं और साथ ही खड्ग की सहायता से पर्वतोत्तोलन में तत्पर है। रावण के मध्य मुख के ऊपर गर्दभ शीर्ष का अंकन भी

हुआ है। रावण के पार्श्वों में तीन-तीम स्थानक आकृतियाँ एक हाथ में खड्ग लिये व दूसरे से पर्वतोत्तोलन में रावण की सहायता करती निरूपित हैं। परिकर की शेष आकृतियों का अंकन परम्परागत रूप में किन्तु प्रभावशाली ढंग से हुआ है।[१०]

बिड़ला संग्रहालय, भोपाल (क्रमांक-बी०एम० ११९) की दूसरी रावणानुग्रह मूर्ति में शिव-पार्वती की आकृति खण्डित है। उपरोक्त मूर्तियों के समान शिव-पार्वती एक ही आसन पर आसीन हैं। पाद पीठिका पर नन्दी एवं भृङ्गी ऋषि का अंकन है। नीचे रावण की त्रिमुख व चतुर्भुज आकृति वीरासन में पर्वतोत्तोलन में चेष्टारत है। रावण के पार्श्वों की तीन-तीन आकृतियाँ उसकी (रावण की) सहायता करती निरूपित हैं जबकि अन्य दोनों पार्श्वों की दो-दो आकृतियाँ विभिन्न वाद्य-यन्त्रों की सहायता से रावण का मानों उत्साहवर्धन कर रही हैं। रावण के पार्श्वों में यहाँ भी गणेश व कार्त्तिकेय का अंकन है। प्रभामण्डल के दोनों ओर क्रमशः ब्रह्मा व विष्णु का अंकन है, जबकि सर्वोपरि भाग के मध्य में लंकुलीश की आकृति तीन-तीन मालाधारी गन्धर्व आकृतियों के मध्य द्रष्टव्य है।

पुरातत्त्व संग्रहालय, खजुराहो (छतरपुर, मध्य प्रदेश) की रावणानुग्रह मूर्ति चन्देल कालीन (ल० ११वीं-१२वीं शती ई०) तत्त्वों से परिपूर्ण है। इस मूर्ति में चतुर्भुज शिव जटामुकुट एवं अन्य अलंकरणों से शोभित हैं। शिव एक हाथ से पार्वती के स्तन का स्पर्श (शेष हाथ खण्डित) करते अंकित हैं। द्विभुजा पार्वती एक हाथ से शिव स्कन्ध पकड़े एवं दूसरे में दर्पण लिए आकारित हैं। पीठिका पर गणेश, नन्दी, भृङ्गी व कार्त्तिकेय का अंकन परम्परागत रूप में हुआ है। पीठिका के दोनों ओर एक-एक स्थानक शिवगणों की खट्वांग व त्रिशूलधारी आकृतियाँ द्रष्टव्य हैं। पर्वत खण्ड के नीचे चतुर्भुज रावण अपनी दो सहायक आकृतियों के साथ पर्वतोत्तोलन करता अंकित है। रावण के सम्मुख भाग में हास्य-व्यंग्य करती दो गणाकृतियों का भी अंकन हुआ है। प्रभामण्डल के पार्श्व में ब्रह्मा व विष्णु तथा मूर्ति शीर्ष पर पंचशिवलिङ्ग को उठाये युगल गन्धर्व आकृतियों का अंकन अन्य चन्देल मूर्तियों के समान है। इस मूर्ति में पंचशिवलिङ्गों को गन्धर्व युगल आकृतियों द्वारा उठाये हुए रूप में प्रदर्शन हिंगलाजगढ़ और भारतीय संग्रहालय, कलकत्ता में सुरक्षित रावणानुग्रह मूर्तियों से साम्य रखता है। प्रस्तुत उदाहरण में शिव का शान्त व अविचल स्वरूप, पार्वती का भयाक्रान्त रूप और रावण की सम्पूर्ण शक्ति से पर्वतोत्तोलन में संलग्न आकृतियाँ अपने शारीरिक विन्यास एवं अलंकरण तत्त्वों की दृष्टि से सुन्दर हैं।[११]

रायगढ़ (मध्य प्रदेश) से प्राप्त एवं जिला संग्रहालय में सुरक्षित रावणानुग्रह मूर्ति (ल० ११वीं-१२वीं शती ई०) उत्तर भारत की अन्य रावणानुग्रह प्रतिमाओं के समान है। इस मूर्ति में शिव का मस्तक एवं दायाँ पैर खण्डित है।

चतुर्भुज शिव तथा द्विभुजा पार्वती परम्परागत आभूषण एवं सुन्दर केश विन्यास से युक्त और ललितासन में विराजमान हैं। पीठिका पर नन्दी और सिंह वाहनों के मध्य नृत्यरत भृङ्गी ऋषि का अंकन तथा पार्श्वाकृति के रूप में गणेश एवं कार्त्तिकेय की आसीन आकृतियाँ द्रष्टव्य हैं। पीठिका के पार्श्वों में महाकाल एवं भैरव का स्थानक रूप में अंकन हुआ है। नीचे रावण अपने पारम्परिक स्वरूप में पर्वत उठाने का प्रयास करता निरूपित है।

त्रिपुरी (मध्य प्रदेश) से प्राप्त (ल० १२वीं शती ई०) रावणानुग्रह स्वरूप की मूर्ति (चित्र २६) सम्प्रति सागर विश्वविद्यालय, सागर (क्रमांक-४१२) में सुरक्षित है। अलंकृत प्रभामण्डल एवं अन्य आभूषणों से आभूषित शिव-पार्वती आसीन हैं। त्रिशूलधारी चतुर्भुज शिव द्विभुजा पार्वती की ठुड्डी का स्पर्श करते एवं उनका प्रगाढ़ आलिंगन करते निरूपित हैं जबकि पार्वती शिव के समीप आकर अपने आप को भयमुक्त करने का प्रयास कर रही हैं। इस स्थिति में मानों शिव-पार्वती को प्रेमपूर्वक अपने स्वरूप और बल का आभास दिलाते स्वयं के उपस्थित होने मात्र से भय एवं भय के कारण दोनों के शमन होने का बोध करा रहे हों। शिव का पार्वती की ठुड्डी को इस प्रकार स्पर्श करना, कलचुरि कालीन दो ताम्र-पत्र अभिलेखों (रतनपुर और पृथ्वीदेव द्वितीय का लेख) में वर्णित सन्दर्भ के अनुरूप है।[९२] इसी क्रम में शिव द्वारा अविचल स्वरूप में अपने दायें पैर के अँगुष्ठ-भार से ही रावण के सम्पूर्ण प्रयास को निष्फल करने का सुन्दर अंकन हुआ है। पीठिका पर वाहन नन्दी (खण्डित) एवं भृङ्गी ऋषि का रूपायन हुआ है। नीचे रावण चतुर्भुज स्वरूप में दो-दो पार्श्व आकृतियों के साथ पर्वतोत्तोलन का असफल प्रयास करता निरूपित है। यहाँ रावण की पार्श्वाकृतियाँ उसकी सहायता न करके नृत्यरत एवं अंजलिबद्ध-मुद्रा में आकारित हैं। परिकर की अन्य आकृतियों का अंकन परम्परागत रूप में हुआ है। रावण के पार्श्वाकृतियों की मुद्राओं से आभास होता है कि शिल्पी ने रावण के असफल प्रयास के बाद के दृश्य को इस मूर्ति के माध्यम से व्यक्त किया है।

खण्डवा, निमाड़ (मध्य प्रदेश) की एक भग्नावशेष (सम्भवतः मन्दिर) दीवार पर उत्कीर्ण परमार कालीन (ल० १३वीं शती ई०) रावणानुग्रह मूर्ति में चतुर्भुज शिव ललितासन में जटामुकुट, ग्रैवेयक, कुण्डल, हार एवं वन-माला आदि अलंकरणों से विभूषित हैं। शिव के बायें जानु पर आसीन द्विभुजा पार्वती सुन्दर केश सज्जा और हाथ में शृङ्गार के प्रतीक दर्पण के साथ दिखायी गयी हैं। शिवासन के नीचे पीठिका पर दायीं ओर आसीन गणेश और बायीं ओर मयूरारूढ़ कार्त्तिकेय के मध्य नन्दी एवं नृत्यरत भृङ्गी ऋषि का अंकन भी उत्तर भारत की उमा-महेश्वर मूर्ति परम्परा में हुआ है। त्रिमुख और चतुर्भुज रावण को सहायक

आकृतियों के साथ वीरासन में पर्वत उठाने की चेष्टा में संलग्न दिखाया गया है। ऊपर दायीं ओर चतुर्भुज ब्रह्मा और बायीं ओर चतुर्भुज विष्णु आसीन हैं। इस प्रतिमा के निरूपण से निमाड़ के शिल्पी ने उच्च कल्पनाशीलता एवं सृजनात्मक शक्ति का परिचय दिया है।[९३]

रावणानुग्रह की उपरोक्त वर्णित मूर्तियों के अतिरिक्त एक और प्रकार की रावणानुग्रह मूर्ति स्वरूप का निर्दशन मिलता है—वह है रावण द्वारा शिव को **मस्तक-दान**। यह स्वरूप विरल स्वरूप है और इसके अब तक बहुत ही कम उदाहरण प्राप्त हुये हैं। एक पारम्परिक कथा के अनुसार एक बार रुद्राभिषेक के दौरान रावण ने अपने मस्तकों को काटकर शिव को अर्पित करना प्रारम्भ किया। अपने नौ मस्तकों को काटने के बाद रावण जब दसवाँ मस्तक काटने को उद्यत हुआ तभी शिव उसकी असीम भक्ति पर प्रसन्न होकर प्रकट हुए और उन्होंने रावण पर अनुग्रह करते हुए उसको अमर रहने का वरदान दिया। रावणानुग्रह के इस स्वरूप में रावण द्वारा शिवलिंग की पूजा, अपने मस्तकों का बलिदान एवं शिव के प्रकट होने का सन्दर्भ मिलता है। इस स्वरूप का एक दुर्लभ उदाहरण एलोरा के कैलाश मन्दिर से प्राप्त हुआ है। इस मूर्ति में शिव के प्रति रावण की अनन्य भक्ति का सजीव अंकन हुआ है। इस उदाहरण में ऊपर की ओर शिवलिङ्ग प्रमुखता से उत्कीर्ण हैं। शिवलिङ्ग के तीन ओर रावण के नौ कटे हुए मस्तक अंकित हैं। शिवलिङ्ग के नीचे दोनों पैर मोड़कर पूजा के आसन में बैठा रावण एक हाथ से अपना मस्तक पकड़े और दूसरे हाथ में खड्ग लेकर अपना मस्तक काटने को प्रस्तुत है। रावण के पास ही पूजा के आवश्यक तत्त्व अग्निकुण्ड और जलकलश भी प्रदर्शित हैं। इस मूर्ति में किरीटमुकुटधारी रावण की भक्ति भावना का सजीव अंकन हुआ है। रावण द्वारा मस्तक दान का एक और प्रसंग कलचुरि कालीन उत्तरंग पर है, जो वर्तमान में रतनपुर किले की दीवार में संलग्न है। इस उत्तरंग पर बीस भुजाओं वाले रावण की आकृति कटे हुए अपने अन्य मस्तकों के समीप शिवलिङ्ग सहित अंकित है।[९४]

रावणानुग्रह मूर्तियों के अध्ययन से यह स्पष्ट है कि शिव के अनुग्रह स्वरूपों में रावणानुग्रह स्वरूप साहित्य एवं शिल्प दोनों में प्रारम्भिकतम है। इसी कारण यह स्वरूप कला में सर्वाधिक व्यापक एवं लोकप्रिय रहा है जिसके कम से कम ७८ उदाहरण हमें सम्पूर्ण भारतवर्ष से प्राप्त होते हैं। साथ ही रावणानुग्रह मूर्तियों के निरूपण में जितनी क्षेत्रीय विभिन्नतायें हमें मिलती हैं, वह भी शिव के अन्य अनुग्रह स्वरूपों के सन्दर्भ में दुर्लभ हैं।

उत्तर भारत की उमा-महेश्वर मूर्तियों की पीठिका पर रावण की आकृति की उपस्थिति के माध्यम से रावणानुग्रह स्वरूप के संकेत से लेकर भुवनेश्वर, पट्टडकल की स्वतन्त्र किन्तु छोटी मूर्तियों का कथात्मक शैली में निरूपण तथा

एलोरा के चट्टानी शिल्प (सातवीं-आठवीं शती ई०) में एक विशाल आयाम में पूरी कथात्मक पृष्ठभूमि में प्रस्तुत किया गया है। दक्षिण भारत में पल्लव एवं चोल कला में स्वतन्त्र मूर्तियों के साथ ही फलक मूर्तियों के रूप में एक से अधिक कथा दृश्यों के माध्यम से भी इस स्वरूप को अभिव्यक्त किया गया है।

इस स्वरूप का अंकन गुप्त काल में प्रारम्भ हुआ जिसका उदाहरण डींग दरवाजा, मथुरा से मिला है। यद्यपि रावणानुग्रह स्वरूप के प्रासंगिक साहित्यिक सन्दर्भ (*रामायण, शिवपुराण* एवं कालिदास के काव्य ग्रन्थ) एवं मूर्त उदाहरण उत्तर भारत में ही उपलब्ध हैं, किन्तु सातवीं से १३वीं शती ई० के बीच यह स्वरूप एलोरा, भुवनेश्वर तथा दक्षिण भारत के पुरास्थलों पर ही अधिक लोकप्रिय था, जहाँ से इस स्वरूप के सर्वाधिक उदाहरण विविधता के साथ मिले हैं। सम्भवतः एलोरा, भुवनेश्वर, कांचीपुरम्, गंगैकोण्डचोलपुरम् जैसे स्थलों पर शैवधर्म और शिव के मन्दिरों की प्रधानता के कारण शिव का अनुग्रह प्राप्त करने की इच्छा से रावणानुग्रह स्वरूप की मूर्तियों को एक प्रतीक के रूप में स्वीकार किया गया जिसमें शिव की उदार कृपा की अभिव्यक्ति और उसे प्राप्त करने का भाव रहा हो सकता है जो रावण जैसे आसुरी स्वभाव वाले भक्त को भी प्राप्त था। दक्षिण भारत में इस स्वरूप की लोकप्रियता का सामाजिक एवं धार्मिक सन्दर्भ भी बनता है, जो इन क्षेत्रों में रावण के प्रति विशेष आदर भाव से जुड़ा हुआ है। चूँकि इस स्वरूप में रावण देवाधिदेव महादेव का अनुग्रह प्राप्त करता है, सम्भव है इस कारण भी इस क्षेत्र में यह स्वरूप अधिक लोकप्रिय हुआ। सम्भवतः इसी कारण एलोरा के एक उदाहरण (दशावतार गुफा) के अतिरिक्त दक्षिण भारत से प्राप्त अन्य किसी उदाहरण में शिवगणों द्वारा रावण के उपहास का दृश्य नहीं दर्शाया गया है, जबकि उत्तर भारत की रावणानुग्रह मूर्तियों में रावण के उपहास का दृश्य लगभग सभी उदाहरणों में उपलब्ध है।

दक्षिण भारत की मूर्तियों में भुवनेश्वर के शत्रुघ्नेश्वर एवं परशुरामेश्वर मन्दिरों के उदाहरणों के अतिरिक्त सामान्यतः शिव और पार्वती के वाहनों (नन्दी एवं सिंह), पुत्रों (गणेश एवं कार्त्तिकेय) एवं भृङ्गी ऋषि को नहीं दिखाया गया है जो क्षेत्रीय विशिष्टता की दृष्टि से उल्लेखनीय है। भुवनेश्वर, एलोरा सहित दक्षिण भारत के उदाहरणों में कभी-कभी रावण की आकृति पर्वत शिखर पर विराजमान आकृति से बड़ी दिखायी गयी है जिसके दो सन्दर्भ बनते हैं। एक तो दक्षिण भारतीय परम्परा में रावण के प्रति आस्था और आदर का भाव है और दूसरे सम्पूर्ण कथा प्रसंग के शिल्पी द्वारा दृश्य संयोजन की विशेष दृष्टि है। सम्पूर्ण भारत के अधिकांश उदाहरणों से ऐसा आभासित होता है मानों रावण के दर्प भंग की कथा की पृष्ठभूमि से अधिक शिव की इच्छा और प्रेरणा के

फलस्वरूप रावण के कैलाशोत्तोलन की कथा की पृष्ठभूमि मूर्तियों के उकेरन में अधिक प्रभावी रही है क्योंकि इनमें सामान्यतः भयजन्य परिस्थिति के फलस्वरूप पार्वती के शिव के निकट आने का भाव पूरी तरह स्पष्ट है। इस प्रकार इस स्वरूप की अभिव्यक्ति मुख्यतः शिव की लीला के रूप में हुई है। यही कारण है कि कुछ उदाहरणों में पर्वतोत्तोलन की मुद्रा में रावण की वीणाधारी और उसके पार्श्वों में वाद्य-वादन करती आकृतियों (त्रिपुरी एवं जबलपुर से प्राप्त उदाहरण) का भी उकेरन हुआ है। एक उदाहरण (सिरोन-खुर्द) में रावण की पर्वत उठाने में सहायता करने की मुद्रा में सहायक आकृतियों के रूप में गणेश एवं कार्त्तिकेय की आकृतियों की उपस्थिति भी उपरोक्त बातों की पुष्टि करती है।

उत्तर भारत की उमा-महेश्वर मूर्तियों की पृष्ठभूमि में बनी रावणानुग्रह मूर्तियों तथा भुवनेश्वर (परशुरामेश्वर मन्दिर) के उदाहरण में शीर्ष भाग में ब्रह्मा और विष्णु की उपस्थिति भी महत्त्वपूर्ण है जिन्हें इस अवसर पर साक्षी के रूप में रूपायित किया गया, ऐसा भी माना जा सकता है। उत्तर भारत की मूर्तियों में उमा-महेश्वर मूर्ति की पृष्ठभूमि में बनी रावणानुग्रह मूर्तियों में पीठिका पर रावण की लघु आकृति को एक, तीन और पाँच मुखों वाला दिखाया गया है जो दशानन रूप का पार्श्व या पृष्ठ दर्शन में प्रतीकात्मक अंकन है। कई बार रावण की आकृति के मानव मुखों के ऊपर गर्दभ मुख दिखाया गया है जो उत्तर भारत की रावणानुग्रह मूर्तियों का वैशिष्ट्य है। गर्दभ मुख स्थूल रूप में रावण के मूर्खतापूर्ण कृत्य का प्रतीक हो सकता है, क्योंकि *रामायण* में रावण के रथ में अश्व के स्थान पर गर्दभ का उल्लेख मिलता है। किन्तु भारतीय कला का मर्म स्थूल से कहीं अधिक सूक्ष्म या गूढ़ रहा है। इस दृष्टि से विचार करने पर रावण का वेदज्ञ होना और *ऋग्वेद* के मानव स्वरूप की परिकल्पना में *श्रीतत्त्वनिधि* के अनुसार गर्दभ मुख बताया जाना रावणानुग्रह मूर्ति के सन्दर्भ में प्रासंगिक हो सकता है। वैसे एक और महत्त्वपूर्ण बात यह है कि एलोरा के एक उदाहरण (गुफा सं० २१) के अतिरिक्त दक्षिण भारत की मूर्तियों में रावण के साथ गर्दभ मुख कहीं नहीं दिखाया गया है जिसका प्रत्यक्ष कारण उनका रावण के प्रति आदर भाव रहा होगा।

पाद-टिप्पणी

१. श्रीनिवास शास्त्री एवं मुखोपाध्याय (सम्पा०), *रामायण ऑफ वाल्मिकी*, खं० छः, दिल्ली, १९८३, पृ० ४१७-४२०
२. *ए०ब्रा०दे०प्र०*, पृ० २९
३. एस०एन० राजगुरु, *इन्वोकेटरी वर्सेस फ्रॉम इंस्क्रिप्शन्स*, खं० दो, भुवनेश्वर, १९७३, पृ० ३८-३९

४. बाल चन्द्र जैन, *उत्कीर्ण लेख,* रायपुर, १९६१, पृ० ६७-१३७
५. *म०भा०म०,* पृ० ३९
६. शान्ति स्वरूप सिन्हा, "एलोरा एवं एलिफेण्टा की रावणानुग्रह मूर्तियाँ", *इण्डियन आर्ट हिस्ट्री कांग्रेस, पटना प्रोसिडिंग,* सी०पी० सिन्हा (सम्पा०), मार्च १९९६
७. एन०पी० जोशी, *मथुरा की मूर्तिकला,* मथुरा, १९६५
८. बी०एन०शर्मा, "रावण लिफ्टिंग माउण्ट कैलाश इन इण्डियन आर्ट", *ईस्ट एण्ड वेस्ट,* खं० २३, अं० तीन-चार, १९७३, पृ० ३२९
९. *पू०नि०,* पृ० ३३०
१०. शशि बाला श्रीवास्तव, "शिव के रावणानुग्रह स्वरूप का कला में प्रदर्शन", *प्रो०के०डी०वाजपेयी स्मृति विशेषांक (पांचाल),* ए०एल० श्रीवास्तव (सम्पा०), खं० पाँच, कानपुर, १९९२, पृ० १०८
११. शान्ति स्वरूप सिन्हा, "भुवनेश्वर की रावणानुग्रह मूर्तियों का वैशिष्ट्य", *इण्डियन आर्ट हिस्ट्री कांग्रेस के पंचम अधिवेशन में प्रस्तुत शोध लेख,* भुवनेश्वर, फरवरी, १९९७
१२. बी०एन० शर्मा, *पू०नि०,* पृ० ३३४
१३. *वही*
१४. *आ०अ०में०सा०इ०,* पृ० २१-२२
१५. मुल्कराज आनन्द, "होमेज टू एलिफैण्टा", *मार्ग,* खं० १३, अं० चार, सितम्बर १९६०
१६. ओ०सी०कैल, *एलिफैण्टा, द आइसलैण्ड ऑफ मिस्ट्री,* बम्बई, १९८४
१७. *ए०ब्रा०दे०प्र०,* पृ० ३२
१८. वासुदेव उपाध्याय, *प्राचीन भारतीय स्तूप, गुहा एवं मन्दिर,* वाराणसी. १९७०
१९. बी०एन० शर्मा, *पू०नि०, पृ० ३३३*
२०. *ए०शै०प्र०,* पृ० ५३
२१. *आ०अ०मे०सा०इ०,* पृ० ८८
२२. *ए०शै०प्र०,* पृ० ५३
२३. *ए०हि०आ०,* खं० दो, अं० एक, पृ० २१९
२४. *आ०अ०मे०सा०इ०,* पृ० १८
२५. शशि बाला श्रीवास्तव, *पू०नि०,* पृ० १०७
२६. बी०एन० शर्मा, *पू०नि०*
२७. *वही*
२८. *आ०अ०मे०सा०ई०,* पृ० ७२
२९. बी०एन० शर्मा, *पू०नि०,* पृ० ३३४

३०. *म०भा०मू०*, पृ० ७७
३१. *आ०अ०मे०सा०इ०*, पृ० ६१
३२. स्टेला क्रैमरिश, *इण्डियन स्कल्प्चर*, कलकत्ता, १९३३
३३. आर०जे० मेहता, *मास्टरपीसेज ऑफ इण्डियन स्कल्प्चर*, बम्बई, १९७६
३४. *म०भा०मू०*, पृ० ७७
३५. बी०एन० शर्मा, *पू०नि०*, पृ० ३३०
३६. दुर्गानन्दन प्रसाद तिवारी, *ओसियाँ के मन्दिरों की देव मूर्तियां*, वाराणसी, १९९९
३७. नीलिमा वशिष्ठ, *स्कल्प्चर ट्रेडिशन ऑफ राजस्थान*, जयपुर, १९८९, पृ० १०७
३८. दुर्गानन्दन प्रसाद तिवारी, *पू०नि०*
३९. स्टेला क्रैमरिश, *मैनिफेस्टेशन ऑफ शिव*, फिलाडेल्फिया, १९८१, पृ० ५२
४०. बी०एन० शर्मा, ''स्कलपचर फ्रॉम आबनेरी'', *रूपलेखा*, खं० ४३, अं० एक-दो, पृ० १२-१३
४१. आर०सी० अग्रवाल, ''रावण अपलिफ्टिंग दि कैलाश, ऐन अनपब्लिशड स्टोन रिलीफ फ्रॉम राजस्थान'', *भारतीय-विद्या*, खं० १६ (तीन-चार), १९५६, पृ० ५३
४२. *म०भा०मू०*, पृ० २९-३०
४३. *आ०अ०मे०सा०ई०*, पृ० २५४
४४. *पू०नि०*, पृ० २१८
४५. *पू०नि०, पृ० ६७*
४६. बी०एन० शर्मा, *पू०नि०*, पृ० ३३४
४७. *आ०अ०मे०सा०इ०*, पृ० २६७
४८. आर० नागास्वामी, *गंगैकोण्डचोलपुरम्*, तमिलनाडु, १९७०, पृ० २४
४९. बी०एन० शर्मा, *पू०नि०*, पृ० ३३५
५०. *वही*
५१. *म०भा०मू०*, पृ० ८५
५२. मीनाक्षी शेषाद्रि, *बेलूर की दीपिका*, मैसूर, १९५९, पृ० १५
५३. *ए०हि०आ०*, पृ० २२०
५४. बी०एन० शर्मा, *पू०नि०*, पृ० ३३५
५५. एस०के०मैति, *मास्टरपीसेज ऑफ होयसल आर्ट*, बम्बई, १९७८, पृ० ४२
५६. बी०एन० शर्मा, *पू०नि०*, पृ० ३३५-३३६
५७. वही

५८. कृष्णदेव एवं त्रिवेदी, *स्टोन स्कल्प्चर इन इलाहाबाद म्यूजियम,* खं० दो, नई दिल्ली, १९९६, पृ० ३७
५९. ब्रजेश कृष्णा, *दि आर्ट अण्डर गुर्जर प्रतिहार,* नई दिल्ली, १९८९, पृ० १५१-१५२
६०. बी०एन० शर्मा, *पू०नि०,* पृ० ३३०-३१
६१. प्रमोद चन्द्र, *स्टोन स्कल्प्चर इन इलाहाबाद म्यूजियम,* बम्बई, १९६५-६६, पृ० १४९-१५०
६२. सी० शिवराममूर्ति, *मास्टरपीसेज ऑफ इण्डियन आर्ट,* नई दिल्ली, १९७१
६३. बी०एन० शर्मा, *पू०नि०, पृ० ३३२*
६४. एम०पी० जोशी, "रावणानुग्रह मूर्ति फ्रॉम कुमायूँ", *जर्नल ऑफ दि ओरियण्टल इन्स्टीच्यूट, बड़ौदा,* खं० ३२, अं० तीन-चार, मार्च-जून १९८३, पृ० ३०१-३०२
६५. जी०के० अग्निहोत्री एवं एस०बी० शर्मा, *कन्नौज : पुरातत्त्व और कला,* फर्रूखाबाद, १९७८, पृ० २९
६६. एस०डी० त्रिवेदी, *स्कल्प्चर्स इन झाँसी म्यूजियम,* झाँसी, १९८३, पृ० ३४
६७. *पू०नि०,* पृ० ५७
६८. *पू०नि०,* पृ० ५६-५७
६९. बी०एन० शर्मा, *पू०नि०,* पृ० ३३१
७०. एस०बी० सिंह, *ब्राह्मैनिकल आइकन्स इन नॉर्दर्न इण्डिया,* नई दिल्ली, १९७७, पृ० ३३
७१. सी० शिवराममूर्ति, *बर्डस् ऐण्ड एनिमल्स इन इण्डियन स्कल्प्चर,* नई दिल्ली, १९७४, पृ० २६१
७२. एन०पी० जोशी, *ब्राह्मैनिकल स्कल्प्चर्स इन स्टेट म्यूजियम,* लखनऊ, १९८९, पृ० १०७
७३. *वही*
७४. *पू०नि०,* पृ० १०६
७५. *पू०नि०,* पृ० १०६-१०७
७६. *पू०नि०,* पृ० १०५
७७. बी०एन० शर्मा, *पू०नि०*
७८. एस०बी० सिंह, *पू०नि०*
७९. शशि बाला श्रीवास्तव, *पू०नि०,* पृ० १०९
८०. विजय प्रकाश सिंह, "काशी के मन्दिर : एक मूर्तिपरक अध्ययन", *अप्रकाशित शोध प्रबन्ध,* कला इतिहास, का०हि०वि०वि०, वाराणसी, फरवरी १९९०, पृ० ११४-१५
८१. ए०एल० श्रीवास्तव, *पंचाल का मूर्ति शिल्प,* कासगंज, २००२, पृ० ९७-९८

८२. मारुति नन्दन तिवारी एवं कमल गिरि, ''प्रतिमा विज्ञान'', *कलचुरि, राजवंश और उनका युग,* आर०के० शर्मा एवं अन्य (सम्पा०), खण्ड दो, नई दिल्ली, १९९८, पृ० ३४८-५४
८३. आर०एन० मिश्रा, *स्कल्प्चर्स ऑफ दाहला एण्ड दक्षिण कोशल एण्ड देयर बैकग्राउण्ड,* दिल्ली, १९८७, पृ० ९०
८४. आर०एस० गर्ग, *शैव-प्रतिमाएँ* भाग एक, भोपाल, १९८०, पृ० ३६
८५. दीपक कुमार महाशब्दे, *मध्य प्रदेश की शैव प्रतिमाएँ (शैव कैटलाग),* भोपाल, १९९१, पृ० ७७
८६. प्रकाशेन्द्र माथुर, ''आशापुरी की परमार कालीन प्रतिमाएँ'', *पुरातन,* खं० छः, १९८९, पृ० १७४
८७. राज नारायण श्रीवास्तव, ''मेकल क्षेत्र की मूर्तिकला का अध्ययन (शहडोल जिले के विशेष सन्दर्भ में, ६०० से १२०० ई० तक)'', *अप्रकाशित शोध प्रबन्ध,* रानी दुर्गावती विश्वविद्यालय, जबलपुर, १९९४, पृ० ७४-७६
८८. एस०डी० त्रिवेदी ''सम रावणानुग्रह मूर्ति फ्रॉम सेन्ट्रल इण्डिया'', *पुरातन,* खं० आठ, १९९१, पृ० ३९
८९. दीपक कुमार महाशब्दे, *पू०नि०,* पृ० ७६
९०. मंजूश्री राव, ''आइकोनोग्राफिकल नोट्स (शिव एण्ड पार्वती)'', *प्राच्य-प्रतिभा,* खं० चार, अं० दो, जुलाई १९७६, पृ० १३६
९१. बी०एन० शर्मा०, *पू०नि०,* पृ० ३३२
९२. *पू०नि०,* पृ० ३३३
९३. के०के० शाह, ''सम परमार फ्राम दि ईस्ट निमाड़ डिस्ट्रीक्ट'', *आर्ट ऑफ दि परमार ऑफ मालवा,* आर०के० शर्मा (सम्पा०), दिल्ली, १९७९, पृ० ७०-७१
९४. *म०भा०प्र०,* पृ० ४५-४६

चतुर्थ अध्याय

अर्जुनानुग्रह मूर्तियाँ

अर्जुनानुग्रह स्वरूप भी रावणानुग्रह मूर्ति स्वरूप की भाँति भारतीय कला में शिल्पी के लिये अंकन का एक प्रिय विषय-वस्तु रहा है। इस स्वरूप का प्रदर्शन कला में लगभग गुप्तकाल से लेकर मध्यकाल के अन्तिम दशकों तक शिल्पीयों द्वारा किया जाता रहा है। इस स्वरूप में शिव ने अपने अनन्य भक्त अर्जुन की भक्ति से प्रसन्न होकर एवं उसे मूक दानव के आघात से बचाकर तथा इच्छित वर के रूप में पाशुपत-अस्त्र प्रदान कर उस पर अनुग्रह किया। इसका कथात्मक वर्णन महर्षि व्यास कृत *महाभारत, शिवपुराण* (रुद्रसंहिता), कालिदास कृत *कुमारसम्भव,* भारवि कृत *किरातार्जुनीयम्* तथा दक्षिण भारतीय ग्रन्थों जैसे अनन्तभट्ट कृत *भारतचम्पू* एवं कुमारव्यास कृत *विक्रमार्जुनविजय* में मिलता है। इसके अतिरिक्त आन्ध्र प्रदेश एवं कर्नाटक के काफी हिस्सों में प्रचलित लोक-कथा के आधार पर भी इस स्वरूप का अंकन हुआ है। अर्जुनानुग्रह स्वरूप का प्रतिमालक्षणिक सन्दर्भ *विश्वकर्मा वास्तुशास्त्र* एवं *श्रीतत्त्वनिधि* जैसे ग्रन्थों में वर्णित है।

महाभारत (वनपर्व, कैरातपर्व) के ३१वें अध्याय से लेकर ४१वें अध्याय में अर्जुन पर शिव के अनुग्रह की कथा मिलती है जिसके अनुसार पाण्डवों के वनवास के समय उनके यहाँ एक बार महर्षि व्यास पधारे और उन्होंने अर्जुन को योग्य समझकर 'शक्र विद्या' के जाप द्वारा इन्द्र को प्रसन्न करने तथा उनसे आयुध प्राप्त करने की प्रार्थना की सम्मति दी। धर्मराज युधिष्ठिर ने महर्षि व्यास के कथनानुसार अर्जुन को तपस्या करने की आज्ञा प्रदान की। फलस्वरूप अर्जुन ने हिमालय के इन्द्रकील पर्वत पर कठोर तपस्या आरम्भ की। अर्जुन की तपस्या से प्रसन्न होकर एवं तपस्या के मूल उद्देश्य को जानकर इन्द्र ने अर्जुन को देवाधिदेव शंकर की आराधना कर पाशुपतास्त्र प्राप्त करने के लिए प्रोत्साहित किया। साथ ही यह भी आश्वासन दिया कि शिव के प्रसन्न होने के पश्चात् अन्य देवताओं सहित मैं भी अपने आयुध तुम्हें प्रदान करूँगा। इन्द्र की आज्ञानुसार पाण्डुनन्दन अर्जुन ने शिव की घोर तपस्या आरम्भ कर दी, जिसके अन्तर्गत मृगचर्म और कुशाचीर धारण किये अर्जुन ने कुछ समय तक सूखे पत्तों को ही आहार स्वरूप ग्रहण किया।

दर्भचीरं निवस्याथ दण्डाजिनविभूषितः।
शीर्णं च पतितं भूमौ पर्णं समुपयुक्तवान्॥ २३॥

कैरात पर्व, ३८वाँ अध्याय

तपस्या के अत्यन्त कठोर साधना क्रम में अर्जुन कुछ समय तक केवल वायु का सेवन कर निराहार एवं दोनों हाथों को ऊपर उठाये तथा अँगुष्ठ के अग्र भाग पर स्थानक अर्थात् अँगूठे पर शरीर का पूरा भार डाले तपस्यारत रहे।

वायुभक्षो महाबाहुरभवत् पाण्डुनन्दनः।
उर्ध्वबाहुर्निरालम्बः पादाङ्गुष्ठाग्रविष्ठितः॥ २६॥

कैरात पर्व, ३८वाँ अध्याय

अर्जुन के इस प्रकार के उग्र तप ने वन में निवास करने वाले अन्य ऋषि-मुनियों को प्रकम्पित कर दिया। परिणामस्वरूप उन सभी ने शिव के सम्मुख जाकर प्रार्थना की और शिव को अर्जुन की तपस्या का वृत्तान्त सुनाया। शिव ने ऋषियों की प्रार्थना सुनने के बाद उन्हें आश्वस्त करते हुए शीघ्र ही अर्जुन की समस्त मनोकामना पूर्ण करने का आश्वासन भी दिया। तत्पश्चात् शिव ने किरात वेश धारण किया।

कैरातं वेषमास्थाय काञ्चनद्रुमसंनिभम्।
विभ्राजमानो विपुलो गिरिर्मेरुरिवापरः॥ २॥

कैरात पर्व, ३९वाँ अध्याय

वनमानव स्वरूप धारण किये हुए शिव के परमथगण भी अपने-अपने आयुधों से युक्त होकर शिवरूपी किरात के साथ इन्द्रकील पर्वत की ओर चल पड़े। किरात के साथ पार्वती भी किराती वेश धारण कर उनके साथ थीं।

देव्या सहोमया श्रीमान् समानव्रतवेषया।
नानावेषधरैर्हृष्टै र्भूतैरनुगतस्तदा॥ ४॥

कैरात पर्व, ३९वाँ अध्याय

इसी समय मूक दानव अर्जुन को समाप्त कर देने के उद्देश्य से विशालकाय वन शूकर का रूप धारण कर उपस्थित हुआ। शूकराकृति मूक दानव जब अतिवेग से अर्जुन की ओर चला तब तपस्यारत अर्जुन ने उसे अपनी ओर आता देखकर गाण्डीव से उस पर शर-सन्धान किया—

स संनिकर्षमागम्य पार्थस्याक्लिष्टकर्मणः।
मूकं नाम दनोः पुत्रं ददर्शाद्भुतदर्शनम्॥ ७॥
वाराहं रूपमास्थाय तर्कयन्तमिवार्जुनम्।
हन्तुं परं दीप्यमानं तमुवाचाथ फाल्गुनः॥ ८॥

गाण्डीवं धनुरादाय शरांश्चाशीविषोपमान्।
सज्यं धनुर्वरं कृत्वा ज्याघोषेण निनादयन्॥ ९॥

कैरात पर्व, ३९वाँ अध्याय

.....ठीक उसी समय किरात (शिव) ने भी अपने विशाल धनुष की प्रत्यञ्चा चढ़ाकर शूकर पर प्रहार किया।

किरातश्च समं तस्मिन्नेकलक्ष्ये महाद्युतिः।
प्रमुमोचाशनिप्रख्यं शरमग्निशिखोपमम्॥ १३॥

कैरात पर्व, ३९वाँ अध्याय

.......परिणामस्वरूप किरात एवं तपस्वी वेशधारी अर्जुन के शर एकसाथ शूकररूपी मूक दानव के शरीर में प्रविष्ट हो गये।

तौ मुक्तौ सायकौ ताभ्यां समं तत्र निपेततुः।
मूकस्य गात्रे विस्तीर्णे शैलसंहनने तदा॥ १४॥

कैरात पर्व, ३९वाँ अध्याय

......शूकराकृति मूक दानव के आहत होने के पश्चात् वह अपने वास्तविक रूप को प्रकट कर अन्ततः मृत्यु को प्राप्त हो गया।

स विद्धो बहुभिर्बाणैर्दीप्तास्यैः पन्नगैरिव।
ममार राक्षसं रूपं भूयः कृत्वा विभीषणम्॥ १६॥

कैरात पर्व, ३९वाँ अध्याय

शूकर-वध पर अपना-अपना अधिकार सिद्ध करने का विवाद अन्ततः किरात रूपी शिव एवं अर्जुन के मध्य भीषण युद्ध का कारण बना। युद्ध के क्रम में दोनों के मध्य धनुर्युद्ध एवं खड्ग-युद्ध हुआ और अन्त में जब अर्जुन के सभी आयुधों को किरात द्वारा समाप्त कर दिया गया तो उन दोनों के मध्य रोमाञ्चकारी बाहु-युद्ध हुआ।

सुमुहूर्तं तु तद् युद्धमभवल्लोमहर्षणम्।
भुजप्रहारसंयुक्तं वृत्रवासवयोरिव॥ ५८॥

कैरात पर्व, ३९वाँ अध्याय

.....जिसमें अर्जुन एवं किरात मुष्ठिका प्रहार से एक-दूसरे को अतिवेग से घायल करने लगे। किराती एवं किरात सेना के अन्य सदस्यों सहित वन्य प्राणी इस दृश्य का मात्र अवलोकन ही करते रह गये। यह युद्ध तब तक चलता रहा जब तक कि किरात के अंकपाश में जकड़े अर्जुन की श्वास क्रिया प्रायः बन्द नहीं होने लगी। इस प्रकार अर्जुन चेतना विहीन स्थिति में भूमि पर गिर पड़े।

निरुच्छ्वासोऽभवच्चैव संनिरुद्धो महात्मना।
पपात भूम्यां निश्चेष्टो गतसत्त्व इवाभवत्॥ ६३॥

कैरात पर्व, ३९वाँ अध्याय

.....चेतना वापस आने पर अर्जुन को ज्ञान हो चुका था कि सम्मुख खड़ा किरात कोई साधारण योद्धा नहीं हो सकता बल्कि कोई अति बलशाली योद्धा है इसलिए अर्जुन ने मृण्मय शिवलिङ्ग का निर्माण किया तथा उसे विधिपूर्वक स्थापित कर शिवार्चन प्रारम्भ की। इस क्रम में ध्यान व स्तवन कर जब उन्होंने शिवलिङ्ग पर पुष्पों की माला चढ़ायी तो वह किरात के गले में जा पड़ी। इस घटना से अभिभूत, हर्षित एवं विस्मयित अर्जुन को ज्ञात हो गया कि किरात और कोई नहीं बल्कि स्वयं शिव हैं इस प्रकार अर्जुन ने शूलधारी भगवान् शिव के साथ पार्वती का भी दर्शन किया।

ततो देवं महादेवं गिरिशं शूलपाणिनम्।
ददर्श फाल्गुनस्तत्र सह देव्या महाद्युतिम्॥ ७२॥

कैरात पर्व, ३९वाँ अध्याय

दर्शन करने के पश्चात् अर्जुन ने अपने किये गये अपराध के लिए क्षमा-याचना के क्रम में शिव की स्तुति की जिससे शिव प्रसन्न हुए।

कपर्दिन् सर्वदेवेश भगनेत्रनिपातन।
देवदेव महादेव नीलग्रीव जटाधर॥ ७४॥

कैरात पर्व, ३९वाँ अध्याय

अर्जुन की भक्ति से प्रसन्न शिव ने अनुग्रह स्वरूप पाशुपत नामक अस्त्र प्रदान करते हुए उसके रहस्य एवं प्रयोग विधि का उपदेश दिया। तदन्तर वह पाशुपत नामक अस्त्र जो उमापति भगवान् शंकर से संयुक्त था, वह अर्जुन के पास आ गया।

ततस्त्वध्यापयामास सरहस्यनिवर्तनम्।
तदस्त्रं पाण्डवश्रेष्ठं मूर्तिमन्तमिवान्तकम्॥ २०॥
उपतस्थे च तत् पार्थं यथा त्र्यक्षमुमापतिम्।
प्रतिजग्राह तच्चापि प्रीतिमानर्जुनस्तदा॥ २१॥

कैरात पर्व, ४०वाँ अध्याय

शिव से यथोचित वर प्राप्त कर अर्जुन पहले की भाँति सुन्दर, रूपवान, बलशाली एवं आयुधों से युक्त हो गये। शिवाज्ञा से इन्द्र सहित अन्य देवताओं से आवृत्त अर्जुन......

ते भानुमन्ति चित्राणि शिखराणि महागिरेः।
समस्थायार्जुनं तत्र ददृशुस्तपसान्वितम्॥ १२॥
ततो मुहूर्ताद् भगवानैरावतशिरोगतः।
आजगाम सहेन्द्राण्या शक्रः सुरगणैर्वृतः॥ १३॥

कैरात पर्व, ४१वाँ अध्याय

......को सभी देवताओं ने अपने प्रमुख आयुध प्रदान करते हुए उन्हें आशीर्वाद भी दिया।[१]

भारवि कृत *किरातार्जुनीयम्* में अर्जुनानुग्रह स्वरूप का कथात्मक वर्णन, मुख्य रूप से ११वें सर्ग से लेकर १८वें सर्ग के मध्य, *महाभारत* में वर्णित उपरोक्त कथा से थोड़ी-बहुत भिन्नता के साथ उल्लिखित है। *किरातार्जुनीयम्* के अनुसार महर्षि व्यास की सम्मति एवं आज्ञा से अर्जुन यक्षों की सहायता से इन्द्रकील पर्वत पर पहुँचे। वहाँ पहुँच कर अर्जुन ने इन्द्र की आराधना की जिससे इन्द्र प्रसन्न हुए। प्रसन्न इन्द्र ने अर्जुन को उपदेश देते हुए कहा कि "शिव की तपस्या कर उन्हें प्रसन्न करने के पश्चात् ही तुम्हें अभिष्ट सिद्धि की प्राप्ति होगी।"

इत्युक्तवन्तं परिरभ्य दोर्भ्यां तनूजमाविष्कृतदिव्यमूर्तिः।
अघोपघातं मघवा विभूत्यै भवोद्भवाराधनमादिदेश॥ ८०॥
(११वाँ सर्ग)

साथ ही इन्द्र ने कहा कि "शिव जी के प्रसन्न होने के पश्चात् मैं अन्य देवताओं के साथ तुम्हें अन्य शक्तियाँ प्रदान करूँगा।"

प्रीते पिनाकिनि मया सह लोकपालैर्लोकत्रयेऽपि विहिताप्रतिवार्यवीर्यः।
लक्ष्मीं समुत्सुकयितासि भृशं परेषामुच्चार्यवाचमिति तेन तिरोबभूवे॥ ८१॥
(११वाँ सर्ग)

इस कारण अर्जुन ने शिव को प्रसन्न करने के लिए शास्त्रीय विधि से अति कठोर तप आरम्भ कर दिया।

अथ वासवस्य वचनेन रुचिरवदनस्त्रिलोचनम्।
क्लान्तिरहितमभिराधयितुं विधिवत्तपांसि विदधे धनञ्जयः॥ १॥
(१२वाँ सर्ग)

परिणामस्वरूप पाण्डुनन्दन धनञ्जय के इस उग्र तप के कारण उनकी काया कान्तिमय हो उठी और शरीर से अग्नि के समान तेज प्रकट होने लगा। तपस्वी अर्जुन के तेज से विचलित ऋषियों ने शिव के पास जाकर अर्जुन की घोर तपस्या एवं उससे उत्पन्न प्रभाव का विस्तारपूर्वक वर्णन किया। शिव ने तब उनकी आशंकाओं के उत्तर में उनको समझाते हुए कहा कि अर्जुन अन्य कोई न होकर स्वयं 'नर' हैं। साथ ही शिव ने देखा कि मूक नामक दैत्य शूकर-वेश में अर्जुन को मारने के लिए उद्यत हो रहा है।

सुरकृत्यमेतदवगम्य निपुणमिति मूकदानवः।
हन्तुमभिपतति पाण्डुसुतं त्वरया तदत्र सह गम्यतां मया॥ ३६॥
(१२वाँ सर्ग)

आगे घटित होने वाली घटना से शिव ने सभी ऋषियों को अवगत कराया तथा स्वयं किरात सेनापति का वेश धारण कर लिया।

इति तानुदारमनुनीय विषमहरिचन्दनालिना।
धर्मजनितपुलकेन लसद्गजमौक्तिकावलिगुणेन वक्षसा॥ ४०॥

(१२वाँ सर्ग)

साथ ही साथ शिव के परमथगणों ने भी वनवासी मानव की वेशभूषा में अर्थात् किरात रूप में शूल, परशु, बाण एवं धनुष से युक्त होकर शिव के साथ इन्द्रकील पर्वत की ओर प्रस्थान किया जहाँ अर्जुन घोर तपस्या में संलग्न थे।

अनुकूलमस्य च विचिन्त्य गणपतिभिरात्तविग्रहैः।
शूलपरशुशरचापभृतैर्महती वनेचरचमूर्विनिर्ममे॥ ४३॥
इति चालयन्नचलसानुवनगहनजानुमापतिः।
प्राप मुदितहरिणीदशनक्षतवीरुधंवसतिमैन्द्रसूनवीम्॥ ५२॥

(१२वाँ सर्ग)

तपस्यारत अर्जुन पर घात लगाकर हमला करने के लिए उद्धत मूक दानव (वन्य शूकररूपी) को पाकर किरात सेनापति ने उसका वध कर दिया।

स तमालनिभे रिपौ सुराणां घननीहार इवाविषक्तवेगः।
भयविप्लुतमीक्षितो नभःस्थैर्जगतीं ग्राह इवापगां जगाहे॥ २४॥

(१३वाँ सर्ग)

ठीक उसी क्षण कपिध्वज से युक्त अर्जुन द्वारा सन्धान किया गया शर भी शूकररूपी दैत्य के शरीर में सरलतापूर्वक प्रविष्ट कर गया।

सपदि प्रियरूपपर्वरेखः सितलोहाग्रनखः खमाससाद।
कुपितान्तकतर्जनाङ्गुलिश्रीर्व्यथयन्प्राणभृतः कपिध्वजेषुः॥ २५॥
स वृषध्वजसायकावभिन्नं जयहेतुः प्रतिकायमेषणीयम्।
लघु साधयितुं शरः प्रसेहे विधिनेवार्थमुदीरितं प्रयत्नः॥ २८॥

(१३वाँ सर्ग)

शूकर-वध पर अपना-अपना आधिपत्य स्थापित करने के प्रश्न के वाद-विवाद ने धीरे-धीरे युद्ध का रूप धारण कर लिया। अन्ततः दोनों के मध्य धनुर्युद्ध के रूप में घोर संग्राम हुआ।

मुञ्चतीशे शराञ्जिष्णौ पिनाकस्वनपूरितः।
दध्वान ध्वनयन्नाशाः स्फुटन्निव धराधरः॥ ३४॥
तद्गणा ददृशुर्भीमं चित्रसंस्था इवाचलाः।
विस्मयेन तयोर्युद्धं चित्रसंस्था इवाचलाः॥ ३५॥
परिमोहयमाणेन शिक्षालाघवलीलया।
जैष्णवी विशिखश्रेणी परिजह्रे पिनाकिना॥ ३६॥

अवद्यन्पत्रिणः शम्भोः सायकैरवसायकैः।
पाण्डवः परिचक्रामः शिक्षया रणशिक्षया॥ ३७॥

(१५वाँ सर्ग)

अर्जुन के समस्त आयुध किरात वेषधारी शिव ने समाप्त कर दिये। अर्जुन के जब सभी शस्त्र खण्डित हो गये तो उन दोनों (अर्जुन एवं किरात) के मध्य मुष्टिका प्रहार के रूप में अत्यन्त उग्र युद्ध आरम्भ हुआ, जिसमें अर्जुन एवं किरात अपने वज्रयुक्त बाहुओं से प्रहार कर एक-दूसरे को घायल करने लगे।

तत उदग्र इव द्विरदे मुनौ रणमुपेयुषि भीमभुजायुधे।
धनुरपास्य सबाणधि शङ्करः प्रतिजघान घनैरिव मुष्टिभिः॥ १॥

(१८वाँ सर्ग)

मुष्टिका प्रहार के बाद किरात और अर्जुन के मल्ल-युद्ध ने देवताओं को आश्चर्यचकित कर देने वाले युद्ध में दोनों के बाहु एवं पैर आपस में उलझकर शृङ्खला के रूप में आबद्ध हो गये थे और युद्ध का प्रत्यक्ष दर्शन करने वालों को इस विकराल युद्ध में किरात और अर्जुन के पहचान के सन्दर्भ में आभास ही नहीं हो पा रहा था कि अर्जुन नीचे हैं अथवा किरात।

प्रववृतेऽथ महाहवमल्लयोरचलसञ्चलनाहरणो रणः।
करणशृङ्खलसङ्कलनागुरुर्गुरूभुजायुधगर्वितयोस्तयोः॥ ८॥
अयमसौ भगवानुगत पाण्डवः स्थितवाऽमुनिना शशिमौलिना।
समाधि रूढ़मजेन नु जिष्णुना स्विदिति वेगवशान्मुमुहे गणैः॥ ९॥

(१८वाँ सर्ग)

मल्ल-युद्ध क्रम में ऊपर की ओर उछले किरात के पैर को पकड़कर अर्जुन ने उन्हें भूमि पर गिरा दिया। अर्जुन के द्वारा इस प्रकार के अप्रत्याशित कार्य से अवाक् किरात बिना समय नष्ट किए भूमि से उठ खड़े हुए और अर्जुन को अपने अंकपाश में जकड़ लिया। अर्जुन इस कठोर बन्धन से मुक्त होने के लिए शिवाराधना करने लग गये, जिससे शिव अतिप्रसन्न स्वरूप में अपना वास्तविक रूप प्रकट करते हैं। किरात को ही शिवस्वरूप में परिवर्तित होते देख अर्जुन ने उन्हें प्रणाम किया।

अथ हिमशुचिभस्मभूषितं शिरसि विराजितमिन्दुलेखया।
स्ववपुरतिमनोहरं हरं दधतमुदीक्ष्य ननाम पाण्डवः॥ १५॥

(१८वाँ सर्ग)

शिव-कृपा से अर्जुन का शरीर पहले की भाँति बलशाली एवं समस्त आयुधों से युक्त हो गया, जिसे देखकर देवता भी आश्चर्यचकित रह गये।

सहशरधि निजं तथा कार्मुकं वपुरतनु तथैव संवर्मितम्।
निहितमपि तथैव पश्यन्नसिं वृषभगतिरुपाययौ विस्मयम्॥ १६॥

(१८वाँ सर्ग)

शिव की इस असीम कृपा से रोमाञ्चित अर्जुन ने शिव की स्तुति की....

कृतप्घृति परिवन्दितेनोच्चकैर्गणपतिभिन्नरो योद्‌गयैः।
तपसि कृतफले फलज्यायसी स्तुतिरिति जगदे हरेः सूनुना॥ २१॥

(१८वाँ सर्ग)

परिणामस्वरूप शिव अत्यन्त प्रसन्न हुए और उन्होंने अनुग्रह स्वरूप पाशुपत नामक अस्त्र अर्जुन को प्रदान करते हुए उसको ग्रहण एवं संचालित करने की विधि के रूप में *यजुर्वेद* की शिक्षा भी दी—

इति निगदितवन्तं सूनुमुच्चैर्मघोनः
प्रणतिशिरसमीशः सादरं सान्त्वयित्वा।
ज्वलदनलपरीतं रौद्रमस्त्रं दधानं
धनुरुपपदमस्मै वेदमभ्यादिदेश॥ ४४॥

स पिङ्गाक्ष श्रीमान्भुवनमहनीयेन महसा
तनुं भीमां बिभ्रत्त्रिगुणपरिवारप्रहरणः।
परीत्येशानं त्रिः स्तुतिभिरुपगीतः सुरगणैः
सुतं पाण्डोर्वीरं जलदमिव भास्वानभिययौ॥ ४५॥

(१८वाँ सर्ग)

तदन्तर शिवाज्ञा से इन्द्रसहित अन्य लोकपालों ने अर्जुन को अनेकानेक आयुध एवं आशीर्वाद प्रदान किये।[2]

अथ शशधरमौलेरभ्यनुज्ञामवाप्य
त्रिदशपतिपुरोगाः पूर्णकामाय तस्मै।
अवितथफलमाशीर्वादमारोपयन्तो
विजयि विविधमस्त्रं लोकपाला वितेरुः॥ ४६॥

(१८वाँ सर्ग)

शिवपुराण (रुद्रसंहिता) में किरातार्जुन प्रसंग उपरोक्त ग्रन्थों में वर्णित कथा के अनुरूप ही कुछ अन्तर के साथ वर्णित है। इसमें कृष्ण एवं महर्षि व्यास की सम्मति से 'शक्र विद्या' के जाप द्वारा अर्जुन ने इन्द्र को प्रसन्न किया। प्रसन्न इन्द्र ने अर्जुन को उद्देश्य प्राप्ति हेतु शिव-मन्त्र दिया जिसे धारण कर अर्जुन ने शिव की कठोर तपस्या आरम्भ की। इसी बीच तपस्या में संलग्न अर्जुन को समाप्त करने के उद्देश्य से दुरात्मा दुर्योधन द्वारा प्रोत्साहित मूक नामक दैत्य वन्य-शूकर

के रूप में इन्द्रकील पर्वत पर उपस्थित हुआ। दैत्य के आगमन से सजग हो चुके अर्जुन एवं अर्जुन के पात्रता की जाँच हेतु पधारे किरातवेशधारी शिव के बाण एक ही साथ शूकर के शरीर में प्रविष्ट करते हैं जिसके परिणामस्वरूप शूकररूपी मूक दानव मृत्यु का वरण कर लेता है। इस स्वरूप में बाणों से बिंधे वन्य शूकर का मुखभाग अर्जुन की ओर एवं पृष्ठभाग किरातरूपी शिव की ओर होने का उल्लेख हुआ है। किरात द्वारा प्रत्यारोपित बाण शूकर के पृष्ठभाग से प्रविष्ट होकर एवं मुख भाग से निकल कर पृथ्वी में लुप्त हो गया जबकि अर्जुन का बाण मुख भाग से प्रविष्ट होकर पृष्ठभाग से निकलकर पृथ्वी पर गिर पड़ा। भूमि पर गिरे बाण पर अपना प्रभुत्व स्थापित करने के लिए किरात और अर्जुन के मध्य घोर युद्ध आरम्भ होने तथा युद्ध के क्रम में अर्जुन द्वारा किरात के पैर को पकड़कर घुमाये जाने का सन्दर्भ आता है। अन्ततः भक्तों पर कृपा करने वाले भक्तवत्सल शिव ने अपना वास्तविक रूप प्रकट किया, जिससे अर्जुन को पश्चात्ताप हुआ। इस कृत्य के लिए अर्जुन बारम्बार शिव का ध्यान एवं स्तुति करते हैं, जिससे शिव प्रसन्न होकर अर्जुन को पाशुपतास्त्र प्रदान करते हैं।[३]

किरातार्जुन के कथा में *महाभारत* और भारवि कृत *किरातार्जुनीयम्* में मूल अन्तर युद्ध के कारणों में है। *महाभारत* में जहाँ युद्ध का कारण शूकर वध पर अपने-अपने आधिपत्य को लेकर है, वहीं *किरातार्जुनीयम्* में विवाद का कारण युद्ध में प्रयुक्त बाणों को लेकर है और यही मूलान्तर हमें प्राप्त कलागत उदाहरणों में भी परिलक्षित होते हैं।

कर्नाटक एवं आन्ध्र प्रदेश के सीमान्त क्षेत्रों में एक और लोक-कथा न्यूनाधिक अन्तर के साथ प्रचलित है, जिसके अनुसार अर्जुन के पृष्ठभाग पर एक मांगलिक चिह्न था, जिसे देखने की इच्छा से पार्वती ने शिव के समक्ष अपनी मनोकामना रखी। उनकी इच्छा की पूर्ति हेतु शिव ने मूक दानव को तपस्यारत अर्जुन के पास इन्द्रकील पर्वत पर जाने के लिए प्रोत्साहित किया। कथा के क्रम में शूकररूपी मूक दानव के वध के विवाद पर किरातरूपी शिव और अर्जुन के मध्य घोर संग्राम हुआ। इस युद्ध के दौरान स्वयं किरात ने अपने आपको भूमि पर गिरा लिया जिससे अर्जुन उनके ऊपर आरूढ़ हो गये और अर्जुन के पीछे खड़ी किराती ने अर्जुन के विशाल कन्धों के मध्य मांगलिक चिह्न को देखने के पश्चात् अपना दायाँ हाथ ऊपर कर शिव को संकेत दिया, तब शिव ने अर्जुन को अपने वास्तविक रूप दिखाया तथा अर्जुन की तपस्या से प्रसन्न होकर उन्हें पाशुपत-अस्त्र प्रदान किया।[४]

अर्जुनानुग्रह स्वरूप का प्रतिमालाक्षणिक सन्दर्भ *श्रीतत्त्वनिधि* में उल्लिखित है।

चतुर्भुजं त्रिनेत्रं च जटामकुटसंयुतम्।
सर्वाभरणसंयुक्तं दिव्याम्बरसमावृतम्॥
धनुर्बाणयुतं रक्तं कृष्णापरशुसंयुतम्।
उपवीतसमायुक्तं समभङ्गतनुं कुरु॥
वामे गौरीसमायुक्तं दक्षिणे त्वर्जुनं स्थितम्॥

ए०हि०आ०, खं० २, भाग २ से उद्धृत, पृ० १११

अर्जुनश्च—

एकवक्रं द्विनयनं जटामुकुटसंयुतम्।
सर्बाभरणसंयुक्तं कृताञ्जलिपुटं स्थितम्॥[५]

श्रीतत्त्वनिधि के अनुसार चतुर्भुज शिव जटामुकुट, यज्ञोपवीत, वस्त्राभूषण से युक्त होंगे। समभंग में स्थानक शिव के करों में धनुष, बाण, परशु एवं मृग होगा। शिव के बायें पार्श्व में स्थानक पार्वती का अंकन होगा। शिव के दायें पार्श्व में अंजलिबद्ध-मुद्रा में अर्जुन वस्त्राभूषण एवं जटामुकुट से युक्त होंगे।

पाशुपतास्त्र मूर्ति

चतुर्वक्त्रं चतुर्बाहुं सूर्यकोटिसमप्रभम्।
संहाराभं सुमूर्धानं प्रतिवक्त्रं त्रिलोचनम्॥
दीप्तदन्ताग्रकेशभ्रश्मश्रुभीमं महाबलम्।
शक्तिमुद्गरशङ्खासीन्दधानं सोमसूत्रिणम्॥
साङ्गं पाशुपतं शस्त्रं भजे पद्मासने स्थितम्।[६] —*श्रीतत्त्वनिधि*

श्रीतत्त्वनिधि में पाशुपत-अस्त्र के मानव देहधारी लक्षण निर्धारित करने के सन्दर्भ में कहा गया है कि पाशुपत-अस्त्र (बाण) चार मुखों वाला होगा और सभी मुख त्रिनेत्र से युक्त होंगे।[७]

अर्जुनानुग्रह स्वरूप का मूर्तिगत निरूपण, विभिन्न कथानकों के आधार पर लगभग पूरे भारत में हुआ है परन्तु अंकन की संख्या के आधार पर इस स्वरूप का सर्वाधिक अंकन दक्षिण भारत के प्रमुख कला-केन्द्रों से प्राप्त होता है।

इस स्वरूप का निरूपण मुख्य रूप से तीन प्रकार से हुआ। *प्रथम वर्ग* में अर्जुनानुग्रह स्वरूप का अंकन स्वतन्त्र मूर्ति के रूप में हुआ है जिसमें शिव वामांगी पार्वतीसहित स्थानक या आसीन-मुद्रा में प्रदर्शित होते हैं और दाहिनी ओर उपस्थित अंजलिबद्ध-मुद्रा में खड़े अर्जुन को पाशुपत-अस्त्र देते या किरातवेशधारी शिव और अर्जुन को शर-सन्धान की मुद्रा में दिखाया गया है।

दूसरे वर्ग (चित्र २८, २९) में अर्जुनानुग्रह स्वरूप का अंकन *महाभारत* कथा प्रसंग के मध्य हुआ है जिसके उदाहरण प्रायः दक्षिण भारत के पुरास्थलों से प्राप्त होते हैं। द्वितीय वर्ग के इस अंकन की परम्परा का एक भव्य उदाहरण

एलोरा के कैलाश मन्दिर से प्राप्त है। इसमें *महाभारत* के कथात्मक प्रसंगों के चित्रण के अन्तर्गत अर्जुन की तपस्या, किरात से अर्जुन के युद्ध के पश्चात् शिव द्वारा उन्हें पाशुपतास्त्र देने के दृश्य प्रदर्शित कर कथा आगे बढ़ जाती है।

तीसरे वर्ग (चित्र ३०-३८) में अर्जुनानुग्रह स्वरूप का कथात्मक अंकन कई खण्डों में किया गया है जैसें—तपस्वी वेशधारी अर्जुन का पर्वत पर तपस्यारत होना, किरातवेषधारी शिव और अर्जुन का परस्पर युद्धरत होना एवं बीच में बाणों से बिंधी शूकराकृति का अंकन तथा कभी-कभी दृष्यावलोकन या शिव की सहायता करती किराती वेषधारी पार्वती का अंकन हुआ है। अन्त में शिव-पार्वती आसीन हैं और अंजलीबद्ध अर्जुन को पाशुपतास्त्र प्रदान करने जैसा दृश्य दक्षिण भारत में अधिसंख्य मात्रा में मिले हैं।

अर्जुनानुग्रह के रूप में इस स्वरूप का आरम्भिक उदाहरण—गुप्तकालीन एवं राजौना (बिहार) से प्राप्त एक स्तम्भ पर अंकित है। इसके अतिरिक्त इसी काल के आस-पास के उदाहरण स्वर्णजालेश्वर मन्दिर, शिशिरेश्वर मन्दिर (भुवनेश्वर); नागरी (राजस्थान) के अतिरिक्त पूर्व मध्यकाल से लेकर उत्तर मध्यकालीन दक्षिण भारतीय राजवंशों यथा—पल्लव, चालुक्य, राष्ट्रकूट, चोल एवं होयसल राज्यों के प्रमुख कला-केन्द्रों—कांचीपुरम्, महाबलीपुरम्, पट्टडकल, अयहोल, एलोरा, तंजौर, दारासुरम्, कुम्भकोणम्, हलेबीड, अमृतापुर, सिरवाल, कडूर, आलमपुर, सोमनाथपुर के अतिरिक्त आन्ध्र प्रदेश और कर्नाटक के कई स्थलों से प्राप्त होते हैं। इस स्वरूप का सर्वश्रेष्ठ मूर्त उदाहरण हेमावती से प्राप्त है। उपरोक्त स्थलों से प्राप्त अर्जुनानुग्रह स्वरूप के कथात्मक और स्वतन्त्र अंकन के अन्य विवरण भी महत्त्वपूर्ण हैं।

अर्जुनानुग्रह स्वरूप का अब तक ज्ञात प्रारम्भिकतम उदाहरण बिहार के राजौना नामक स्थान से प्राप्त हुआ है और सम्प्रति भारतीय संग्रहालय, कलकत्ता (क्रमांक—ए/२५१०६) में सुरक्षित है। यह गुप्त कालीन (ल० पाँचवीं शती ई०) स्तम्भ तृतीय वर्ग का एक प्रमुख उदाहरण है जिसमें स्तम्भ के चारों ओर कीर्तिमुख के नीचे चार खण्डों में अर्जुनानुग्रह स्वरूप का कथात्मक अंकन हुआ है। इसके प्रत्येक खण्ड में कथा के लगभग दो अंशों का अंकन है। *पहले खण्ड* में कथानुसार अर्जुन जटाजूट से शोभित, तपस्वी वेश में दोनों हाथ ऊपर उठाये (जो एक रस्सी के माध्यम से बँधे हैं); एक पैर पर स्थानक होकर तपस्यारत हैं। उनके चारों ओर पाँच पात्रों में अग्नि का अंकन 'पंचाग्नि साधना' का प्रतीक है। इसी खण्ड में कथा के अगले भाग में रथ के ऊपर अर्जुन का अंकन छन्नवीर वेश में हुआ है। *दूसरे खण्ड* में किरात-अर्जुन का युद्ध प्रदर्शित है, जिसमें प्रायः आकृतियाँ खण्डित हैं। इस अंकन में फलक के मध्य में शूकराकृति के दोनों ओर दो मस्तकविहीन

आकृतियाँ हैं जो अपनी-अपनी वेशभूषा एवं वस्त्राभूषण से किरात और अर्जुन के रूप में पहचानी जा सकती हैं। शूकराकृति के ऊपर बाणों की पंक्ति बनी है। *तीसरे खण्ड* में किरात व अर्जुन का मल्ल-युद्ध एवं पार्वती सहित शिव के वास्तविक रूप में प्रकट होने और अंजलिबद्ध अर्जुन का द्विभुज स्थानक स्वरूप में शिव का अनुग्रह प्राप्त करने का अंकन द्रष्टव्य है। *अन्तिम खण्ड* में चतुर्भुज शिव के साथ पार्वती कैलाश पर आसीन हैं और इस स्वरूप में शिव अर्जुन को पाशुपतास्त्र प्रदान कर रहे हैं, पास में ही मकरवाहिनी गंगा का भी अंकन द्रष्टव्य है। इस पूरे कथानक अंकन में सूक्ष्म उकेरन के रूप में गुप्त कालीन तत्त्व स्पष्ट रूप से परिलक्षित होते हैं।[८] इनमें त्रिनेत्र शिव जटाजूट, अर्द्धचन्द्र एवं लगभग सभी में द्विभुज रूप में स्थानक-मुद्रा में निरूपित हैं।[९] राजौना के इस स्तम्भ पर सम्पूर्ण कथानक का उत्कीर्णन *महाभारत* के छन्द में वर्णित कथा के आधार पर हुआ है। अन्तिम खण्ड में शिल्पी ने गंगा के अंकन के माध्यम से गंगा का शिव से सम्बन्ध और तपोभूमि की पवित्रता का एक साथ भव्य रूपायन किया है।

नागरी (राजस्थान) से प्राप्त ल० आठवीं शती ई० में उत्कीर्ण तृतीय वर्ग की इस मूर्तिफलक में किरातार्जुन कथा का अंकन चार खण्डों में हुआ है। *प्रथम खण्ड* में एक पैर पर खड़े अर्जुन जटाजूटधारी तपस्वी रूप में एक वृक्ष के समीप अंकित हैं। अर्जुन का धनुष और तरकश पेड़ पर रखा हुआ है। *द्वितीय खण्ड* में किरात और अर्जुन के मध्य शूकर तथा किरात के पार्श्वाकृति के रूप में किराती को दृश्यावलोकन की मुद्रा में निरूपित किया गया है। इस स्वरूप में अर्जुन बाघम्बर पहने एवं बायें हाथ में बाण और दाहिने हाथ में धनुषसहित आकारित हैं। जबकि किरात के करों में धनुष-बाण की स्थिति इसके विपरीत है। किरात को दायें हाथ से शूकर की ओर संकेत करते दिखाया गया है। *तृतीय खण्ड* में अर्जुन (खण्डित मस्तक) एवं किरात को धनुर्युद्ध में धनुष-बाण से युक्त दिखाया गया है। इस स्वरूप में किरात के दायें हाथ में बाण एवं बायें हाथ में लम्बा धनुष विद्यमान है। *चतुर्थ खण्ड* में किरात व अर्जुन मल्ल-युद्ध करते प्रदर्शित हैं। मल्ल-युद्ध में अर्जुन द्वारा किरातरूपी शिव को गिरा दिये जाने का दृश्य है, जिसमें नीचे दबे किरात द्वारा अपने बल के उपयोग से अर्जुन को परे करने का भावात्मक एवं सुन्दर अंकन हुआ है।[१०] किरात के साथ किराती का अंकन सर्वत्र दृश्यावलोकन करते हुए है। किन्तु इस फलक में किराती का अंकन कुछ उत्तेजित अवस्था में हुआ है। प्रस्तुत फलक पर मुख्यरूप से अर्जुन की तपस्या, शूकर-वध, अर्जुन और किरात के युद्ध का ही रूपायन हुआ है।

भुवनेश्वर (उड़ीसा) से अर्जुनानुग्रह स्वरूप के दो उदाहरण प्रारम्भिक मन्दिरों (स्वर्णजालेश्वर एवं शिशिरेश्वर) से प्राप्त हैं। दोनों ही उदाहरण लगभग

एक समान अंकन वाले एवं साथ ही कुछ भिन्नता के साथ अंकित हैं। प्राप्त उदाहरण गजथर, अश्वथर के मध्य मन्दिर के जगमोहन पर चार एवं पाँच खण्डों में कथात्मक स्वरूप में निरूपित हैं।

अर्जुनानुग्रह मूर्ति का प्रथम उदाहरण स्वर्णजालेश्वर मन्दिर, भुवनेश्वर (चित्र २८) पर (ल० सातवीं शती ई०) उत्कीर्ण है। यह तृतीय वर्ग का उदाहरण है। इसमें कथात्मक अंकन क्रमशः पाँच खण्डों में हुआ है। चार खण्डों में द्विभुज शिव भिल्ल वेश में अधोवस्त्र एवं धनुष युक्त आकारित हैं। पार्श्वाकृति के रूप में प्रत्येक जगह द्विभुजा किराती (पार्वती) भी खड्ग एवं ढाल सहित दिखायी गयी हैं जबकि अर्जुम कंकालरूप में छन्नवीर वेश में धनुषादि आयुधों से युक्त हैं। इस फलक में अंकन क्रमशः दायीं से बायीं ओर हुआ है। *प्रथम खण्ड* में सघन वन में अर्जुन तपस्यारत हैं। *द्वितीय खण्ड* में मूक दानवरूपी मृत शूकर पर अपना-अपना आधिपत्य स्थापित करने के लिए शूकर के अग्रपाद को अर्जुन एवं पृष्ठपाद को किरात द्वारा एक-एक हाथ से पकड़े हुए दिखाया गया है, जिसके कारण शूकर बीच में उल्टा लटका द्रष्टव्य है। शूकर का पृष्ठभाग किरात की ओर एवं मुख भाग अर्जुन की ओर है। शूकर के नीचे उसके मुख भाग पर किरात की ओर से आकर पूरी ताकत से श्वान को झपट्टा मारने की स्थिति में दिखाया गया है जो किरात के सन्दर्भ में एक आवश्यक तत्त्व के रूप में देखा जा सकता है। *तृतीय खण्ड* में अर्जुन, किरात को *महाभारत* में वर्णित कथा के अनुरूप एक दूसरे के समक्ष शर-सन्धान की मुद्रा में युद्ध करते दिखाया गया है। किरात के पीछे किराती की भी गतिमान आकृति अन्य खण्डों की भाँति निर्मित है। *चतुर्थ खण्ड* में किरात की मूर्ति प्रायः खण्डित है, इस खण्ड में अर्जुन व किरात को मल्ल-युद्ध करते निरूपित किया गया है। *पंचम खण्ड* में किरात व किराती के सम्मुख अर्जुन घुटनों पर आधारित अंजलिबद्ध-मुद्रा में हैं और किरात द्वारा अर्जुन को धनुष अथवा पाशुपत-अस्त्र प्रदान करते दिखाया गया है यहाँ शिव दायें कर से वरद-मुद्रा का प्रदर्शन करते दिखाये गये हैं। यह मूर्ति एलोरा के कैलाश मन्दिर के अन्दर बनी मूर्ति के प्रायः समान अंकन वाली है।[११]

भुवनेश्वर के शिशिरेश्वर मन्दिर (ल० आठवीं शती ई०) के उत्तरी जगमोहनं पर अर्जुनानुग्रह स्वरूप का अंकन हस्ति एवं अश्व श्रृंखला के मध्य हुआ है। फलक में स्वर्णजालेश्वर मन्दिर की भाँति कथात्मक स्वरूप का अंकन दायीं से बायीं ओर हुआ है। यह भी तृतीय वर्ग का उदाहरण है, किन्तु स्वर्णजालेश्वर मन्दिर के उदाहरण से भिन्नता के दृष्टि से यहाँ पर किराती का अंकन प्रमुखता से हुआ है। *दूसरे खण्ड* में किरातवेशी शिव के पार्श्व में खड़ी पार्वती (किराती) को खड्ग और ढाल सहित अंकित किया गया है। वहीं

किरात और अर्जुन एक दूसरे पर बाण-वर्षा करते निरूपित हैं और मध्य में चार बाण उड़ती अवस्था में अंकित है। *तीसरे खण्ड* में अर्जुन एवं किरात को मल्ल-युद्ध करते तथा इसके पहले वाले अंक में अर्जुन एवं किरात को स्वर्णजालेश्वर मन्दिर की तरह उल्टी लटकी शूकराकृति को एक-एक हाथ से पकड़े सांकेतिक रूप से युद्ध के कारण को दिखाया गया है। *चौथे खण्ड* में शिवलिङ्ग के सम्मुख अंजलिबद्ध-मुद्रा में घुटने टेके हुए अर्जुन का दृश्य है एवं पुनः शिव-पार्वती के सम्मुख अंजलिबद्ध-मुद्रा में दिखाकर शिल्पी ने कथा की सम्पूर्णता को दिखलाया है।[१२]

अर्जुनानुग्रह स्वरूप का अंकन पल्लव कालीन कलाकेन्द्रों यथा—कांचीपुरम् एवं महाबलीपुरम् दोनों ही स्थानों पर हुआ है, जिनमें पल्लव कालीन मूर्तिकला के तत्त्व (लम्बी एवं छरहरी बदन वाली आकृतियाँ) स्पष्टतः परिलक्षित हैं, जो स्वभावतः मांसल शरीर वाली आकृतियों से अधिक क्रियाशील अंकित हैं। अपनी सहज-स्वाभाविक अभिव्यक्ति व भंगिमाओं के कारण पल्लव कालीन उदाहरण सजीव हो उठे हैं।[१३]

कैलाशनाथ मन्दिर (कांचीपुरम्) के देव प्रकोष्ठ में उत्कीर्ण (ल० आठवीं शती ई०) उदाहरण में अर्जुन एवं किरातरूपी शिव को युद्धरत (रेखाचित्र १) दिखाया गया है। इस मूर्ति में किरात वेशधारी द्विभुज शिव लम्बे जटामुकुट से शोभित हैं तथा बाण एवं धनुष से युक्त हैं। शिव दो तूणीर व कटि पर आधारित खड्ग के साथ आलीढ़-मुद्रा में निरूपित है। अर्जुन तपस्वी वेश में जटाबन्ध एवं धनुष-बाण से शोभित प्रत्यालीढ़-मुद्रा में हैं। इस स्वरूप में किरात को तूणीर से बाण निकालते और अर्जुन को शर-सन्धान मुद्रा में दिखाया गया है। मध्य भाग में शिव के पैरों के पास शूकर की छोटी आकृति को दिखलाकर[१४] शिल्पी ने *महाभारत* में वर्णित कथा के उस अंश का संजीव चित्रण किया है, जिसमें शूकर रूप में परिवर्तित होकर मूक दानव अर्जुन पर आक्रमण करना चाहता है और उसके वध के पश्चात् किरात एवं अर्जुन के मध्य में उठे विवाद एवं उसके परिणामस्वरूप युद्ध का सजीव चित्रण इसके माध्यम से हुआ है। इस उदाहरण में किरात वेशधारी शिव दो तूणीर से युक्त हैं जो परम्परा से अलग दिखाया गया है।

पल्लव कालीन (ल० आठवीं शती ई०) दूसरा उदाहरण विश्वप्रसिद्ध चट्टानी शिल्प (महाबलीपुरम्) पर उत्कीर्ण है। चट्टानी शिल्प पर उत्कीर्ण दृश्यांकन को विद्वानों द्वारा गंगा-अवतरण, अर्जुनानुग्रह एवं अन्यान्य नामों से सम्बोधित किया जाता रहा है और आज भी इस चट्टान पर उत्कीर्ण आकृतियों के माध्यम से उभरती कथाओं के विभिन्न बिन्दुओं की विद्वानों द्वारा जाँच कर उसकी पहचान में स्पष्टतः भेद मिलता है। उपरोक्त उदाहरण महाबलीपुरम्

(तमिलनाडु) से प्राप्त है। इस विशालकाय चट्टान (९०' × ३०') पर उत्कीर्ण दृश्य को हम दो भागों में विभक्त कर सकते हैं। मध्य में गंगावतरण के दृश्य के दायें पार्श्व में अर्जुनानुग्रह का दृश्य एवं बायीं ओर विभिन्न आकृतियों का अंकन है। दायीं ओर का दृश्य *किरातार्जुनीयम्* (भारवि कृत) में वर्णित कथा के अनुरूप है।[१५] यहाँ पर भारवि से सम्बन्धित अभिलेख युक्त शिला भी मिली है। इस शिला-खण्ड पर क्रमिक रूप से अर्जुन की तपस्या, तपस्या के मध्य उसकी पात्रता की जाँच के लिए किरातवेशी शिव का इन्द्र सहित प्रवेश, अर्जुन एवं किरात के मध्य युद्ध और अन्तत: शिव द्वारा अर्जुन के ऊपर अनुग्रह करने का अंकन हुआ है।[१६] सम्पूर्ण वातावरण में *किरातार्जुनीयम्* में वर्णित वन-प्रान्त के दृश्यों में वानर परिवार, गज, व्याघ्र, विलाव, मृग आदि का अंकन सौम्य, स्वाभाविक, ओजपूर्ण एवं सम्पूर्ण ऊर्जा के साथ गतिशील स्वरूप में हुआ है।

आरम्भिक एवं पश्चिमी चालुक्य कालीन पुरास्थलों से अर्जुनानुग्रह स्वरूप के कथात्मक अंकन का एक-एक उदाहरण पट्टडकल (कर्नाटक) स्थित पापनाथ मन्दिर, मल्लिकार्जुन मन्दिर और विरूपाक्ष मन्दिर (दो उदाहरण) से प्राप्त है। सभी उदाहरण ल० आठवीं शती ई० के हैं। इन सभी में चालुक्य कालीन मूर्तिकला के तत्त्व स्पष्ट रूप से परिलक्षित होते हैं, जिनमें आकृतियों का लम्बा एवं छरहरा बदन, लयात्मक एवं भावात्मक अंकन और सौम्यता के अतिरिक्त कथात्मक अंकन में गतिशीलतापूर्ण ऊर्जा-शक्ति के साथ दृष्टिगत है। अर्जुनानुग्रह स्वरूप का एक अन्य उदाहरण चालुक्य कला-केन्द्र से प्राप्त एवं वर्तमान में न्यूयॉर्क के मेट्रोपोलिटन संग्रहालय में संगृहीत है।

अर्जुनानुग्रह स्वरूप का यह उदाहरण संप्रति मेट्रोपोलिटन संग्रहालय, न्यूयॉर्क (अमेरिका) में सुरक्षित (ल० सातवीं शती ई०) है तथा आन्ध्र कर्नाटक की सीमा से प्राप्त है। इस मूर्तिफलक में कथा के तीन दृश्यों का अंकन है। *प्रथम* में अर्जुन को तपस्यारत, *दूसरे* में शूकररूपी दानव का वध और अन्त में अर्जुन को शिव के समक्ष प्रार्थना करते दिखाया गया है। इस मूर्ति फलक में इन्द्रकील पर्वत का सांकेतिक अंकन वृक्ष के रूप में और शिव का अंकन उनके लिङ्ग स्वरूप में किया गया है।[१७] फलक पर क्रमश: दायें से बायें *प्रथम खण्ड* में अर्जुन को अंजलिबद्ध व आसीन-मुद्रा में शिवलिङ्ग के समक्ष आराधनारत दिखाया गया है। शिवलिङ्ग पर कमल पुष्प का भी अंकन है। कथा के *अन्तिम दृश्य* के अंकन हेतु वृक्षों के माध्यम से अर्जुन की तपस्या, अर्जुन द्वारा तूणीर से बाण निकालते एवं उनके बाण से घायल शूकराकृति के अग्रपाद को शिवलिंग पर टिके दिखाया गया है। अन्तिम भाग में उत्कीर्ण अर्जुन और शिवलिङ्ग के मध्य शूकराकृति को दिखाकर शिल्पी ने शिवलिङ्ग के माध्यम से शिव का अंकन किया है। इस मूर्ति

फलक की विशेषता यह है कि यहाँ शूकराकृति का अग्रपाद शिवलिङ्ग पर आधारित है जो अन्यत्र नहीं प्राप्त होता। अन्य स्थानों पर शिव को जिस प्रकार शूकर के अग्रपाद को पकड़े तथा अर्जुन को पश्चपाद पकड़े दिखाया गया है सम्भव है शिल्पी ने शूकर के अग्रपाद को शिवलिङ्ग पर दिखाकर उपरोक्त परम्परा का सांकेतिक अंकन किया हो।

पापनाथ मन्दिर की उत्तरी बाह्य भित्ति की एक पूर्वाभिमुख रथिका के पाँच खण्डों में इस कथानक का अंकन लोक-परम्परा में प्रचलित कथा के आधार पर हुआ है। प्रत्येक खण्ड में इस कथा स्वरूप को बायें से दायें रूपायित किया गया है। यह तृतीय वर्ग का एक अच्छा उदाहरण है। सम्पूर्ण कथानक ऋतुक्षय के कारण काफी नष्ट हो चुका है। *प्रथम खण्ड* में एक पैर पर स्थानक एवं ऊर्ध्व बाहु से युक्त अर्जुन को तपस्यारत दिखाया गया है और साथ ही सम्मुख भाग में शर-सन्धान मुद्रा में अर्जुन की आकृति का निरूपण हुआ है। *द्वितीय खण्ड* में नीचे मानवाकृति के रूप में मूक दानव का अंकन है जबकि उसके ऊपर का भाग खण्डित हो चुका है, जो उसके शूकराकृति रूप का अंकन रहा होगा। *तृतीय खण्ड* में खण्डित मस्तक वाले किरात को प्रत्यालीढ़-मुद्रा में अर्जुन की भाँति शर-सन्धान में दिखाया गया है। किरात के पार्श्व में द्विभुजी किराती के रूप में पार्वती का अंकन है। किरात के दोनों पैरों के मध्य दो लघु श्वान आकृतियों का अंकन कर शिल्पी ने इसकी पहचान शिव के भिल्ल स्वरूप होने के अनिवार्य तत्त्व के रूप में किया है। *चतुर्थ खण्ड* में मस्तकविहीन दो मानवों को मल्ल-युद्ध में संलग्न दिखाया गया है, जो कथा के अगले चरण में किरात और अर्जुन के मल्ल-युद्ध का अंकन है। मल्ल-युद्ध में गिरते हुए किरात के मस्तक को किराती के गोद में आकारित किया गया है, जबकि अर्जुन ऊपर से मुष्टिका प्रहार की मुद्रा में हैं। इसी क्रम में किराती के ऊपर उठे हाथ सम्भवतः शिव से युद्ध रोकने की प्रार्थना करते निरुपित हैं।[१८] इसी खण्ड में ऊपर वाले भाग में नन्दी पर आरूढ़ शिव-पार्वती के सम्मुख व्याघ्रचर्म धारण किए अर्जुन को दायें हाथ से पाशुपत-अस्त्र ग्रहण करते दिखाया गया है। पार्वती की गोद में बालक के रूप में गणेश का अंकन विशेषतः द्रष्टव्य है। इस खण्ड में शिव पार्वतीसहित अर्जुन के मस्तक खण्डित हैं।

मल्लिकार्जुन मन्दिर के स्तम्भ-मण्डप के एक स्तम्भ पर अर्जुनानुग्रह स्वरूप का कथात्मक अंकन है। इस स्तम्भ के आयताकार क्षेत्र पर क्रमशः ऊपर से नीचे तीन खण्डों में कथा का संयोजन हुआ है। *प्रथम खण्ड* में पर्वत पर तपस्यारत अर्जुन को क्रमबद्ध तपस्या के क्रमिक विकास के रूप में अंकित किया गया है। पहले में पद्मासन में बैठकर अंजलिबद्ध-मुद्रा में, पुनः एक पैर पर खड़े होकर

ऊर्ध्व बाहु एवं जटाजूट से युक्त अर्जुन को कठोर तप करते दिखाया गया है। इस स्वरूप में अर्जुन ने व्याघ्रचर्म धारण किए हैं पार्श्व में वृक्ष भी द्रष्टव्य है, जिस पर अर्जुन के धनुष एवं बाण रखे हुए हैं। इसी खण्ड पर शर-सन्धान मुद्रा में किरात एवं अर्जुन के मध्य शूकर का अंकन है और उसके नीचे वध के समय मूक दानव अपने वास्तविक मानवीय स्वरूप में निरूपित हुआ है। किरात के पास गोद में बालक लिए किराती का अंकन भी है। किरात एवं किराती के मध्य अपने मुख एवं पूँछ को उठाये श्वान का निरूपण बड़े ही स्वाभाविक एवं सुन्दर रूप में हुआ है। *मध्य खण्ड* में किरात एवं अर्जुन को धनुर्युद्ध में संलग्न और किराती को युद्ध का अवलोकन करते दिखाया गया है। युद्ध के अगले क्रम में इसी खण्ड में किरात एवं अर्जुन मल्ल-युद्ध में संलग्न हैं और इसमें अर्जुन किरातरूपी शिव को नीचे गिराकर ऊपर से मुष्टिका प्रहार करने की मुद्रा में आमूर्तित हैं। किरात दायें हाथ से भूमि से टेक लेकर एवं बायें हाथ से अर्जुन से युद्ध को रोकने का संकेत करते अंकित हैं। इस क्रम में किरात के पीछे स्थानक किराती भी बायें हाथ से युद्ध को रोके जाने का संकेत करती निरूपित हैं। *अन्तिम खण्ड* में इन्द्रकील पर्वत पर मुकुटादि से शोभित अर्जुन का अंकन है। शिव-पार्वती (दोनों द्विभुज) एक ही आसन पर विराजमान होकर अर्जुन के पाशुपतास्त्र प्रदान करते दिखाये गये हैं। इस स्वरूप में शिव जटामुकुट, यज्ञोपवीत आदि से युक्त हैं। शिव के दायें हाथ से वरद-मुद्रा व्यक्त है जबकि बायाँ हाथ पृथ्वी पर आराम करने की मुद्रा में निरूपित है। पाशुपत-अस्त्र का अंकन अलौकिक रूप में हुआ है। इसी खण्ड पर आगे अर्जुन को पाशुपत-अस्त्र के साथ तथा पाँच अन्य आकृतियों का अंकन आसीन मुद्रा में हुआ है, जिनकी पहचान एम०एस० नागराज राव ने द्रौपदी सहित पंचपाण्डव या देवाकृतियों के रूप में की है।

विरूपाक्ष मन्दिर से प्राप्त उदाहरण में मल्लिकार्जुन मन्दिर के स्तम्भ मण्डप में उत्कीर्ण स्तम्भ के समान ही अर्जुनानुग्रह स्वरूप का कथात्मक अंकन हुआ है। इस स्तम्भ के चौकोर फलक पर चार खण्डों में क्रमशः ऊपर से नीचे अंकन हुआ है। स्तम्भ पर उत्कीर्ण खण्डों के नीचे वन्य जीवों को भी रूपायित किया गया है। इस मन्दिर के स्तम्भ मण्डप के सभी स्तम्भों पर प्रायः *महाभारत* एवं *रामायण* से सम्बन्धित दृश्यों का कथात्मक अंकन मिलता है।[१९] प्रस्तुत उदाहरण में स्तम्भ पर अर्जुन की तपस्या, शूकर वध, धनुर्युद्ध, मल्ल-युद्ध और शिव द्वारा अर्जुन को पाशुपत-अस्त्र प्रदान करने का अंकन *प्रथम दोनों खण्डों* में पर क्रमशः दायें से बायें हुआ है। *द्वितीय खण्ड* में मल्लिकार्जुन मन्दिर से अलग यहाँ द्विभुज शिव बायें हाथ से दायीं ओर आसीन अर्जुन को पाशुपत-अस्त्र प्रदान करने की मुद्रा में आमूर्तित हैं, जबकि अर्जुन दायें हाथ से ग्रहण करने की मुद्रा में निरूपित हैं। *तृतीय खण्ड* में

पाशुपत-अस्त्र प्राप्त करने के पश्चात् अर्जुन के स्वयं रथारूढ़ आगमन का दृश्य अंकित है। इस स्वरूप में रथ पर आरूढ़ अर्जुन का स्वागत करती तीन पूर्ण कलश-सहित आकृतियों का अंकन शुभ या मंगल का सूचक है। इसी खण्ड पर स्वागत के पश्चात् अर्जुन का मनोरंजन करती तीन नारी आकृतियों सहित एक अनुचर आकृति का अंकन अंजलिबद्ध-मुद्रा में हुआ है, जबकि अर्जुन की आकृति मध्य में आसीन या अधलेटी मुद्रा में अंकित हैं। *अन्तिम खण्ड* में झोपड़ियों की पृष्ठभूमि में अर्जुन का वापस वन में अपने भाइयों के पास आने का अंकन है। सम्मुख भाग की अन्य आकृतियों की पहचान एम०एस० नागराज राव द्वारा भाइयों के रूप में की गई है। सभी के हाथों में शिव व अन्य देवों द्वारा प्राप्त आयुध दिखाया गया है। स्तम्भ पर उत्कीर्ण इस कथात्मक अंकन में एक विशिष्ट क्रमिक विकास को देखा जा सकता है, जो कांचीपुरम् के कैलाशनाथ मन्दिर के उदाहरण से होते हुए पट्टडकल के रास्ते एलोरा तक की यात्रा के एक प्रवाह के रूप में है, अर्थात् ये सभी एक ही परम्परा के दृश्यांकन हैं।[२०]

विरूपाक्ष मन्दिर के मण्डप स्तम्भ पर उत्कीर्ण अर्जुनानुग्रह स्वरूप के दूसरे उदाहरण में पूर्वोक्त मूर्ति स्तम्भ फलक की विशेषताएँ दिखलायी गयी हैं, जिसमें अर्जुन की तपस्या, शूकर वध तथा किरात के साथ धनु एवं मल्ल-युद्ध का अंकन हुआ है। सबसे अन्त में शिव पार्वतीसहित अर्जुन को पाशुपत-अस्त्र प्रदान करने का प्रसंग उत्कीर्ण है। पूर्व उदाहरण से अलग कथात्मक शैली के इस उदाहरण में कर्नाटक की लोक-परम्परा में प्रचलित कथा के अनुरूप मल्ल-युद्ध के दौरान शिव के ऊपर अर्जुन की आकृति दिखायी गयी है। अर्जुन की पीठ पर अंकित मांगलिक चिह्न देख लेने के बाद किराती वेशधारिणी पार्वती द्वारा हाथ उठाकर शिव को मानों युद्ध रोकने का संकेत किया गया है जो विशेषतः उल्लेखनीय है। प्रस्तुत कथांकन के अगले दृश्य में शिव पार्वतीसहित प्रसन्न और आशुतोष रूप में सामने अंजलिबद्ध अर्जुन की आकृति को पाशुपत-अस्त्र प्रदान करते निरूपित हैं।

कैलाश मन्दिर (एलोरा) से अर्जुनानुग्रह स्वरूप के दो उदाहरण मिले हैं, जिनमें से एक में कथात्मक शैली में *महाभारत* की घटनाओं का चित्रण पंक्तिबद्ध के रूप में हुआ है जबकि दूंसरी मूर्ति स्वतन्त्र रूप में रूपायित है। एलोरा की मूर्तियों में नारी का सौन्दर्य, भाव-सम्प्रेषण की क्षमता, मृदुलता, शारीरिक विन्यास की दृष्टि से लयात्मकता तथा पुरुष व नारी के अंकन की अलग-अलग पद्धति में शरीर रचना उल्लेखनीय है। इसके अतिरिक्त देवता के देवत्व को व्यक्त करने के लिये सामान्य मानवीय स्वरूप के अतिरिक्त अलौकिक शक्तियों के प्रदर्शन हेतु हाथों की संख्या में वृद्धि राष्ट्रकूट-कला की प्रमुख पहचान है।

एलोरा के कैलाश मन्दिर (गुफा सं० १६) की बाह्य उत्तरी भित्ति पर अर्जुनानुग्रह (ल० आठवीं शती ई०) स्वरूप का कथात्मक अंकन (चित्र २९) है। यह द्वितीय वर्ग का सुन्दर उदाहरण है। पाँच पंक्तियों में वर्णित *महाभारत* कथा की प्रथम पंक्ति पर क्रमशः दायें से बायें अर्जुनानुग्रह प्रसंग उत्कीर्ण है। इसमें सर्वप्रथम अर्जुन एक पाद और उर्ध्व हस्त अवस्था में तपस्वी के वेश में कठोर तप करते अंकित हैं। अर्जुन के दायें पार्श्व में एक वृक्ष का अंकन है जिस पर उनके धनुष एवं बाण रखे हुए हैं। इसी पंक्ति के अगले चरण में अर्जुन एवं किरात को शर-सन्धान मुद्रा में धनुर्युद्ध में संलग्न दिखाया गया है। मूक दानव की मानव देहधारी आकृति शूकररूपी शरीर से बाहर निकलते प्रदर्शित है। किरात के पार्श्व में कट्यावलम्बित द्विभुजा किराती का अंकन विशेष रूप से ध्यातव्य है। दूसरे खण्ड में अर्जुन एवं किरात के मल्ल-युद्ध के आरम्भ और अन्त के दो चरणों के दृश्य को शिल्पी ने रूपायित किया है। *प्रथम खण्ड* में दोनों स्थानक हैं तथा द्वितीय अंक में किरात नीचे व अर्जुन को उनके ऊपर आरूढ़ दिखाया गया है, जिसमें अर्जुन का मस्तक खण्डित अवस्था में है अन्त में शिव प्रसन्न एवं चतुर्भुज स्वरूप में अन्य आकृतियों के साथ अर्जुन को पाशुपत-अस्त्र प्रदान करते हुए निरूपित हैं।[२१] सबसे अन्तिम भाग में अर्जुन का रथारूढ़ आगमन दिखाया गया है।

एलोरा के कैलाश मन्दिर के मण्डप से अर्जुनानुग्रह मूर्ति स्वरूप की प्रथम वर्ग की स्वतन्त्र मूर्ति मिली है। इस मूर्ति में द्विभुज आसीन शिव के सम्मुख स्थानक अर्जुन अंजलिबद्ध-मुद्रा में आमूर्तित हैं। शिव के पार्श्वाकृति के रूप में पार्वती इस मूर्ति में अनुपस्थित हैं।[२२] शिव जटामुकुट एवं अन्य आभूषणों से सुशोभित अर्जुन को पाशुपत-अस्त्र प्रदान करते निरूपित हैं। यह मूर्ति भुवनेश्वर के स्वर्णजालेश्वर मन्दिर की अर्जुनानुग्रह मूर्ति से साम्य रखती है।[२३]

ईश्वर मन्दिर, सिरवाल (गुलबर्गा, कर्नाटक, ल० १०वीं शती ई०) के उत्तरी अधिष्ठान के कुमुदपट्ट पर अर्जुनानुग्रह मूर्ति उत्कीर्ण है। अर्जुनानुग्रह स्वरूप का कथात्मक अंकन बायें से दायें क्रमिक रूप में हुआ है। सर्वप्रथम अर्जुन की द्विभुज आकृति तपस्या में संलग्न है। इसके आगे द्विभुज स्वरूप में अर्जुन एवं किरात शर-सन्धान मुद्रा में और दोनों के मध्य शूकराकृति का अंकन है। कथा के द्वितीय भाग में शिल्पी ने शूकर-वध और उससे उठे विवाद के परिणामस्वरूप अर्जुन एवं किरात के मध्य धनुर्युद्ध का समवेत रूप में अंकन उपरोक्त ढंग से ही किया है। इस दृश्य में द्विभुजा किराती को किरात के पीछे दृश्य का अवलोकन करते निरूपित किया गया है। इस अंकन के पश्चात् अर्जुन एवं किरात का मल्ल-युद्ध कथा के उस अंक का अंकन है, जब युद्ध के दौरान अर्जुन के सारे आयुध समाप्त हो जाते हैं और किरात एवं अर्जुन मल्ल-युद्ध में

संलग्न हो जाते हैं। इस स्वरूप में किरात को नीचे गिरे एवं अर्जुन को किरात के ऊपर दिखाया गया है। सबसे अन्तिम भाग में द्विभुज स्वरूप में आसीन शिव को एक हाथ से अभय एवं दूसरे हाथ से पाशुपत-बाण प्रदान करते प्रदर्शित किया गया है। शिव के सम्मुख दोनों पैर मोड़कर अंजलिबद्ध-मुद्रा में कुछ आगे बढ़कर अर्जुन को पाशुपतास्त्र ग्रहण करते दिखाया गया है। वर्तमान में यह अंकन ऋतुक्षय से प्रभावित है।

सिरवाल, वापी संख्या १, की पूर्वी भित्ति पर उत्कीर्ण (ल० १०वीं शती ई०) अर्जुनानुग्रह स्वरूप (चित्र ३०) का कथात्मक अंकन है जिसमें कथा के अन्तिम दृश्य में अर्जुन के ऊपर अनुग्रह करने की घटना का अंकन *महाभारत* की कथा के अनुरूप हुआ है। इस फलक पर किरातरूपी शिव से पराजित होकर और अन्ततः शिव की शरण में आकर अर्जुन का प्रार्थना करना तथा शिव का अपना वास्तविक रूप प्रकट करने का दृश्यांकन है। अर्जुन को शिव द्वारा अनुग्रह स्वरूप पाशुपत-अस्त्र प्रदान करने का सुन्दर रूपायन हुआ है। प्रस्तुत फलक के दायें खण्ड में चतुर्भुज व स्थानक शिव, अंजलिबद्ध व प्रार्थनारत अर्जुन के समक्ष वास्तविक रूप में हैं। इस स्वरूप में शिव अभय, त्रिशूल, डमरू से युक्त हैं, जबकि एक हाथ कट्यालम्बित-मुद्रा में है। दूसरे खण्ड में चतुर्भुज शिव एवं द्विभुजा पार्वती एक ही आसन पर विराजमान हैं। शिव जटामुकुट एवं अन्य आभूषणों से आभूषित अपने दायें पार्श्व में आसीन एवं अंजलिबद्ध-मुद्रा में उपस्थित अर्जुन को एक हाथ में पाशुपत-अस्त्र देते एवं अन्य हाथों में त्रिशूल एवं वरद-मुद्रा सहित आमूर्तित हैं। शिव के आसन पर आसीन द्विभुजा पार्वती का एक हाथ वरद-मुद्रा में और दूसरा हाथ खण्डित है।

सिरवाल के वापी संख्या २, में अर्जुनानुग्रह स्वरूप का कथात्मक अंकन क्रमशः तीन फलकों पर हुआ है। *प्रथम फलक* पर (चित्र ३१) किरात और अर्जुन के मध्य जंगली शूकर की आकृति उत्कीर्ण है, जिसके शरीर में दो बाण प्रविष्ट हो चुके हैं। किरात एवं अर्जुन की आकृतियाँ शर-सन्धान मुद्रा में हैं। फलक पर उत्कीर्ण शूकराकृति का मुख भाग अर्जुन की ओर एवं पृष्ठ भाग किरात की ओर है। किरात के मुख एवं पैर खण्डित हैं। इस स्वरूप में अर्जुन दो तूणीर से युक्त छन्नवीर वेश में मुकुट, कुण्डल व अधोवस्त्र पहने अंकित हैं। *द्वितीय फलक* (चित्र ३२) पर किरात किराती सहित सम्मुख स्थानक तथा दो तूणीर को धारण किए पाण्डव नायक पार्थ से शर-सन्धान मुद्रा में युद्धरत दिखाये गये हैं। किराती के हाथ एवं मुख खण्डित हैं फिर भी शेष आकृति उनके दृश्यावलोकन को व्यक्त करने में सक्षम हैं। इसी स्थान के अगले फलक पर सिरवाल के ही वापी संख्या १ से प्राप्त मूर्तिफलक में स्थितियों का विपरीत अंकन है। इसमें शिव के दायें पार्श्व में

द्विभुजा पार्वती और वाम पार्श्व में दो तूणीरों से युक्त अर्जुन का वक्ष पर हस्तबन्ध-मुद्रा में अंकन हुआ है। इसमें एकसाथ तीनों आकृतियों का अंकन एक ही आसन पर आसीन अवस्था में हुआ है। त्रिनेत्र व चतुर्भुज शिव वरद, अस्पष्ट, पाशुपतास्त्र व स्वजानु पर आधारित करों से वामपार्श्व में प्रार्थनारत अर्जुन की आकृति को अनुग्रह स्वरूप पाशुपत-अस्त्र प्रदान करते रूपायित हैं। पार्वती को सुन्दर केश-विन्यास, स्त्रियोचित आभूषणों से अलंकृत एवं एक हाथ में पद्म धारण किए निरूपित किया गया है। अर्जुन पर विशेष स्नेह के कारण कुछ आगे की ओर बढ़कर अस्त्र प्रदान करने वाले भाव के साथ प्रसन्नवदन शिव को सुन्दरता से प्रस्तुत किया गया है।

अर्जुनानुग्रह स्वरूप का एक और उदाहरण कडूर (चिकमंगलूर, कर्नाटक) से एक मण्डप स्तम्भ के रूप में प्राप्त (ल० १०वीं शती ई०) है। वर्तमान में यह शासकीय पुरातत्त्व संग्रहालय, मैसूर (कर्नाटक) में सुरक्षित है। स्तम्भ पर आकारित यह कथात्मक अंकन लोक-परम्परा के कथानक और *महाभारत* में वर्णित कथा का मिश्रित रूप प्रस्तुत करता है। इस स्तम्भ के *पहले खण्ड* में (जो कि पूर्ण रूप से खण्डित हो चुका है) सम्भवतः अर्जुन की तपस्या एवं शूकररूपी मूक दानव के प्रवेश के दृश्य का अंकन रहा होगा। *दूसरे खण्ड* (चित्र ३३) में अधोवस्त्र एवं जटाबन्ध से युक्त द्विभुज अर्जुन एवं किरात की स्थानक आकृतियाँ शर-सन्धान मुद्रा में निरूपित हैं। किरात के पार्श्व में दृश्यावलोकन करती किराती का सुन्दर अंकन हुआ है जबकि मध्य में शिवलिङ्ग के ऊपर अंकित शूकराकृति को दर्शाया गया है। शूकर को अर्जुन की ओर मुख एवं किरात की ओर पृष्ठ किये निरूपित किया गया है। शिवलिङ्ग की ऊँचाई अन्य आकृतियों के समतुल्य एवं शिवलिङ्ग की पीठिका पर वाहन नन्दी (वृषभ रूप) का अंकन है। इसी खण्ड में शूकर-वध और परिणामस्वरूप अर्जुन-किरात युद्ध के प्रसंग को शिल्पी ने एकसाथ भावात्मक एवं प्रतीकात्मक रूप में प्रदर्शित किया है। *तीसरे खण्ड* में द्विभुज स्वरूप में किरात और अर्जुन का खड्ग-युद्ध एवं उनके मध्य में शूकराकृति का अंकन हुआ है। इसी खण्ड में कथा के अगले क्रम में किरात एवं अर्जुन के मल्ल-युद्ध का भी प्रदर्शन है। इस स्वरूप में द्विभुज अर्जुन ने चतुर्भुज किरात को नीचे गिरा दिया तथा कटिहस्त पार्वती किराती वेश में अर्जुन के पीछे निरूपित हैं। लोक-कथा में वर्णित परम्परा के अनुसार पार्वती द्वारा अर्जुन के पृष्ठभाग पर मांगलिक चिह्न देख लिये जाने के पश्चात् किरात अपने वास्तविक स्वरूप को प्रकट करते हैं। सम्भवतः इसी कारण शिल्पी ने किरात को चतुर्भुज स्वरूप में तथा किराती का अंकन अर्जुन के पृष्ठभाग में किया है। स्तम्भ के *चौथे खण्ड पर* (चित्र ३४) कथा के अगले दो चरण प्रदर्शित हैं जिसमें अर्जुन का आयुध सहित शिव के

सम्मुख समर्पण और श्रद्धावनत् होकर प्रसन्न शिव से पाशुपत-अस्त्र प्राप्त करते अंकित किये गये हैं। स्थानक अर्जुन आगे की ओर थोड़ा झुककर अपने आयुध को शिव को समर्पित करते तथा तुरन्त ही आगे के कथाक्रम में मुकुट आदि से शोभित अर्जुन घुटनों के बल बैठे एवं अंजलिबद्ध-मुद्रा में आकारित हैं। अर्जुन अपने सम्मुख नन्दी वाहन पर आसीन शिव-पार्वती से पाशुपत-अस्त्र प्राप्त कर रहे हैं। चतुर्भुज शिव इस स्वरूप में पार्वती की ओर मुड़कर देखते एवं बायें हाथ से पाशुपत-अस्त्र प्रदान करते निरूपित हैं। इस स्वरूप में शिव मानों पार्वती को अपने प्रिय भक्त को दिखाने का भाव व्यक्त कर रहे हों।

आलमपुर, महबूबनगर (आन्ध्र प्रदेश) से प्राप्त एवं संप्रति आलमपुर संग्रहालय में सुरक्षित एक उत्कीर्ण द्वार तोरण (ल० १०वीं शती ई०, या मन्दिर का कोई अन्य भाग) पर अर्जुनानुग्रह स्वरूप (चित्र ३५) का कथात्मक अंकन हुआ है, जिसमें कर्नाटक से प्राप्त पहले की प्रतिमाओं के अनुरूप लोक-कथा और भारवि कृत *किरातार्जुनीयम्* में वर्णित कथा के अनुसार रुपायन हुआ है। इस फलक पर अर्जुनानुग्रह कथा का अंकन परम्परानुरुप क्रमशः दायें से बायें हुआ है। बीच-बीच में स्तम्भाकृति हर खण्ड को अलग करती है। *प्रथम खण्ड* में किरात को किराती सहित शर-सन्धान मुद्रा में वन में प्रवेश करते और सम्मुख भाग में अर्जुन एक वृक्ष के पास तपस्यारत हैं। *द्वितीय खण्ड* में किरात और अर्जुन को मध्य में स्थित शूकर का वध करते दिखाया गया है, जबकि शूकर आकृति के पीछे अर्थात् दोनों के मध्य में सर पर एक टोकरी लिए किराती का भी स्पष्ट अंकन है। इसी फलक में आगे वन्य-प्रदेश की पृष्ठभूमि में कई ऋषि आकृतियों का किरात-अर्जुन का मल्ल-युद्ध देखते हुए अंकन है। मल्ल-युद्ध के दृश्य में अर्जुन के पीछे से आकर किराती स्वरूपा पार्वती का किरात को भावपूर्ण संकेत का अंकन विशेष रूप से द्रष्टव्य है।[२४] *तृतीय खण्ड* में कथा के समापन का दृश्य अंकित है, जिसमें सिरवाल के वापी संख्या २ की मूर्ति परम्परा के अनुरूप शिव-पार्वती आसीन हैं। पार्वती के पार्श्व में नन्दी, ऋषि एवं शिवगण आकृतियों का अंकन है जबकि शिव के सम्मुख घुटनों के बल बैठे अंजलिबद्ध, श्रद्धावनत् अर्जुन की पाशुपत-अस्त्र प्राप्त करती आकृति का सुन्दर प्रदर्शन हुआ है।

विजयवाड़ा (आन्ध्र प्रदेश) के इन्द्रकील पहाड़ी पर स्थापित अभिलेख-युक्त स्तम्भ (ल० नवीं शती ई०) पांड्य कालीन उदाहरण है। इस स्तम्भ पर भी राजौना एवं कडूर से प्राप्त स्तम्भों की तरह अर्जुनानुग्रह की कथा का रूपायन चारों ओर से कोर कर हुआ है, परन्तु कथा को सांकेतिक रूप में ही व्यक्त किया गया है। प्रस्तुत उदाहरण (चित्र ३६) में स्तम्भ पर ऊपर से नीचे क्रमशः तीन खण्डों में अंकन है—*प्रथम खण्ड* में एक शिवलिङ्ग का अंकन है। *द्वितीय खण्ड*

में एक पीठासन पर स्थानक अर्जुन को धनुष की प्रत्यञ्चा चढ़ाये मुकुट एवं तूणीरों से युक्त दिखाया गया है जो उनके और किरात के मध्य युद्ध का संकेत देता है। सबसे नीचे वाले खण्ड में चतुर्भुज शिव एवं द्विभुजा पार्वती का अंकन स्थानक रूप में हुआ है। शिव इस स्वरूप में एक कर से पाशुपत-अस्त्र प्रदान करते, जबकि दूसरा हाथ कट्यावलम्बित है। शेष ऊर्ध्व कर त्रिशूल और उमा के कन्धे पर उत्कीर्ण हैं। पार्वती एक हाथ से अभयदान देती एवं दूसरा कटिहस्त-मुद्रा में निरूपित है। शिव के दायें पार्श्व में अर्जुन की विनयावनत बैठी आकृति शिव-कृपा से कृतार्थ होती अंकित है। इस स्तम्भ के सर्वोपरि खण्ड में शिवलिङ्ग का अंकन सम्भवत: अर्जुन की तपस्या और शिव दोनों के प्रतीकात्मक रूप को व्यक्त करता है।

चोल शासकों के समय में कला और संस्कृति ने दक्षिण भारत में अभूतपूर्व विकास प्राप्त किया। इस काल में अनेकानेक विशाल मन्दिर एवं मन्दिरों के साथ सुन्दर सामञ्जस्य रखती हुई मूर्तियों का निर्माण हुआ, यद्यपि चोल कालीन शिव मन्दिरों पर शिव के संहार स्वरूपों की सर्वाधिक प्रतिमाएँ मिलती हैं, फिर भी शिव के सौम्य एवं अनुग्रह स्वरूप की मूर्तियों का निरूपण भी अन्य काल के मन्दिरों पर उत्कीर्ण मूर्तियों की तुलना में अधिक प्रखर रूप में व्यक्त है। ऐसे उदाहरण पुलमंगलई मन्दिर, तंजौर; साक्षीश्वर मन्दिर, तंजौर; बृहदीश्वर मन्दिर, तंजौर; ऐरावतेश्वर मन्दिर, दारासुरम्; नागेश्वर मन्दिर, कुम्भकोणम् आदि पर उत्कीर्ण हैं। अर्जुनानुग्रह स्वरूप के कथात्मक अंकन चोल कालीन उदाहरण नवीं से १२वीं शती ई० के मध्य के हैं। इस काल की मूर्तियों में लयात्मकता, आनुपातिक शारीरिक रचना, भावपूर्ण मुद्राओं एवं विभिन्न भंगिमाओं में अपने गोलमुख, लम्बी नासिका एवं लम्बी आकृतियों का अंकन विशेष रूप से द्रष्टव्य है।[२५]

पुलमंगलई मन्दिर (ल० नवीं शती ई०) से प्राप्त अर्जुनानुग्रह स्वरूप का उदाहरण प्रथम वर्ग का है। इस उदाहरण में शिव का अर्जुन के ऊपर अनुग्रह करने का भाव व्यक्त हुआ है। एक छोटे प्रकोष्ठ में निर्मित यह उदाहरण मन्दिर के गर्भगृह के उत्तरी जगती पर आकारित है। इसमें एकल चतुर्भुज शिव की आसीन मूर्ति आमूर्तित है जिसके समक्ष स्थानक एवं प्रत्यालीढ़-मुद्रा में अर्जुन को दायें हाथ में बाण एवं बायें कन्धे पर आधारित धनुष को पकड़े मुकुट आदि अलंकरणों से अलंकृत दिखाया गया है।

साक्षीश्वर मन्दिर के बाह्य दक्षिणी भित्ति के कोने पर उत्कीर्ण (ल० १०वीं शती ई०) अर्जुनानुग्रह स्वरूप (चित्र ३७) का कथात्मक अंकन दो चरणों में हुआ है। अर्जुन एवं किरात वेशधारी शिव के मध्य मल्ल-युद्ध और तत्पश्चात् प्रसन्न होने पर शिव द्वारा अर्जुन पर अनुग्रह करने का संक्षिप्त अंकन एक ही

फलक पर हुआ है। यह तीसरे वर्ग का उदाहरण है। फलक के दायें खण्ड पर मल्ल-युद्ध में मुकुटधारी अर्जुन द्वारा किरात को भूमि पर गिरा दिये जाने के पश्चात् अर्जुन को ऊपर से अतिरिक्त दबाव डालते दिखाया गया है। इसी फलक के अगले खण्ड में त्रिनेत्र एवं चतुर्भुज शिव जटामुकुट से शोभित एक पीठासन पर आसीन हैं। इस स्थिति में शिव का दायाँ पैर आसन से नीचे एवं बायाँ पैर आसन पर आकारित है। शिव एक हाथ से आसन को टेक लगाये एवं अन्य करों में परशु व मृग तथा एक हाथ से अर्जुन को पाशुपत-अस्त्र प्रदान करते दिखाये गये हैं। शिव के सम्मुख मुकुट आदि से शोभित स्थानक अर्जुन कट्यावलम्बित-मुद्रा में एवं एक हाथ से ग्रहण करने के भाव के साथ निरूपित किया गया है। दोनों ही आकृतियों को प्रसन्नवदन अंकित कर शिल्पी ने सम्पूर्ण वातावरण को आनन्दमय दिखाया है। यहाँ पार्वती की अनुपस्थिति विशेष रूप से ध्यातव्य है।

तंजौर के बृहदीश्वर मन्दिर (१००० ई०) के गोपुरम् अधिष्ठान पर बने एक फलक पर अर्जुनानुग्रह स्वरूप का कथात्मक अंकन विस्तारपूर्वक हुआ है। इस फलक पर नीचे से ऊपर चार खण्डों में अर्जुन की तपस्या, किरात-अर्जुन का धनुर्युद्ध, शिव से पाशुपत-अस्त्र ग्रहण करते एवं अन्य देवाकृतियों द्वारा शिव-लीला के इस दृश्य का अवलोकन करते दिखाया गया है। सबसे नीचे वाले खण्ड में उपरोक्त खण्डों की तरह दायें से बायें शूकर की गतिमान आकृति का अंकन है। *द्वितीय खण्ड* में एक पैर पर स्थानक अर्जुन ऊपर हाथ उठाकर तपस्यारत हैं। इसी खण्ड पर किरात और अर्जुन की शर-सन्धान मुद्रा में धनुर्युद्ध करती आकृति के दायें पार्श्व में स्थानक किराती का अंकन हुआ है। स्थानक एवं चतुर्भुज शिव तथा द्विभुजा पार्वती के समक्ष अर्जुन को आयुध समर्पित करते दर्शाया गया है। इसी खण्ड पर पाँच अन्य स्थानक आकृतियों का भी अंकन हुआ है। *तृतीय खण्ड* में एक ही आसन पर विराजमान चतुर्भुज शिव के दायें पार्श्व में पार्वती का अंकन है। आसन के पार्श्व में जटाभार से युक्त एक गण आकृति द्रष्टव्य है। इस स्वरूप में शिव एक हाथ आसन पर टेक लगाये एवं अन्य हाथों से मृग, परशु एवं वरद-मुद्रा का प्रदर्शन करते अंकित हैं। इसी खण्ड में पाँच आकृतियाँ अंजलिबद्ध-मुद्रा में इस प्रकार खड़ी हैं, मानों शिवकृपा का दर्शन लाभ कर रही हों। *सबसे ऊपरी खण्ड* में कई देव, गण व ऋषि आकृतियों को विभिन्न मुद्राओं में दृश्यावलोकन करते दिखाया गया है।

अर्जुनानुग्रह स्वरूप का प्रथम वर्ग का एक और उदाहरण तंजौर के ही बृहदीश्वर मन्दिर के अन्तराल में उत्तरी सोपान भित्तिका पर आकारित है। इस फलकचित्र में अर्जुन की तपस्या के मुख्य प्रयोजन को जानने के पश्चात् उसकी (अर्जुन की) पात्रता की जाँच के लिये किरातरूपी शिव का आगमन और अर्जुन

से युद्ध का शिल्पांकन हुआ है। दोनों के मध्य में युद्ध के कारक के रूप में शूकररूपी मूक दानव की उपस्थिति विशेष रूप से ध्यातव्य है। इस स्वरूप के रूपांकन में बायीं ओर स्थानक अर्जुन की तपस्यारत आकृति निर्मित है। इसी पैनल के मध्य में छन्नवीर वेशधारी अर्जुन और किरात वेश में शिव को शर-सन्धान की मुद्रा में दिखाया गया है तथा मध्य में शूकराकृति का अंकन कर शिल्पी ने शूकर-वध एवं दोनों के मध्य धनुर्युद्ध का एकसाथ अंकन किया है। किरात के पार्श्व में एक नारी आकृति को दृश्यावलोकन करते दिखाया गया है। यह नारी आकृति सम्भवतः किराती के रूप में पार्वती हैं।

ऐरावतेश्वर मन्दिर, दारासुरम् (तमिलनाडु) से अर्जुनानुग्रह स्वरूप की दो मूर्तियाँ प्राप्त हुई हैं। दोनों ही उदाहरण (ल० १२वीं शती ई०) मन्दिर की बाह्य भित्ति रथिका पर क्रमशः मण्डप एवं अर्धमण्डप पर उत्कीर्ण हैं। इन उदाहरणों में प्रायः कथात्मक एवं शिल्पांकन के स्तर पर समानता दिखलायी पड़ती है। *प्रथम मूर्ति* एक रथिका के चार खण्डों में उत्कीर्ण है। तृतीय वर्ग की इस मूर्ति में सबसे नीचे अधोवस्त्रधारी, कृशकाय अर्जुन को जटाजुट से युक्त एवं एक पैर पर खड़े तपस्यारत दिखाया गया है, इस स्वरूप में अर्जुन का एक हाथ ऊपर तथा दूसरा नाभि पर स्थित है। अर्जुन के पार्श्व में किरात वेश में स्थानक एक नर एवं एक नारी आकृति को आयुध सहित दरशाया गया है, जो किरातरूपी शिव एवं किराती वेश में पार्वती का अंकन है। यहाँ किरात को श्रमश्रु (दाढ़ी) युक्त दिखाया गया है। इस उदाहरण के *द्वितीय खण्ड* में अर्जुन एवं किरात को शर-सन्धान की मुद्रा में दिखाया गया है तथा मध्य में आकारित लघु अस्पष्ट आकृति सम्भवतः शूकर की है। *तृतीय खण्ड* में शिव (किरात) से व्यथित पार्थ का शिव के समक्ष समर्पणं (आयुध सहित) का भाव व्यक्त हुआ है, जिसमें द्विभुज अर्जुन आगे बढ़कर दोनों हाथों में पकड़े आयुध को चतुर्भुज शिव को समर्पित करते दिखाये गये हैं। द्वितीय खण्ड की भाँति यहाँ किराती की अनुपस्थिति विशेष रूप से ध्यातव्य है। सबसे *अन्तिम खण्ड* में वाहन नन्दी पर आरूढ़ शिव-पार्वती क्रमशः चर्तुभुज एवं द्विभुज स्वरूप में एवं सम्मुख भाग में उपस्थित अर्जुन की स्थानक व अंजलिबद्ध आकृति के साथ रूपायित हैं। शिव और अर्जुन के मध्य एक गण आकृति का प्रदर्शन हुआ है। इस स्वरूप में शिव, अर्जुन को पाशुपत-बाण प्रदान करते प्रदर्शित हैं। *दूसरी मूर्ति* में क्रमशः दायें से बायें तीन कीर्तिमुखों में इस कथा का अंकन हुआ है। पहले कीर्तिमुख में उपरोक्त मूर्ति की भाँति तपस्यारत अर्जुन का अवलोकन करते किरात व किराती का अकंन है। द्वितीय कीर्तिमुख में अर्जुन एवं किरात का धनुर्युद्ध में शर-सन्धान की मुद्रा में रूपायन हुआ है। तृतीय एवं अन्तिम कीर्तिमुख में चतुर्भुज शिव-पार्वती एक ही आसन पर विराजमान हैं और

उनके समक्ष स्थानक एवं अंजलिबद्ध-मुद्रा में अर्जुन पाशुपत-अस्त्र ग्रहण करते रूपायित हैं। यहाँ गण एवं वाहन नन्दी अनुपस्थित हैं।

नागेश्वर मन्दिर, कुम्भकोणम् से अर्जुनानुग्रह स्वरूप (ल० १२वीं शती ई०) का कथात्मक अंकन मन्दिर के मण्डप के उत्तरी अधिष्ठान रथिका स्तम्भ के नीचे दो प्रकोष्ठों में हुआ है। तृतीय वर्ग की इस मूर्ति के *प्रथम प्रकोष्ठ* में कथा के उद्देश्य में निहित पाशुपत-अस्त्र के लिए अर्जुन की तपस्या, पाशुपत-अस्त्र प्रदान करने के लिए पात्रता की जाँच हेतु शिव का किरात वेश में अर्जुन से युद्ध का कथात्मक चित्रण हुआ है। इसमें किरात को किराती सहित अर्जुन से धनुर्युद्ध करते रूपायित किया गया है। अर्जुन जहाँ चलायमान स्थिति में हैं, वहीं किरात स्थिर भाव से शर संचालन कर रहे हैं। किरात के पैर के पास श्वान का अंकन उनके भिल्ल वेश में वन-मानव शिव के पूरे सन्दर्भ को व्याख्यायित करता है। जबकि अर्जुन के पैरों के पास शूकराकृति का निर्माण कर शिल्पी ने सम्पूर्ण कथा के सूत्रधार के रूप में मूक दानव का अंकन किया है। *दूसरे प्रकोष्ठ* में कथा के द्वितीय अंश में शिव का अर्जुन पर अनुग्रह का भाव व्यक्त हुआ है। इसमें शिव-पार्वती एक आसन पर सुखासन में विराजमान हैं। त्रिनेत्र एवं चतुर्भुज व जटामुकुट से सुशोभित शिव अभय-मुद्रा, पार्वती स्कन्ध पर हाथ रखे एवं मृग सहित पाशुपत-अस्त्र प्रदान करते निरूपित हैं। शिवासन के नीचे दो गण आकृतियाँ विभिन्न वाद्य-यन्त्रों से इस उल्लासमय एवं आनन्द से परिपूर्ण वातावरण को और अधिक आनन्दित करती हुई संगीत प्रस्तुत करती रूपायित हैं। वाद्य-यंत्रों के साथ गणों का अंकन ऐसे स्वरूप में अन्यत्र सर्वथा दुर्लभ है। शिव के समक्ष विभिन्न आभूषणों, मुकुट आदि से अलंकृत अर्जुन स्थानक एवं अंजलिबद्ध-मुद्रा में शिव से पाशुपत-अस्त्र ग्रहण करते निरूपित हैं।

होयसल काल में अर्जुनानुग्रह स्वरूप का सर्वाधिक कथात्मक अंकन हुआ है। कर्नाटक में स्थित विभिन्न होयसल कालीन पुरास्थलों यथा—हुलेश्वर मन्दिर, डोण्डालूर; होयसलेश्वर मन्दिर, हलेबीड; सिद्धेश्वर मन्दिर, मार्ले; अमृतेश्वर मन्दिर, अमृतापुर; केदारेश्वर मन्दिर, हलेबीड; मल्लिकार्जुन मन्दिर, बासरलू; लक्ष्मीनारायण मन्दिर, होयसालू; लक्ष्मणेश्वर मन्दिर, मल्लराजपट्टन; लक्ष्मीनरसिंह मन्दिर, जगावल एवं सोमनाथपुर स्थित केशव मन्दिर (ल० ११वीं शती ई० से लेकर १३वीं शती ई० के मध्य) से कई उदाहरण प्राप्त हुए हैं जो लगभग एक ही प्रकार के कथात्मक अंकन में आकारित हैं। होयसल कालीन मूर्तियों की विशेषताओं में अत्यधिक अलंकरण, चेहरे की भावशून्यता, ठिगना कद[२६] भारी शरीर आदि तत्त्वों का समावेश हुआ है, जिसका प्रभाव अर्जुनानुग्रह के कथात्मक अंकन में भी दिखता है। कथात्मक अंकन के स्तर पर उपरोक्त स्थलों से प्राप्त उदाहरणों में प्रायः प्रचलित लोक-कथा का प्रभाव अधिक है।

हुलेश्वर मन्दिर के जंघा की दक्षिणी बाह्य भित्ति पर अर्जुनानुग्रह का कथात्मक शिल्पांकन (ल० ११वीं शती ई०) हुआ है। वर्तमान में यह उदाहरण काफी घिस गया है। इस स्वरूप का अंकन तीन खण्डों वाले फलक पर हुआ है। *प्रथम खण्ड* पर दायें से बायें एक वृक्ष के नीचे जटाजूट, अधोवस्त्र (लंगोटी) पहने अर्जुन एक पैर पर तपस्यारत हैं, आगे शर-सन्धान मुद्रा में अर्जुन और किरात के मध्य जंगली शूकर का अंकन है। *द्वितीय खण्ड* में धनुर्युद्ध में संलग्न किरात व अर्जुन का रूपायन हुआ है। किरात के पार्श्व में किराती को युद्ध-दृश्य का अवलोकन करते दिखाया गया है। सबसे *अन्तिम खण्ड* में शिव-पार्वती वाहन नन्दी पर आसीन हैं और सम्मुख ही अर्जुन की स्थानक आकृति द्रष्टव्य है। इसमें नन्दी और अर्जुन का अंकन अतिविशिष्ट प्रकार से हुआ है। सम्पूर्ण परिदृश्य की तुलना में शिव-पार्वती की लघु आकृति रूपायित है। नन्दी की विशाल एवं भव्य आकृति में गतिशीलता एवं लयात्मकता कलाकार के शिल्प उकेरण की प्रवीणता को दर्शाता है। नन्दी के पीछे एक लघु गणाकृति लम्बे दण्ड से युक्त छत्र से शिव-पार्वती को आच्छादित कर रही है, जो उनके अलौकिक स्वरूप को व्यक्त करता है। नन्दी के सम्मुख भाग में एक पीठिका पर स्थानक एवं अंजलिबद्ध-मुद्रा में अर्जुन को मुकुट एवं अधोवस्त्र से युक्त तथा प्रसन्नवदन स्वरूप में पाशुपत-अस्त्र ग्रहण करते दिखाया गया है।[२७]

होयसलेश्वर मन्दिर से अर्जुनानुग्रह स्वरूप के कथात्मक (ल० १२वीं शती ई०) अंकन के दो उदाहरण मिले हैं, जिनमें *प्रथम उदाहरण* मन्दिर के दक्षिण द्वार के सम्मुख दक्षिणी भित्ति पर एक फलक पर उत्कीर्ण है। इसके प्रथम भाग में अर्जुन का वन्य-प्रदेश में आगमन और ऋषियों से मिलने का दृश्य अंकित है, जबकि द्वितीय भाग में अर्जुन मुकुट एवं अन्य अलंकरण से युक्त एक पैर पर स्थानक तपस्यारत हैं। साथ ही अन्य ऋषियों की आकृतियों को अर्जुन की भाँति किन्तु आसीन अवस्था में तपस्यारत दिखाया गया है। अन्तिम भाग में अपनी ओर आते वन्य-शूकर पर बाण से प्रहार करते अर्जुन को शर-सन्धान की मुद्रा में दिखाया गया है। अर्जुन के सम्मुख किरात वेशधारी शिव किरातीसहित अर्जुन की तरह शर-सन्धान मुद्रा में शूकर पर प्रहार करते और मध्य में विशाल आकृति वाले शूकर का अंकन विशेष रूप से द्रष्टव्य है। इस फलक पर शिल्पी का नाम 'बलना' अंकित है।[२८]

दूसरा उदाहरण मन्दिर की मुख्य पश्चिमी भित्ति पर कई खण्डों में उत्कीर्ण है। कथा के प्रत्येक खण्ड को वृक्ष के अंकन के माध्यम से अलग-अलग दिखाया गया है। *प्रथम खण्ड* में अर्जुन को अपनी माँ कुन्ती, भाइयों एवं द्रौपदी से आज्ञा लेकर वन में प्रस्थान करते तथा जंगल के दृश्य में ऋषि व अन्य आकृतियों के

साथ अर्जुन का अंकन हुआ है। इसी क्रम में सभी अलंकरणों से सुसज्जित अर्जुन स्थानक एवं एक पैर पर तपस्यारत हैं। इस स्वरूप में अर्जुन अंजलिबद्ध हैं तथा उनका गांडीव (धनुष) एक वृक्ष से टेक लगाये रखा दिखाया गया है। कथा के आगे के क्रम में कई अप्सरा आकृतियों को नृत्य एवं संगीत प्रस्तुत करते दिखाया गया है जो इन्द्र द्वारा अर्जुन की तपस्या से च्युत करने के प्रयास का मूर्त निरूपण है। अगले अंक में बहुत सी आकृतियों से आवृत्त अर्जुन एवं किरात को शर-सन्धान की मुद्रा में युद्धरत तथा मध्य में वन्य-शूकर आकृति का अंकन है। इस क्रम में शूकर-वध के समय मूक दानव की शूकराकृति से मनुष्य रूप में आने और मरणासन्न स्थिति की विभिन्न अवस्थाओं में भूमि पर गिरते हुए दिखाया गया है। अर्जुन एवं किरात के टकराये बाणों पर कई अंजलिबद्ध एवं स्थानक आकृतियों का अंकन सम्भवतः दृश्य का अवलोकन करती आकृति अथवा बाणों का मानवीय रूप में प्रदर्शन है। किरात के पार्श्व में लम्बा दण्ड एवं सिर पर टोकरी लिए किराती का अंकन युद्ध का निरीक्षण करते हुए हुआ है। अगले अंक में मल्ल-युद्ध में अर्जुन द्वारा किरात को गिराये जाने एवं किराती द्वारा अर्जुन के पृष्ठ भाग पर अंकित मांगलिक चिह्न देख लेने के पश्चात् अपना दायाँ हाथ उठाकर किरातरूपी शिव को संकेत करने का अंकन विशेषतः उल्लेखनीय है। इसी क्रम में किरातरूपी शिव अर्जुन के समक्ष अपना वास्तविक स्वरूप प्रकट करते रूपायित हैं। चतुर्भुज शिव के ऊपरी के करों में त्रिशूल व डमरू एवं अन्य दो हाथों द्वारा ऊपर से आ रहे अर्जुन को नियन्त्रित करने का प्रयास प्रदर्शित है। अन्तिम अंक में शिव-पार्वती सुखासन में एक आसन पर विराजमान हैं, जिसमें चतुर्भुज शिव सभी अलंकरणों से विभूषित एवं उनके करों में पाशुपत-अस्त्र, त्रिशूल तथा एक हाथ पार्वती स्कन्ध पर आकारित है। शिव के दायीं ओर स्थानक एवं अजंलिबद्ध-मुद्रा में अर्जुन शिव-कृपा से अभिभूत तथा अनुग्रह स्वरूप पाशुपत-अस्त्र प्राप्त करते निरूपित हैं। इस फलक पर शिल्पी का नाम 'केतना' अंकित है।[२९]

केदारेश्वर मन्दिर के उत्तर-पूर्व की बाह्य भित्ति पर अर्जुनानुग्रह (ल० १२वीं शती ई०) का कथात्मक स्वरूप उत्कीर्ण है। इसका अंकन होयसलेश्वर मन्दिर के उदाहरण से समानता रखता है। तीसरे वर्ग के इस मूर्ति स्वरूप में एक पैर पर खड़े अर्जुन की तपस्या और इन्द्र से प्रेरित अप्सराओं द्वारा नृत्य-संगीत की प्रस्तुति से अर्जुन को तपस्या से डिगाने, वन्य-शूकर के वध से उठे विवाद के फलस्वरूप अर्जुन-किरात का मल्ल एवं धनुर्युद्ध का अंकन है। अर्जुन एवं किरात के मल्ल-युद्ध के क्रम में किरातरूपी शिव द्वारा अपने आपको नीचे गिरा लेने एवं किरातीस्वरूपा पार्वती का अर्जुन के पीछे खड़े होकर उनकी पीठ पर अंकित मांगलिक चिह्न देख लेने के पश्चात् अपना एक हाथ उठाकर संकेत करने

का भावपूर्ण दृश्यांकन है। इसी क्रम में नीचे गिरे किरात को अर्जुन के समक्ष अपना वास्तविक शिव स्वरूप प्रकट करते दिखाया गया है। वास्तविकता का ज्ञान होने पर अर्जुन शिव-स्तुति करते हुए निरूपित हैं। इस स्वरूप में स्थानक एवं अंजलिबद्ध अर्जुन के साथ ही शिव को भी स्थानक स्वरूप में अंकित किया गया है। अन्तिम खण्ड में शिव द्वारा अर्जुन को पाशुपत-अस्त्र देकर उनके ऊपर अनुग्रह करने का भाव द्रष्टव्य है। चतुर्भुज शिव पाशुपत-बाण, त्रिशूल, डमरू एवं वरद-मुद्रा से युक्त हैं जबकि द्विभुजा पार्वती का भी एक हाथ वरद-मुद्रा में है। दोनों मुख्याकृतियों को एक साथ वरद-मुद्रा में दिखलाकर शिल्पी ने संयुक्त रूप से शिव-पार्वती द्वारा अर्जुन पर अनुग्रह करने के भाव के साथ दिखलाया है।

सिद्धेश्वर मन्दिर के स्तम्भ-मण्डप के उत्तरी तोरण पर *महाभारत* एवं पुराणों में वर्णित कथाओं के मध्य अर्जुनानुग्रह स्वरूप (ल० १२वीं शती ई०) का कथात्मक अंकन हुआ है। इस फलक पर क्रमशः पूर्व से पश्चिम की ओर चार खण्डों में अर्जुनानुग्रह स्वरूप का रूपायन हुआ है। फलक के *प्रथम खण्ड* में एक पैर पर स्थानक अर्जुन को तपस्यारत दिखाया गया है। अर्जुन के दायें पार्श्व में ऊर्ध्व बाहु से युक्त एक ऋषि एवं बायें पार्श्व में एक अनुचर आकृति अंजलिबद्ध-मुद्रा में रूपायित है, साथ ही अर्जुन के ऊपर उठे हाथों में कपिध्वज का अंकन विशेष रूप से द्रष्टव्य है। इस खण्ड के ऊपर उड़ती गन्धर्व आकृतियों का भी अंकन है। *द्वितीय खण्ड* में अर्जुन शर-सन्धान की मुद्रा में अंकित हैं। बायीं ओर किरात को किराती सहित शर-सन्धान मुद्रा में दिखाया गया है। अर्जुन एवं किरात के मध्य वन्य-शूकर की आकृति को जो दोनों के बाणों से बिंधा तथा आगे के दो पैरों पर अपना शारीरिक सन्तुलन स्थापित करने के प्रयास के साथ निरूपित है। शिल्पी ने शूकर को बाणों की मार से मर्माहत एवं अत्याधिक पीड़ा को प्रदर्शित करने के भाव के अनुरूप सुन्दर निरूपण किया है। घायल शूकर के मरणासन्न अवस्था से अपने वास्तविक स्वरूप मूक दानव के रूप में प्रकट होने का प्रदर्शन यहाँ अन्य स्थानों से प्राप्त उदाहरणों से अलग है। *चतुर्थ खण्ड* में आसीन शिव के मुड़े पैरों पर पार्वती का सुखासन में अंकन है। चतुर्भुज शिव अक्ष-माला, त्रिशूल, डमरू एवं पार्वती स्कन्ध पर हाथ रखे किरीट मुकुट से सुशोभित हैं। शिव के दायीं ओर चामरधारिणी परिचारिका और बायीं ओर भृङ्गी ऋषि का अंकन है। अर्जुन पाशुपत-अस्त्र ग्रहण करने की मुद्रा में निरूपित हैं, जबकि स्थानक अर्जुन की ओर भृङ्गी को संकेत करते दिखाया गया है।[३०]

अमृतेश्वर मन्दिर के स्तम्भ-मण्डप के प्रवेशद्वार की पूर्वी भित्ति के एक फलक पर (ल० १३वीं शती ई०) अर्जुनानुग्रह स्वरूप का कथात्मक (चित्र ३८) अंकन मिलता है। तृतीय वर्ग के इस उदाहरण में भी अन्य स्थानों से प्राप्त

उदाहरणों की भाँति कथा का अंकन दायें से बायें चार खण्डों में हुआ है। कथा का प्रत्येक अंक दूसरे अंक से दो-दो स्तम्भाकृतियों के माध्यम से विभक्त है। *प्रथम खण्ड* (अस्पष्ट) पर सम्भवतः अर्जुन की तपस्या से सम्बन्धित अंकन रहा होगा, क्योंकि *द्वितीय खण्ड* में शर-सन्धान की मुद्रा में युद्धरत अर्जुन और किरात का अंकन है। इसी खण्ड में वन-प्रदेश के लिए दो वृक्षों के पृष्ठभूमि में अर्जुन और किरात के मध्य शूकर के रूप में मूक दानव का अंकन है। किरात के पार्श्व में परम्परानुसार किराती की स्थानक आकृति युद्धावलोकन करती निरूपित है। *तृतीय खण्ड* में अर्जुन एवं किरात का मल्ल-युद्ध का अंकन हैं, जिसमें नीचे गिरे किरात के ऊपर अर्जुन को आरूढ़ दिखाया गया है। इसी क्रम में अर्जुन के पीछे लोक-परम्परा के अनुरूप किराती का भी अंकन है। *चतुर्थ खण्ड* में चतुर्भुज शिव विभिन्न पारम्परिक आयुध एवं जटामुकुट आदि से युक्त हैं। शिव अनुग्रहपूर्वक दायें पार्श्व में स्थित अंजलिबद्ध एवं स्थानक अर्जुन को पाशुपत-अस्त्र प्रदान करते निरूपित हैं। इस फलक पर उत्कीर्ण अर्जुनानुग्रह स्वरूप का कथात्मक अंकन आलमपुर से प्राप्त एवं वर्तमान में आलमपुर संग्रहालय में सुरक्षित अर्जुनानुग्रह के कथात्मक अंकन वाले फलक-चित्रण से काफी साम्य रखता है।

मल्लिकार्जुन मन्दिर के स्तम्भ-मण्डप की उत्तरी-पश्चिमी भित्ति पर पाँच खण्डों में उत्कीर्ण (ल० १३वीं शती ई०) अर्जुनानुग्रह स्वरूप का कथात्मक अंकन क्रमशः दायें से बायें हुआ है। अन्य उदाहरणों की भाँति *प्रथम खण्ड* में अर्जुन को एक पैर पर खड़े परन्तु अंजलिबद्ध-मुद्रा में तपस्यारत तथा पार्श्व के वृक्ष पर टँगे धनुष-बाण सहित दिखाया गया है। किरीट-मुकुट एवं अन्य आभूषणों से युक्त अर्जुन के पार्श्व में तीन स्थानक व चार आसीन आकृतियाँ अर्जुन की ओर मुख किए अंजलिबद्ध-मुद्रा में मानों अर्जुन की भाँति तपस्या में संलग्न हैं। *द्वितीय खण्ड* में पूर्व परम्परा के अनुरूप शर-संचालन में संलग्न अर्जुन एवं किरात के मध्य विशाल शूकराकृति का निरूपण हुआ है। किरात के पार्श्व में दण्डयुक्त किराती का गतिशील स्वरूप में अंकन उनकी उद्विग्नता को प्रकट करता है, जबकि किराती के पार्श्व की चार गणाकृतियों को भिल्ल वेश में स्थानक एवं हस्तबन्ध-मुद्रा में स्थिर दिखाया गया है। *तृतीय खण्ड* में अर्जुन एवं किरात मल्ल-युद्ध में संलग्न हैं। अन्य उदाहरणों की भाँति चतुर्भुज शिव को नीचे गिरे तथा उन पर लगभग आरूढ़ हुए अर्जुन निरूपित हैं। यहाँ किराती की अनुपस्थिति विशेषतः ध्यातव्य है। इस क्रम में शिव का ऊपर उठा हुआ हाथ सम्भवतः अर्जुन से युद्ध समाप्त करने के संकेत के रूप में व्यक्त हुआ है। *अन्तिम खण्ड* में चतुर्भुज शिव और उनके बायीं ओर स्थित द्विभुजा पार्वती को

अलग-अलग पीठिकासन पर विराजमान दिखाया गया है। पार्वती के बायें पार्श्व में दो गणाकृतियों का भी अंकन है। शिव के दायें पार्श्व में द्विभुज अर्जुन को कुछ आगे बढ़कर शिव से पाशुपत-अस्त्र प्राप्त करते निरूपित किया गया है। इस स्वरूप में शिव अर्द्धपर्यंकासन में किरीट-मुकुट एवं अन्य आभूषणों से शोभित वरद, त्रिशूल, डमरू एवं अभय-मुद्रा सहित अर्जुन पर अनुग्रह करते रूपायित हैं।

लक्ष्मीनारायण मन्दिर की उत्तरी बाह्य भित्ति जंघा पर उत्कीर्ण तृतीय वर्ग के उदाहरण (ल० १३वीं शती ई०) का रूपायन उपरोक्त कथात्मक अंकन की तरह ही है, परन्तु इसके अंकन में अलंकरणों की बोझिलता स्पष्ट रूप से देखी जा सकती है। कई खण्डों में अंकित यह फलक-चित्र पूर्व परम्परा से अलग बायीं से दायीं ओर प्रदर्शित है। *प्रथम खण्ड* में अर्जुन को दायें पैर पर खड़े एवं हस्तबन्ध-मुद्रा में तपस्यारत तथा पार्श्व के वृक्ष के नीचे धनुष एवं बाणों से भरे तूणीर सहित प्रदर्शित किया गया है। *द्वितीय खण्ड* में शर-सन्धान मुद्रा में किरात और अर्जुन के मध्य खुले हुए मुँह वाले शूकराकृति का अंकन उसके अत्यधिक पीड़ा के भाव को व्यक्त करता है। शूकराकृति के नीचे मानव देहधारी असुर की आकृति मृत्यु के समय मूक दानव के वास्तविक स्वरूप में प्रकट होने का मूर्त रूपान्तरण है। शूकराकृति के पीछे की तीन मानवाकृतियों को करों में छूरिका सहित निरूपित किया गया है, सम्भवतः ये तीनों मूक दानव की सहायक आकृतियाँ हैं। किरात के पार्श्व में सर पर छोटी टोकरी लिए किराती का अंकन युद्ध का अवलोकन न करके दूसरी तरफ मुँह किए हुए किन्तु सुन्दर रूप में हुआ है। कथा के अगले क्रम में किरात एवं अर्जुन के मल्ल-युद्ध का अंकन है। चतुर्भुज शिव के दो करों में त्रिशूल व खट्वांग है तथा अन्य दो हाथ मल्ल-युद्ध में संलग्न हैं। इसी खण्ड में अर्जुन को किरात के वास्तविक स्वरूप का ज्ञान होने के पश्चात् समर्पण करने के दृश्य का सुन्दर अंकन हुआ है। इस स्वरूप में पेट के बल लेटे अर्जुन की अंजलिबद्ध आकृति एक वृक्ष के समक्ष दिखायी गयी है। सम्भवतः यहाँ कलाकार ने वृक्ष के रूप में शिव का प्रतीकात्मक अंकन किया है। यहाँ अर्जुन के पृष्ठ भाग की ओर पार्वती का अंकन अपने हाथ को ऊपर उठाये प्रदर्शित किया गया है। इस फलक पर कथा के अन्तिम भाग का अंकन नहीं हुआ है। सम्पूर्ण कथा-संयोजन के उत्कीर्णन में अपने अत्याधिक अलंकरण एवं अन्य तत्त्वों की बोझिलता से आकृतियों की सहज स्वाभाविकता प्रायः समाप्त-सी हो गयी है।

लक्ष्मीनरसिंह मन्दिर के उत्तरी अधिष्ठान के कुमुदपट्ट पर अर्जुनानुग्रह स्वरूप का उत्कीर्णन पुराणों एवं महाकाव्यों के कथाओं के मध्य चार खण्डों में (ल० १३वीं शती ई०) मिलता है। द्वितीय वर्ग का यह उदाहरण वर्तमान में काफी क्षतिग्रस्त है। प्रस्तुत उदाहरण होयसलेश्वर एवं केदारेश्वर मन्दिर के

अर्जुनानुग्रह स्वरूप के कथात्मक अंकन के स्तर पर काफी साम्यता रखता है परन्तु उपरोक्त उदाहरणों से कुछ भिन्नता भी परिलक्षित होती है। अन्य उदाहरणों की भाँति तपस्यारत अर्जुन एक पैर पर खड़े हैं उनके धनुष-बाण बायीं ओर एक वृक्ष के नीचे रखे हुए हैं। तपस्वी अर्जुन और वृक्ष के मध्य स्तम्भाकृति के ऊपर कपिमुख का अंकन सम्भवतः 'कपिध्वज' के रूप में हुआ है। कथा के अगले क्रम में अप्सराओं द्वारा नृत्य-संगीत की प्रस्तुति, किरात और अर्जुन के धनुर्युद्ध में किराती एवं वन्य-शूकर की उपस्थिति, अर्जुन व किरात के मध्य मल्ल-युद्ध में वास्तविक रूप में प्रकट होते चतुर्भुज शिव का अंकन पूर्व परम्परा में हुआ है। अर्जुन के पीछे किरातीस्वरूपा पार्वती का दायाँ हाथ उठाकर संकेत करने का रूपायन लोक-कथा के अनुरूप है। इसके अतिरिक्त किरात के रूप में स्वयं शिव के होने का ज्ञान होने पर अर्जुन को केदारेश्वर मन्दिर के उदाहरण की भाँति शिव के समक्ष समर्पण करते और अन्ततः शिव एकल, स्थानक एवं चतुर्भुज स्वरूप में अर्जुन (अंजलिबद्ध एवं स्थानक) को अनुग्रह स्वरूप पाशुपत-अस्त्र प्रदान करते आकारित हैं।

लक्ष्मनेश्वर मन्दिर (ल० १३वीं शती ई०) की बाह्य भित्ति पर उत्कीर्ण फलक में अर्जुनानुग्रह स्वरूप का कथात्मक अंकन उपरोक्त उदाहरणों की परम्परा में हुआ है। इस फलक के दायें और बायें ओर के कीर्तिमुख में अर्जुनानुग्रह स्वरूप का रूपायन दो खण्डों में हुआ है। इन दो प्रकोष्ठों में अर्जुन की तपस्या और शूकर-वध के दृश्य द्रष्टव्य हैं। प्रथम प्रकोष्ठ में एक पैर पर तपस्यारत अर्जुन अंजलिबद्ध-मुद्रा में निरूपित हैं। अर्जुन के पैर के पास एक शूकर आकृति द्रष्टव्य है। दायीं ओर के प्रकोष्ठ में धनुष की प्रत्यञ्चा चढ़ाये किरात को प्रत्यालीढ़-मुद्रा में दिखाया गया है। अर्जुनानुग्रह मूर्ति से सम्बन्धित इस फलक पर कथा के अन्य दृश्यों का उत्कीर्णन नहीं हुआ है।

केशव मन्दिर के उत्तरी अधिष्ठान की भित्ति पर अर्जुनानुग्रह स्वरूप का कथात्मक अंकन (ल० १३वीं शती ई०) हुआ है। तृतीय वर्ग के इस मूर्ति फलक में सांकेतिक रूप से कथा का अंकन पूर्व परम्परा की भाँति बायें से दायें प्रदर्शित है। दो वृक्षों के मध्य तथा अन्य वानस्पतिक अंकनों के साथ ही वन्य-प्रदेश की पृष्ठभूमि में इन्द्रकील पर्वत पर शूकर को किरात वेशधारी शिव एवं एक अन्य सहायक आकृति द्वारा खदेड़ कर लाये जाते दिखाया गया है। दो वन्य प्राणियों एवं मृगों का कुलाचें भरकर भागते हुए अंकन मानों शूकर-वध में किरात द्वारा उत्पन्न आतंक का परिणाम हो। सम्मुख भाग में तूणीर में भरे बाणों और धनुष से युक्त अर्जुन का अंकन सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण ढंग से हुआ है। अर्जुन के दायें हाथ में बाण एवं बायें में धनुष जिसकी लम्बाई लगभग अर्जुन के बराबर है। कथा के

अगले क्रम में वृक्ष के दायीं ओर किरात स्वरूप में शिव नायक अर्जुन को धनुष प्रदान करते निरूपित हैं जो कथा के अन्तिम अंश में शिव द्वारा अर्जुन पर अनुग्रह करने के भाव का अंकन है। इस मूर्ति फलक में अन्य कथात्मक उदाहरण से अलग शिव द्वारा अर्जुन को बाण के स्थान पर धनुष प्रदान करने का अंकन इसकी विशिष्टता है।

अर्जुनानुग्रह स्वरूप के अध्ययन के फलस्वरूप कुछ तथ्य उभर कर सामने आयें हैं जिनसे इस स्वरूप के निर्माण की कथात्मक पृष्ठभूमि और उनमें अंकन के स्तर पर भेद तथा क्षेत्रीय दृष्टि से विकास की जानकारी प्राप्त होती है। अर्जुनानुग्रह स्वरूप भी रावणानुग्रह स्वरूप के बाद भारतीय साहित्य एवं कला में प्राम्भिकतम एवं सर्वाधिक प्रचलित अनुग्रह स्वरूप रहा है। इस स्वरूप का प्रारम्भिक उदाहरण गुप्तकाल (राजौना, बिहार) का है। अन्य प्रारम्भिक मूर्तियाँ (छठी से आठवीं शती ई०) भुवनेश्वर (शिशिरेश्वर एवं स्वर्णजालेश्वर मन्दिर), नागरी (राजस्थान), महाबलीपुरम्, कांचीपुरम् एवं एलोरा (कैलाश मन्दिर) से प्राप्त हैं। प्रायः सभी उदाहरणों में इस स्वरूप का निरूपण कथात्मक शैली में हुआ है। प्रारम्भिक उदाहरण प्रायः भारत के उत्तरी एवं दक्षिणी दोनों भागों से प्राप्त होते हैं परन्तु परवर्ती काल में इस स्वरूप का अंकन मुख्यतः दक्षिण भारत से ही मिलता है।

अर्जुनानुग्रह स्वरूप का शिल्प में अंकन प्रायः तीन रूपों में हुआ है। प्रथम वर्ग में स्वतन्त्र प्रतिमा के रूप में किरातवेशधारी शिव और अर्जुन को शर-सन्धान की मुद्रा में युद्धरत (कैलाशनाथ मन्दिर, कांचीपुरम्) अथवा वास्तविक स्वरूप में शिव अर्जुन को पाशुपतास्त्र प्रदान (पुलमंगलई एवं बृहदीश्वर मन्दिर, तंजौर) करते दिखाये गये हैं। दूसरे वर्ग में *महाभारत* कथा प्रसंग के अन्तर्गत (चित्र २७, २८) किरात एवं अर्जुन का युद्ध और तदुपरान्त शिव के अनुग्रह दृश्य का अंकन (कैलाश मन्दिर, एलोरा; शिशिरेश्वर मन्दिर, भुवनेश्वर एवं पट्टडकल) मिलता है। तीसरे वर्ग की अधिकतर मूर्तियाँ कथात्मक शैली (चित्र २९ से ३७) में हैं, जिनके उदाहरण भुवनेश्वर (स्वर्णजालेश्वर मन्दिर) के अतिरिक्त चालुक्य, चोल एवं होयसल कालीन पुरास्थलों (तंजौर, कुम्भकोणम्, दारासुरम्, पट्टडकल, हलेबीड, बेलूर) से प्राप्त होते हैं। इनमें कथा के अंकन के स्तर पर काफी भिन्नताएँ दिखलायी पड़ती हैं जैसे चोल कालीन कला-केन्द्रों के अर्जुनानुग्रह स्वरूप में *किरातार्जुनीयम्* (भारवि कृत) का प्रभाव स्पष्ट है। होयसल कालीन पुरास्थलों के फलकों के कथात्मक दृश्यांकन में अर्जुनानुग्रह स्वरूप के निरूपण में कर्नाटक में प्रचलित लोक-कथा और *किरातार्जुनीयम्* का मिश्रित रूप द्रष्टव्य है। इनमें अर्जुनानुग्रह

स्वरूप के प्रायः सभी उदाहरणों में पार्वती का यह लौकिक प्रसंग (जिनमें वे अर्जुन के पीठ पर बने मांगलिक चिह्न को देखने के लिए शिव को अर्जुन से युद्ध हेतु प्रेरित करती हैं) भारतीय मूर्तिकला में स्थानीय लोक-कला एवं सामाजिक लोकजीवन के प्रसंगों के प्रभाव की दृष्टि से भी महत्त्वपूर्ण है।

तीसरे वर्ग की मूर्तियाँ संख्या में सर्वाधिक हैं, जिन्हें मन्दिरों के नरथर, अधिष्ठान एवं स्तम्भों पर उत्कीर्ण किया गया है। ऐसे उदाहरण गुप्त काल से होयसल काल और उसके परवर्ती काल में भी मिलते हैं। राजौना (गुप्त काल) के उदाहरण में अर्जुन को पञ्चाग्नि तप करते एवं समीप ही मकरवाहिनी गंगा को दिखलाया गया है जो कथा का प्रासंगिक सन्दर्भ बनाता है और भुवनेश्वर के प्रारम्भिक मन्दिरों पर इस स्वरूप के कथात्मक अंकन में अर्जुन तथा किरात को एक शूकर को पकड़े तथा कथा के क्रम में आगे अर्जुन को शिवलिङ्ग के समक्ष अंजलिबद्ध-मुद्रा में आमूर्तित किया गया है। इसी प्रकार चालुक्य, चोल एवं होयसल कालीन पुरास्थलों की मूर्तियों में अर्जुन और किरात के युद्ध-प्रसंग में श्वान का अंकन भी प्रासंगिक है, क्योंकि आखेट दृश्यों में श्वान के अंकन की नियमित परम्परा मिलती है। साथ ही किरातरूपी शिव का भिल्ल वेश और उसकी प्रामाणिकता को श्वान की उपस्थिति और पुष्ट कर देती है। इसी प्रकार शूकर देहधारी असुर के आहत होने के बाद उसे मानवरूप में प्रकट होते प्रदर्शित किया गया है। होयसल कालीन पुरास्थलों के उदाहरणों में कभी-कभी अर्जुन की तपस्या में विघ्न उपस्थित करने की इच्छा से इन्द्र द्वारा भेजी अप्सराओं के नृत्य एवं संगीत को भी दर्शाया गया है, जो आन्ध्र, कर्नाटक में प्रचलित लोक-कथा के आंचलिक प्रभाव का प्रमाण है।

अर्जुनानुग्रह स्वरूप में उपरोक्त अंकन के अतिरिक्त लोक-कथानक (चित्र ३७) के अनुसार पार्वती की इच्छा से शिव का अर्जुन से युद्ध और युद्ध के क्रम में पार्वती द्वारा अर्जुन के पृष्ठभाग पर अंकित मांगलिक चिह्न देख लिए जाने के पश्चात् पार्वती का एक हाथ उठाकर शिव से युद्ध समाप्त करने का सांकेतिक अंकन प्रायः होयसल कालीन एवं कर्नाटक-आन्ध्र की सीमान्त क्षेत्रों के उदाहरणों में द्रष्टव्य है। कथांकन के अन्तिम खण्ड में लगभग सभी उदाहरणों में शिव पार्वतीसहित अर्जुन को पाशुपत-अस्त्र प्रदान करते दिखाये गये हैं। ऐसे स्वरूप में अधिकतर शिव-पार्वती आसीन हैं और सम्मुख अर्जुन की कृतांजलि आकृति शिव की कृपा से अभिभूत होती दिखायी गयी है। शिव-वाहन नन्दी का अंकन केवल कुछ स्थलों (पट्टडकल, दारासुरम्, कडूर और डोण्डालूर) पर ही हुआ है। सामान्य रूप से त्रिनेत्र शिव परशु, मृग, सर्प और वरद से युक्त हैं तथा छन्नवीर वेशधारी अर्जुन को शिव पाशुपत-अस्त्र प्रदान करते निरूपित हैं।

अर्जुनानुग्रह स्वरूप के प्रायः सभी उदाहरणों में पार्वती का यह लौकिक प्रसंग (जिनमें वे अर्जुन की पीठ पर बने मांगलिक चिह्न के देखने के लिए शिव को अर्जुन से युद्ध हेतु प्रेरित करती हैं) भारतीय मूर्तिकला में स्थानीय लोक-कला एवं सामाजिक लोकजीवन के प्रसंगों के प्रभाव की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण है, जो सहज रूप से शिव-पार्वती जैसी दैवीय शक्तियों को जनसामान्य की भावनाओं के साथ जोड़ता है। इस दृष्टि से अर्जुनानुग्रह स्वरूप अपनी पूरी लौकिक प्रासंगिकता के कारण शिव का एक महत्त्वपूर्ण स्वरूप है और यही इस स्वरूप की विशेषता है।

पाद-टिप्पणी

१. *महाभारत,* द्वितीय खण्ड (वनपर्व और विराटपर्व), रामनारायण दत्त शास्त्री (अनु०), १९८९, पृ० १००८-१०६७
२. *किरातार्जुनीयम्* महाकाव्य, रामप्रताप त्रिपाठी शास्त्री (अनु०), इलाहाबाद, १९५८, पृ० २६६-४२५
३. *शिवपुराण,* कल्याणङ्क, रुद्रसंहिता, पंचम खण्ड, गोरखपुर, १९६२, वर्ष ३६, पृ० ३२८-३३५
४. ए० गुरुमूर्ति, *स्कल्प्चर एण्ड आइकोनोग्राफी,* मद्रास, १९५०, पृ० ४१
५. डी०एन० शुक्ला, *भारतीय वस्तुशास्त्र व प्रतिमाविज्ञान,* लखनऊ, १९५६, पृ० १५२
६. *ए०हि०आ०,* खं० दो, भाग एक, पृ० २१६
७. *वही,* ख० दो, भाग दो, पृ० ६०
८. सी०पी० सिन्हा, *अर्ली स्कल्प्चर ऑफ बिहार,* पटना, १९८०
९. एन०पी० जोशी, *प्राचीन भारतीय मूर्तिविज्ञान,* पटना, १९७७, पृ० ४४
१०. *कि०इ०आ०,* पृ० ६६-६७
११. *म०भा०प्र०,* पृ० ४३
१२. टी०एन० रामचन्द्रन, "किरातार्जुनीयम् इन इण्डियन आर्ट", *जर्नल ऑफ दि इण्डियन सोसाइटी ऑफ ओरियण्टल आर्ट,* खं० ८, १९५०, पृ० २२-२६
१३. *म०भा०मू०,* पृ० २३-२४
१४. *ओ०अ०मे०सा०इ०,* पृ० २३८
१५. रमानाथ मिश्र, *भारतीय मूर्तिकला,* नई दिल्ली, १९७८, पृ० १९५
१६. ए०के० कुमारस्वामी, *इन्ट्रोडक्शन टू इण्डियन आर्ट,* दिल्ली, १९६९, पृ० ५३
१७. एम०एस० नागराज राव, "ए किरातार्जुनीयम् रिलीफ स्कल्प्चर", *प्रो०पी०बी० देसाई फेलिसिटेशन वॉल्यूम (स्टडीज इन इण्डियन हिस्ट्री ऐण्ड कल्चर),* श्री निवास रित्ती एवं गोपाल (सम्पा०), धारवाड़, १९७१, पृ० १९३

१८. *कि०इ०आ०*; पृ० २१

१९. जीन नायडू, *इण्डियन टेम्पुल ऐण्ड स्कल्प्चर*, लन्दन, १९५९, पृ० २१५

२०. *आ०अ०मे०सा०इ०*, पृ० १४०

२१. एम०के० धवलीकर, *मास्टरपिसेज ऑफ राष्ट्रकूट आर्ट दि कैलाश*, बम्बई, १९६०, पृ० २४

२२. आर०एस०गुप्ते एवं महाजन, *अजन्ता एलोरा ऐण्ड औरंगाबाद केव्स*, बम्बई, १९६२, पृ० ११६

२३. *म०भा०प्र०*, पृ० ४३

२४. *कि०इ०आ०*, पृ० ७१-७२

२५. *म०भा०मू०*, पृ० ३४

२६. *वही*, पृ० ८३

२७. *कि०इ०आ०*, पृ० ३२

२८. एम०एस० नागराज राव, "ए किरातार्जुनीयम् स्कल्प्चर फ्रॉम हलेबिड", *प्रो०जी०एच०खरे फेलिसिटेशन वॉल्यूम*, एम०एस० माते एवं कुलकर्णी (सम्पा०), १९७४, पृ० १५३

२९. *वही*, पृ० १५४

३०. *कि०इ०आ०*, पृ० ३४

पञ्चम अध्याय

चण्डेशानुग्रह मूर्तियाँ

चण्डेशानुग्रह स्वरूप भारतीय कला में बहुत प्रचलित स्वरूप नहीं रहा है, परन्तु दक्षिण भारत में और विशेषरूप से चोल कला में इस स्वरूप के उदाहरण प्रायः प्रत्येक प्रमुख मन्दिरों पर उत्कीर्ण हैं। इस स्वरूप में शिव बालक विचारशर्मन् की असीम भक्ति से प्रसन्न होकर उस पर अनुग्रह करते हैं। कथा के अनुसार विचारशर्मन् ने भक्ति के उस चरम बिन्दु का स्पर्श कर लिया था, जहाँ शिव स्वयं प्रत्यक्ष होकर उस पर अनुग्रह करते हैं। शिव ने विचारशर्मन् को 'चण्डेश्वर' पद प्रदान किया और उसे गणाध्यक्ष भी बनाया। यद्यपि इस स्वरूप का कथात्मक वर्णन केवल तमिल *प्रियपुराण* में मिलता है तथापि दक्षिण भारतीय शिल्पशास्त्रीय ग्रन्थों में इस स्वरूप का निरूपण प्रमुखता से हुआ है। इस स्वरूप का प्रतिमाशास्त्रीय निरूपण मुख्यतः *मयमत, अंशुमद्भेदागम, उत्तरकामिकागम, पूर्वकारणागम्* एवं *शिल्परत्न* में मिलता है।

तमिल *प्रियपुराण* के अनुसार चोल देश में मन्नी नदी के किनारे बसे सेन्यालूर नामक ग्राम में यज्ञदत्त नाम के एक काश्यप गोत्रीय ब्राह्मण रहते थे। यज्ञदत्त बहुत ही धार्मिक प्रवृत्ति के एवं अध्ययनशील ब्राह्मण थे। विचारशर्मन् नाम का उनका एक मेधावी बालक था, जो पिता की भाँति कुशाग्र बुद्धि था। उसने पाँच वर्ष की आयु में ही वेद कंठस्थ कर लिया एवं सात वर्ष की आयु में उसका उपनयन संस्कार हो चुका था।[1] एक दिन जब वह विद्यालय जा रहा था, तो रास्ते में उसने देखा कि एक चरवाहा एक दुर्बल गाय को बुरी तरह प्रताड़ित कर रहा है, जिसे देखकर उसे बड़ा दुःख हुआ। गाय आदर और पूजा से सम्बन्धित रही है, जिसमें सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड स्थित माना गया है। इस प्रकार की गौ प्रताड़ना देखकर दुःखी विचारशर्मन् ने एक निर्णय लिया, जिसका ग्रामवासियों ने भी स्वागत किया। उसने यह निर्णय लिया कि स्वयं के एवं सम्पूर्ण गाँव के गायों को वह स्वयं ही चराया करेगा। उसने दूसरे दिन से गाँव की सभी गायों को चराना शुरू कर दिया। गायें शनैः-शनैः स्वस्थ हो गयीं और प्रसन्नचित्त दिखने लगी। साथ ही उनके दूध की मात्रा भी बढ़ने लगी। गायों में दूध की मात्रा इतनी अधिक हो गयी कि दूध उनके थनों से निकलकर बाहर गिरने लगा। विचारशर्मन् ने इस प्रकार नष्ट होते हुए दूध को देखकर विचार किया कि यदि इस दूध से

शिव का अभिषेक किया जाय तो अच्छा होगा। इसी कल्पना को साकार रूप देने के लिए विचारशर्मन् ने नष्ट होते दूध को एक पात्र में एकत्र किया एवं नदी के किनारे एक वृक्ष के नीचे बालू से शिवलिङ्ग की स्थापना की[२] और दूध से शिवलिङ्ग का अभिषेक किया।

इस प्रकार प्रत्येक दिन नियम से विचारशर्मन् भक्तिपूर्वक एक पात्र में गायों के दूध को एकत्र कर शिवलिङ्ग का अभिषेक करने लगा। बालक को ऐसा करते देखकर चरवाहे ईर्ष्यावश ग्रामवासियों के पास पहुँचे और उनसे कहा कि "तुम लोगों की गायों के दूध का उपयोग वह ब्राह्मण बालक दूसरों को पिलाने एवं शेष दूध को बालू में गिराने में कर रहा है।" चरवाहों की बातों की सत्यता परखने के लिए जिस समय ग्रामवासी वहाँ गये उस समय बालक विचारशर्मन् बालूका निर्मित शिवलिङ्ग का अभिषेक कर रहा था, जो सामान्य लोगों की दृष्टि में बालू में दूध गिराने जैसा था। सामान्य दृष्टि के कारण ग्रामवासी न तो शिव के प्रति विचारशर्मन् की भक्ति-भाव को समझ सके और न ही उन्हें गायों के अतिरिक्त दूध का सार्थक उपयोग ही दिखायी पड़ा। लौटकर ग्रामवासियों ने अपनी शिकायत विचारशर्मन् के पिता यज्ञदत्त से की और पिता ने स्वयं उसकी जानकारी करने का निर्णय लिया। नदी के किनारे जाने पर यज्ञदत्त ने देखा कि विचारशर्मन् तन्मय होकर शिवलिङ्ग का दूध से अभिषेक कर रहा है।

इसके आगे की कथा को विद्वानों ने अलग-अलग विवेचित किया है। आर० नागास्वामी के अनुसार दूध के दुरुपयोग से क्रोधित यज्ञदत्त ने विचारशर्मन् को दण्ड से पीटना प्रारम्भ कर दिया और जब बालक पर उसका कोई प्रभाव नहीं हुआ तो उनका क्रोध और बढ़ गया। तब यज्ञदत्त ने दूध के पात्र को ही पैरों के प्रहार से नष्ट कर दिया। इस पर विचारशर्मन् का ध्यान भंग हुआ और भक्तिभावना के वशीभूत होकर विचारशर्मन् ने उसी दण्ड से पिता के पैरों पर आघात किया। पिता के पैरों का स्पर्श करते ही दण्ड एक कुल्हाड़ी के रूप में परिवर्तित हो गया।[३] टी०ए० गोपीनाथ राव के अनुसार विचारशर्मन् के उस कृत्य को देखकर क्रोधित यज्ञदत्त उसके समीप गये, जहाँ उनका पुत्र शिव की उपासना में डूबा था। विचारशर्मन् को पिता के आगमन का किंचित् भी आभास नहीं हुआ। उसे पिता ने अपना अपमान समझा क्योंकि बालक ने उठकर उनका अभिवादन भी नहीं किया। क्रोध से वशीभूत विचारशर्मन् के पिता ने बालू से निर्मित शिवलिङ्ग पर पैरों से प्रहार कर दिया। यह बात विचारशर्मन् को इतनी बुरी लगी कि उसी क्षण पास में रखे परशु से उसने पिता के उस पैर को ही काट डाला, जिस पैर से उन्होंने शिवलिङ्ग पर प्रहार किया था। इसी समय शिव पार्वतीसहित प्रकट हुए और उन्होंने विचारशर्मन् पर अनुग्रह किया। विचारशर्मन् की इस अनन्य भक्ति के कारण ही

शिव ने उसे 'चण्डेश' पद प्रदान किया और गणाध्यक्ष भी नियुक्त कर दिया। साथ ही उसके पिता के पैर को भी ठीक कर दिया। शिव ने चण्डेश को वस्त्र प्रदान कर एवं उसके मस्तक पर फूलों की माला बाँधकर उसका अभिनन्दन भी किया।[४] शिव ने शैव मन्दिरों में सर्वप्रथम चण्डेश पूजा का निर्देश दिया।[५] साथ ही चण्डेश को शिव ने मुख्य द्वारपाल भी घोषित किया।[६] चोल ग्रन्थ की उपर्युक्त परम्परा की पृष्ठभूमि में ही चोल कला के चण्डेशानुग्रह स्वरूप की मूर्तियाँ बनीं, साथ ही चोल मन्दिरों में मुख्य मन्दिर के समीप उत्तर में चण्डेश को समर्पित देवकुलिका के निर्माण की परम्परा भी प्रारम्भ हुई।[७]

चण्डेशानुग्रह स्वरूप के प्रतिमालाक्षणिक सन्दर्भ केवल दक्षिण भारतीय शिल्पशास्त्रीय ग्रन्थों में ही मिलते हैं। *अंशुमद्भेदागम्* के ७५वें पटल के अनुसार शिव-पार्वती एक ही आसन पर आसीन होंगे एवं इस स्वरूप में शिव का मुख थोड़ा बायीं तरफ चण्डेश की ओर मुड़ा होगा। शिव के सम्मुख चण्डेश पद्म पर स्थानक-मुद्रा में रूपायित होंगे। शिव का दायाँ हाथ वरद-मुद्रा में होगा जबकि बायाँ चण्डेश के मस्तक पर रखा हुआ होगा। यहाँ उष्णीष बाँधने का सन्दर्भ अनुपलब्ध है।

अथ वक्ष्ये विशेषेण चण्डेशानुग्रहं परम्।
उमासहितवत्सर्वं वामे किंचिन्नताननम्॥
दक्षिणे त्वभयं वर्ज्यं तद्धस्तं वरदं भवेत्।
वामे तु कटकं वर्ज्यं तं न्यास्त्वा चण्डमूर्धनि॥
हृदयेऽञ्जलिसंयुक्तश्चण्डेशो भक्तिसंयुतः।
आसीनः पद्मपीठे तु चण्डेशस्स्वर्णसन्निभः॥
देवीदेवेशयोर्मध्ये स्कन्दमूर्तिं विना बुधाः।
चण्डेशानुग्रहं ख्यातं दक्षिणामूर्तिरुच्यते॥

अशुमद्भेदागम्, ७५वाँ पटल

उत्तरकामिकागम् (६५वाँ पटल) में चण्डेशानुग्रह मूर्ति का उल्लेख चोल मूर्तियों के अध्ययन की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण है। गंगैकोण्डचोलपुरम् के बृहदीश्वर मन्दिर की मूर्ति और *उत्तरकामिकागम्* का उल्लेख एक-दूसरे के पूरक जान पड़ते हैं। ग्रन्थ के अनुसार चन्द्रशेखर मूर्ति के समान शिव-पार्वती आसीन होंगे और उनके समक्ष चण्डेश्वर की आकृति आसीन अथवा स्थानक रूप में होगी। चण्डेश्वर की आकृति लम्बाई में शिव के घुटनों तक होगी, जो अनुग्रह प्राप्त करने वाले और अनुग्रह करने वाले की स्थितियों के आकलन की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण है।

उत्तरकामिकागम् के अनुसार शिव दाहिने हाथ में पुष्पों का हार पकड़े होंगे एवं बायें हाथ से उस पुष्पहार को चण्डेश्वर के मस्तक पर बाँधने की मुद्रा

में निरूपित होंगे। ऐसा प्रतीत होता है कि गंगैकोण्डचोलपुरम् के बृहदीश्वर मन्दिर की चण्डेशानुग्रह मूर्ति में *उत्तरकामिकागम्* का शब्दशः रूपान्तरण हुआ है।

उमया सहितस्याथ चन्द्रशेखरमूर्तिनः।
वामे वा दक्षिणे वापि कारयेद्देशिकोत्तमः॥
एवं (देवं?) जानूरुनाभ्यन्तस्तनवक्षोगलास्यगम्।
सुखासीनं स्थितं वापि कृताञ्जलिपुटान्वितम्॥
देवेक्षणसमोपेतं मद्भक्तं चण्डनायकम्।
सर्वाङ्गसुन्दरं कुर्य्यात्कनिष्ठदशतालतः॥
मालाग्रं देववरदे कटकेनेतरेण तु।
देवशिरसि चण्डस्य मालया परिवेष्टयेत्॥

उत्तरकामिकागम्, ६५वाँ पटल

उपर्युक्त विवरणों से मिलते-जुलते सन्दर्भ *मयमत*, *शिल्परत्न*, *पूर्वकारणागम्*, *सकलाधिकार* एवं *काश्यपशिल्प* में भी मिलते हैं।

चण्डेशानुग्रहं देवमुमास्कन्दवदाचरेत्।
वाम (मे?) किंचिन्नतं चास्यं दक्षिणे त्वभयं विना॥
तद्धस्ते वरदं कार्यं वामे तु कुटं (कटकं?) विना।
चण्डेशमूर्ध्नि विन्यस्य तद्धस्तं करुणान्वितम्॥
हृदयेऽञ्जलिसंयुक्तश्चण्डेशो भक्तिसंयुतः।
आसनाधस्त्वु (?) पासीनो भक्तिमान् स्वर्णसन्निभः॥

शिल्परत्न, २२वाँ पटल

उमासहितवत्सर्वं स्कन्देनैव विना कुरु।
किंचिदस्मिन् विशेषोऽस्ति तं विशेषं शृणु द्विजाः॥
कटकं दक्षिणे हस्तं वरदं वामहस्तके।
देवस्य पुरभागं तु चण्डेशं तु प्रकल्पयेत्॥
देवस्य बाहुमात्रेण चण्डेशायाममुच्यते।
कृताञ्जलिपुटोपेतं चासीनं प्रतिवक्त्रकम्॥
देवशिरसि चण्डस्य मालया परिभूषयन्।
चण्डेशानुग्रहं प्रोक्तं मुखलिङ्गं पुरोक्तवत्॥

पूर्वकारणागम्, ११वाँ पटल

सामान्यतया उपरोक्त प्रतिमालाक्षणिक ग्रन्थों में वर्णित लक्षणों के आधार पर ही चण्डेशानुग्रह मूर्तियों का उत्कीर्णन हुआ जिनमें शिव-पार्वती को एक ही आसन (सुखासन) में निरूपित किया गया है। ग्रन्थों के अनुसार पार्वती कभी बायें तो कभी दायें दिखायी जायेगीं। चण्डेश को शिव के सम्मुख अंजलिबद्ध-

मुद्रा में स्थानक या आसीन रूपायित करने का विधान है। इस स्वरूप में शिव त्रिनेत्र, जटामुकुटधारी एवं चतुर्भुज दिखाये गये हैं। शिव के उर्ध्व करों में सामान्यतः परशु एवं मृग द्रष्टव्य हैं, जबकि नीचे का वाम कर वरद-मुद्रा में है। शिव का दायाँ हाथ चण्डेश के मस्तक पर पुष्पमाला पहनाते दिखाया जायेगा। इस स्वरूप में शिव प्रसन्नवदन हैं। चण्डेश की ओर देखती हुई द्विभुजा पार्वती का भी एक हाथ वरद-मुद्रा में होगा।

चण्डेशानुग्रह स्वरूप की मूर्तियाँ प्रस्तर एवं कांस्य दोनों में बनीं। प्रस्तर मूर्तियों में चण्डेश पर अनुग्रह करते शिव एकल और कभी-कभी पार्वतीसहित निरूपित हैं। कांस्य प्रतिमाओं में चण्डेश की एकल मूर्ति अंजलिबद्ध और द्विभुज स्वरूप में परशु सहित स्थानक या आसन रूप में मिलती है। कांस्य प्रतिमाओं में कभी-कभी चण्डेश के साथ उनकी पत्नी धर्मनीति को भी रूपायित किया गया है जिसके उदाहरण चोल कालीन कांस्य प्रतिमाओं में बहुतायत से उपलब्ध हैं। कांस्य प्रतिमा के एक अन्य प्रकार में स्वयं शिव को ही 'चण्डेश्वर' स्वरूप में चतुर्भुज दर्शाया गया है जिसमें शिव कभी एकल तो कभी उमासहित रूपायित हैं। ऐसे स्वरूप में चण्डिकेश्वर-शिव वरद-मुद्रा में मृग एवं परशु से युक्त दिखाये गये हैं। इनके उदाहरण भी मुख्यतः चोल कालीन कांस्य प्रतिमाओं में ही पाये जाते हैं। इस स्वरूप की एक प्रस्तर मूर्ति एलोरा की लंकेश्वर गुफा (ल० आठवीं-नवीं शती ई०) से प्राप्त है।

प्रस्तर मूर्तियों के उदाहरण मुख्यरूप से पल्लव कालीन कला-केन्द्र महाबलीपुरम् के धर्मराज रथ और कांचीपुरम् के कैलाशनाथ, मातंगेश्वर एवं मुक्तेश्वर मन्दिरों से प्राप्त हैं। चोल कालीन उदाहरण पुलमंगलई एवं बृहदीश्वर मन्दिर (तंजौर), बृहदीश्वर मन्दिर (गंगैकोण्डचोलपुरम्), पुण्डरीकपुरम् एवं नागेश्वर मन्दिर (कुम्भकोणम्) तथा नटराज मन्दिर (चिदम्बरम्) पर द्रष्टव्य हैं।

चण्डेशानुग्रह स्वरूप का एक प्रारम्भिक उदाहरण महाबलीपुरम् के धर्मराज रथ से प्राप्त है। प्रस्तर मूर्तियों में चण्डेशानुग्रह स्वरूप का सर्वश्रेष्ठ उदाहरण निःसन्देह गंगैकोण्डचोलपुरम् के बृहदीश्वर मन्दिर (ल० ११वीं शती ई०) की मूर्ति है। यह मूर्ति कलात्मक अभिव्यक्ति और शिल्पशास्त्रीय परम्परा दोनों ही दृष्टियों से विलक्षण है। साधारणतया चण्डेशानुग्रह प्रतिमा का अंकन भारतीय कला में शिव पार्वतीसहित हुआ है। इसमें सुखासन में आसीन चतुर्भुज शिव दो ऊर्ध्व करों में परशु एवं मृग लिये हैं जबकि दो शेष करों से शिव चण्डेश के मस्तक पर पुष्पहार का उष्णीष बाँध कर उसका अभिनन्दन करते निरूपित हैं। कभी-कभी शिव के दो सामान्य कर वरद एवं अभय-मुद्रा या कटिहस्त-मुद्रा में भी प्रदर्शित हैं। पार्वती

सामान्यतः द्विभुजा हैं, जिनका एक हाथ अभय-मुद्रा में है। कभी-कभी शिव को अकेले भी चण्डेश के साथ दिखाया गया है। सामान्य आभूषणों यथा—ग्रैवेयक, कुण्डल, हार, जटामुकुट, उदर-बन्ध, भुज-बन्ध से शोभित शिव त्रिनेत्र हैं और उन्हें छोटी धोती पहने दिखाया गया है। पार्वती सुन्दर केश सज्जा वाली एवं आभूषणों से युक्त होंगी। द्विभुज स्वरूप में चण्डेश शिव के दायीं ओर अथवा सम्मुख स्थानक या आसन-मुद्रा में श्रद्धावनत् दिखाये जायेंगे। इस स्वरूप में शिव प्रसन्नवदन और चण्डेश भक्तिभाव से विभोर निरूपित होंगे।

तमिलनाडु के धर्मराज रथ की प्रारम्भिक मूर्ति द्वितीय तल की पूर्वी रथिका में उत्कीर्ण है। इस उदाहरण (चित्र ३९) के विषय में विद्वानों में मतैक्य नहीं है। सी० शिवराममूर्ति जैसे विद्वान् इसे किरात एवं अर्जुन कथा प्रसंग की मूर्ति मानते हैं जबकि के०आर० श्रीनिवासन् ने इसे शिव और चण्डेश की मूर्ति बताया है।[१०] इसमें शिव त्रिभंग में चतुर्भुज हैं। जटामुकुट, कुण्डल, हार, यज्ञोपवीत, उदर-बन्ध एवं छोटी धोती से शोभित शिव के ऊर्ध्व करों में मृग एवं सर्प का अंकन हुआ है जबकि नीचे के सामान्य करों में से दायें हाथ में वरद-मुद्रा प्रदर्शित है और बायाँ हाथ चण्डेश के स्कन्ध पर ऐसे स्थित है मानों शिव उसका अभिनन्दन कर रहे हों। शिव के बायें पार्श्व में आगे की ओर झुककर खड़ी चण्डेश की आकृति द्विभुज स्वरूप में और प्रसन्नवदन है। इस स्वरूप में चण्डेश का दायाँ हाथ सूचीहस्त-मुद्रा में मुख के समीप स्थित है जबकि बायाँ हाथ बायें पैर के घुटने पर स्थित है। चण्डेश जटाभार, कुण्डल से शोभित हैं। इस मूर्ति में सम्भवतः कथा के उस भाग का रूपायन हुआ है जिसमें ध्यान भंग होने के कारण चण्डेश ने अपने पिता का पैर काट दिया तथा उसके पश्चात् शिव ने प्रकट होकर दोनों पर अनुग्रह किया। तत्पश्चात् शिव ने चण्डेश का आलिंगन कर उसे चण्डेश पद प्रदान करते हुए अपना प्रमुख रक्षक एवं द्वारपाल भी नियुक्त किया था। यहाँ कथा के अन्तिम भाग का शिल्पांकन हुआ है जिसमें शिव चण्डेश का आलिंगन कर उस पर स्नेह की प्रसून-वर्षा करते प्रदर्शित हैं।

चण्डेशानुग्रह स्वरूप का द्वितीय उदाहरण कांचीपुरम् स्थित कैलाशनाथ मन्दिर (ल० आठवीं शती ई०) पर (चित्र ४०) उत्कीर्ण है। प्रस्तुत उदाहरण मन्दिर के उत्तरी प्राकार की प्रकोष्ठ रथिका में उत्कीर्ण है। वर्तमान में यह मूर्ति काफी क्षतिग्रस्त अवस्था में है। इस मूर्ति में त्रिनेत्र, जटामुकुट एवं अन्य आभूषणों से सुशोभित चतुर्भुज शिव प्रत्यालीढ़-मुद्रा में हैं। इस स्वरूप में शिव के शरीर का सम्पूर्ण भार दायें पैर पर आधारित है, जबकि बायाँ पैर एक पाद पीठिका पर आराम करने की मुद्रा में स्थित है। शिव के ऊर्ध्व करों में वरद-मुद्रा एवं त्रिशूल है जबकि नीचे के सामान्य करों में से दायाँ हाथ अभय-मुद्रा में है। बायें हाथ की

स्थिति अस्पष्ट है। शिव का बायाँ पैर जिस पीठिका पर आधारित है उसके नीचे शिवलिङ्ग उत्कीर्ण करके शिल्पी ने प्रस्तुत मूर्ति को पूर्व कथात्मक पृष्ठभूमि से जोड़ दिया है। पीठिका के नीचे शिवलिङ्ग के माध्यम से शिल्पी ने शिवलिङ्ग से शिव के प्रकट होने का भाव व्यक्त कर दिया है। यहाँ शिव की मुद्रा यमान्तक मूर्ति जैसी दिखाई देती है। शिव के दायीं ओर जटाबन्ध से युक्त एवं द्विभुज स्वरूप में चण्डेश की आकृति स्थानक रूप में निरूपित है। इस स्वरूप में चण्डेश के दायें हाथ में परशु भी द्रष्टव्य है जो पुनः कथा की पारम्परिक पृष्ठभूमि का परिचायक है। चण्डेश का बायाँ हाथ कटिहस्त-मुद्रा में कुछ इस प्रकार व्यक्त है मानों तिरस्कारपूर्वक पिता द्वारा शिवलिङ्ग पर आघात करने के पश्चात् विचारशर्मन् का ध्यान भंग हो गया हो और क्रोधवश उसने पिता के पैर को परशु से काट दिया हो। चण्डेश के पैरों के समीप भूमि पर गिरी एवं एक हाथ से विस्मय-मुद्रा प्रदर्शित करती आकृति भी द्रष्टव्य है जो निसन्देह चण्डेश के पिता यज्ञदत्त की आकृति है।[११] इस प्रकार प्रस्तुत मूर्ति में चण्डेशानुग्रह प्रतिमा को कथात्मक पृष्ठभूमि में उत्कीर्ण किया गया है जो इस मूर्ति का वैशिष्ट्य है। विचारशर्मन् और पिता यज्ञदत्त की आकृति शिव के प्रकट होने और चण्डेश पर अनुग्रह करने के पूर्व की अवस्था को व्यक्त करती है किन्तु इस मूर्ति में शिव के चण्डेश पर अनुग्रह के अन्तिम क्षणों को नहीं दिखाया गया है। वस्तुतः यहाँ कथा का प्रतीकात्मक अंकन हुआ है।[१२]

चण्डेशानुग्रह स्वरूप का तीसरा पल्लव कालीन उदाहरण (ल० आठवीं शती ई०) कांचीपुरम् स्थित मातङ्गेश्वर मन्दिर की बाह्य भित्ति की देवकुलिका में उत्कीर्ण है। इस मूर्ति में जटामुकुट एवं सामान्य आभूषणों से अलंकृत एकल शिव द्विभुज एवं आसीन हैं। शिवासन के समक्ष चण्डेश की अंजलिबद्ध आकृति है ज़िसके मस्तक पर शिव का हाथ अनुग्रह भाव के साथ आकारित है।[१३] ऐसा प्रतीत होता है कि चण्डेश की असीम भक्ति से प्रसन्न शिव उस पर स्नेह की प्रसून-वर्षा कर रहे हों। इस मूर्ति में शिल्पी ने भावों के प्रदर्शन में अपनी श्रेष्ठता दरशायी है।

चण्डेशानुग्रह स्वरूप की चौथी मूर्ति भी पल्लव कालीन (ल० नवीं शती ई०) और कांचीपुरम् के मुक्तेश्वर मन्दिर के मुखमण्डप की बाह्य भित्ति की प्रकोष्ठ रथिका में उत्कीर्ण है। इस मूर्ति (रेखा चित्र २) में भी अन्य पल्लव कालीन उदाहरणों की भाँति एकल शिव चण्डेश की भक्ति से प्रसन्न होकर उसका अभिनन्दन करने की मुद्रा में आकारित हैं। यहाँ कथा के अन्तिम भाग का रूपायन हुआ है। वीरासन में आसीन चतुर्भुज शिव जटामुकुट एवं अन्य आभूषणों से सज्जित हैं। शिव के समक्ष अंजलिबद्ध चण्डेश की विनयावनत् मूर्ति बनी है

जिसके मस्तक पर शिव स्नेहपूर्वक दो हाथों से पुष्पनिर्मित हार द्वारा उष्णीष बाँधने की मुद्रा में रूपायित हैं। इस मूर्ति में शिव का अनुग्रह भाव और चण्डेश का विनय भाव सजीव रूपों में व्यक्त हुआ है।[१४]

चोल कला में इस स्वरूप की कुल सात मूर्तियाँ विभिन्न स्थलों से मिली हैं जिनका उल्लेख यहाँ प्रासंगिक है।

चण्डेशानुग्रह स्वरूप की दो मूर्तियाँ पुलमंगलई मन्दिर, तंजौर से मिली हैं जो आरम्भिक चोल कालीन (ल० नवीं शती ई०) उदाहरण हैं। *पहली मूर्ति* मन्दिर के मण्डप की बाह्य दक्षिणी भित्ति पर उत्कीर्ण है। इस मूर्ति में शिव-पार्वती एक ही आसन पर सुखासन में विराजमान हैं। चतुर्भुज शिव जटामुकुटधारी और त्रिनेत्र हैं। आभूषणों से अलंकृत शिव एक हाथ से टेक लगायें हुए हैं जबकि उनके दो हाथों में फूलों की माला है जिससे शिव चण्डेश का अभिनन्दन करने की मुद्रा में निरूपित हैं। यहाँ उष्णीष बाँधने की प्रारम्भिक अवस्था का अंकन हुआ है, इसी कारण चण्डेश के मस्तक पर गंगैकोण्डचोलपुरम् के उदाहरण की भाँति यहाँ उष्णीष नहीं प्रदर्शित है। वाम पार्श्व में द्विभुजा पार्वती की सर्वालंकृत (मुकुट सहित) मूर्ति बनी है। प्रस्तुत मूर्ति में पार्वती शिव की अनुग्रह-लीला का अवलोकन कर रही हैं और स्वयं अपना भी स्नेह चण्डेश को प्रदान कर रही हैं। शिल्पी, शिव-पार्वती एवं चण्डेश के मुख भाव के सजीव अंकन में सफल रहा है। शिव के समक्ष चण्डेश की भक्ति भाव से परिपूर्ण नतमस्तक आकृति अंजलिबद्ध रूप में उकेरी है। चण्डेशानुग्रह की इस मूर्ति में शिव-पार्वती के ऊपर अनेक गण एवं देव आकृतियाँ परिकर में बनी हैं जो मानों शिव की असीम कृपा के क्षणों में साक्षी बनकर उसका आनन्द ले रही हैं।

दूसरी मूर्ति भी पुलमंगलई मन्दिर के गर्भगृह की पश्चिमी जगती पर उत्कीर्ण है। इस मूर्ति में शिव को एकल स्वरूप में ही चण्डेश पर अनुग्रह करते दिखाया गया है। चतुर्भुज एवं त्रिनेत्र शिव जटामुकुट तथा अन्य आभूषणों से अलंकृत एवं अर्धपर्यंक-मुद्रा में पद्म पर विराजमान हैं। शिव के एक हाथ में सर्प है जबकि एक हाथ जानु पर स्थित है। शिव अन्य दो हाथों से एक लम्बी फूलों की माला पकड़कर कुछ आगे की ओर बढ़कर प्रसन्नभाव से चण्डेश का अभिनन्दन करते आमूर्तित हैं। शिवासन के समक्ष दोनों पैर मोड़कर अंजलिबद्ध-मुद्रा में विनीत भाव वाले चण्डेश को दिखाया गया है। चण्डेश जटाभार एवं सामान्य आभूषणों से सज्जित हैं। इस मूर्ति के ऊपर परिकर में भी कई अन्य आकृतियाँ शिव कृपा के इस अलौकिक दृश्य का अवलोकन करती उत्कीर्ण हैं।

तंजौर के बृहदीश्वर मन्दिर के अन्तराल के उत्तरी सोपान पर उत्कीर्ण चण्डेशानुग्रह स्वरूप (रेखा चित्र ३) के उदाहरण (१००० ई०) में कथा के अन्तिम

अंश का रूपायन हुआ है। इस मूर्ति में चतुर्भुज शिव पार्वतीसहित विराजमान हैं। शिव दोनों पैर मोड़कर कुछ आगे बढ़ने की मुद्रा में आमूर्तित हैं। त्रिनेत्र शिव जटामुकुट, कुण्डल, ग्रैवेयक, यज्ञोपवीत, भुज-बन्ध आदि से शोभित हैं। उनके दो करों में फूलों की माला है जिससे चण्डेश का अभिनन्दन कर रहे हैं। साथ ही शिव के उर्ध्व करों में परशु एवं मृग प्रदर्शित है। शिव के बायीं ओर विराजमान पार्वती का दायाँ पैर आसन पर है, जबकि बायाँ पैर आसन से नीचे लटका हुआ है। इस स्वरूप में देवी के एक हाथ में शृंगार का प्रतीक दर्पण है और दूसरा कटिहस्त-मुद्रा में है। पार्वती सुन्दर केशराशि एवं सामान्य आभूषणों से अलंकृत हैं। शिवासन के समक्ष दायीं ओर चण्डेश की घुटनों के बल बैठी आकृति जटाभार से अलंकृत है। अंजलिबद्ध-मुद्रा में चण्डेश को शिव की असीम अनुकम्पा से आह्लादित होते दरशाया गया है। चण्डेश की आकृति के दायीं ओर दो स्थानक आकृतियाँ सम्भवत: शिव-लीला के इस दृश्य का अवलोकन करती निरूपित हैं।

चण्डेशानुग्रह मूर्ति (चित्र ४१-४२) स्वरूप का श्रेष्ठतम् उदाहरण गंगैकोण्डचोलपुरम् के बृहदीश्वर मन्दिर के मुखण्डप की पूर्वी भित्ति की रथिका में उत्कीर्ण है। राजेन्द्र चोल के काल की यह मूर्ति भावाभिव्यक्ति की दृष्टि से अद्वितीय है। यह मूर्ति एक ओर शिव का चण्डेश के प्रति अनुग्रह भाव और दूसरी ओर शिव के समक्ष भावविभोर चण्डेश के विनयावनत् स्वरूप और आराध्य एवं भक्त के बीच मार्मिक सम्बन्ध की मूर्त रूप में प्रस्तुति की दृष्टि से विलक्षण तथा अलौकिक है। पार्वती शिव और चण्डेश के गूढ़ सम्बन्धों के साक्षी के रूप में उपस्थित हैं। जिनके बैठने की मुद्रा, अलंकरण और स्वरूप इस बात की मूर्त गवाही दे रहे हैं, ऐसा भान होता है मानों शिव के इस अनुग्रह कार्य में पार्वती स्वयं भी सम्मिलित हैं और इन क्षणों में स्वयं को परम प्रसन्न पा रही हैं। शिव तो पुष्पहार से उष्णीष बाँधने और उसके माध्यम से प्रतीकात्मक रूप में चण्डेश पर अपने अनुग्रह की वर्षा करने में कुछ इस सीमा तक तल्लीन हैं जो ईश्वर या आराध्य और भक्त के बीच की दूरी को ही समाप्त कर देता है। इसी कारण उष्णीष के ऊपरी भाग को शिव कुछ इस प्रकार सम्भाले हुए हैं कि उष्णीष का स्वरूप और सौन्दर्य न बिगड़ने पाये। इस भव्य मूर्ति में शिव का शिवत्व भक्त और आराध्य के एकाकार होने में व्यक्त हुआ है[१५] जिसका बाह्य रूप तो लौकिक जान पड़ता है किन्तु उसका आन्तरिक भावपक्ष अलौकिक एवं परमानन्द रूप का दर्शन कराने वाला है। इस मूर्ति का निरूपण *उत्तरकामिकागम्* में वर्णित प्रतिमालक्षणं के आधार पर हुआ है।

इस मूर्ति में चतुर्भुज शिव पार्वतीसहित एक ऊँचे पीठासन पर विराजमान हैं। शिव त्रिनेत्र एवं जटामुकुट से युक्त हैं। शिव के आभूषण चोल कला के श्रेष्ठतम अलंकरण हैं जो भव्य और मनोहारी हैं। शिव कुण्डल, ग्रैवेयक,

यज्ञोपवीत, भुज-बन्ध आदि से सज्जित हैं। शिव के ऊर्ध्व करों में परशु एवं मृग है जबकि दो अन्य हाथों से शिव चण्डेश के मस्तक पर उष्णीष बाँध रहे हैं। उनका दाहिना हाथ पुष्पहार के अन्तिम छोर को उष्णीष बाँधने के लिए पकड़े हुए है जबकि बायें हाथ से शिव को चण्डेश के मस्तक के उष्णीष को सम्भालते हुए दिखाया गया है। द्विभुजा पार्वती करण्ड-मुकुट, कुण्डल, हार, भुज-बन्ध, कंगन एवं नूपुर आदि से अलंकृत हैं और उनका एक हाथ अभय-मुद्रा में है जबकि दूसरा जानु पर स्थित है। दोनों आकृतियों (शिव-पार्वती) का बायाँ पैर आसन से नीचे लटका और पादपीठिका पर स्थित है।

शिव के आसन से नीचे उनके चरणों के पास दायीं ओर चण्डेश (चित्र ४२) की अंजलिबद्ध, श्रद्धावनत् आकृति बैठी हुई है। बैठने की मुद्रा एवं भाव से चण्डेश का विनय स्वरूप और साथ ही आराध्य एवं भक्त के बीच का भाव मूर्त रूप में प्रकट हुआ है। इस स्वरूप में चण्डेश जटाभार, पद्म-कुण्डल , ग्रैवेयक, भुज-बन्ध से आभूषित और प्रसन्नवदन एवं भावविभोर हैं। यह मूर्ति इतनी भावपूर्ण है कि कभी-कभी ऐसा लगता है मानों इस मन्दिर के निर्माता और महान् शिवभक्त राजेन्द्र चोल ने स्वयं को ही चण्डेश के रूप में इस मूर्ति के माध्यम से शिव के अनुग्रह के लिए प्रस्तुत कर दिया हो।[१६] राथिका भित्ति के दोनों ओर कथा के कुछ अन्य अंशों का भी अंकन (चित्र ४१) हुआ है। एक ओर शिवलिङ्ग के समक्ष आराधनारत चण्डेश और कुछ दूरी पर गायों के झुण्ड का अंकन हुआ है साथ ही एक वृक्ष के पीछे से झाँकती आकृति सम्भवतः उसके पिता यज्ञदत्त की है जो बालक विचारशर्मन् पर ग्रामवासियों द्वारा आरोप की सत्यता के परीक्षण हेतु खड़ी है। मुख्यरथिका के दूसरी ओर की सहायक रथिका में चण्डेश द्वारा पूजित शिवलिङ्ग पर पिता द्वारा पाद प्रहार से चण्डेश का ध्यान भंग होने एवं आराध्य पर पाद प्रहार जैसी घटना से मर्माहत और क्रोधित चण्डेश का रूपायन हुआ है। इस प्रकार इस मूर्ति में पहली बार सम्पूर्ण कथा का कथात्मक शैली में अंकन हुआ है। यह प्रतिमा अपने कथा संयोजन, भाव सम्प्रेषण और जीवन्तता के कारण निःसन्देह चण्डेशानुग्रह मूर्तियों में सर्वश्रेष्ठ है। साथ ही दक्षिण भारतीय मूर्तिकला के भी श्रेष्ठतम् उदाहरणों में से एक है।

चोलकालीन एक और चण्डेशानुग्रह मूर्ति पुण्डरीकपुरम् मन्दिर (कुम्भकोणम्, तमिलनाडु) पर उत्कीर्ण है। प्रस्तुत चण्डेशानुग्रह प्रतिमा (ल० १२वीं शती ई०) में चतुर्भुज शिव एवं द्विभुजा पार्वती एक ही आसन पर सुखासन में विराजमान हैं। इस स्वरूप में शिव त्रिनेत्र एवं जटामुकुटधारी हैं। शिव दो हाथों से चण्डेश के मस्तक पर स्थित मुकुट (पुष्पहार नहीं) को संभालते हुए अंकित हैं। शिव के अन्य हाथ खण्डित हैं। पार्श्व में द्विभुजा पार्वती शिव की ही मुद्रा में

आसीन हैं। शिवासन के नीचे सम्मुख भाग में परशुधारी चण्डेश की अंजलिबद्ध आकृति का उत्कीर्णन भी महत्त्वपूर्ण है। ऐसा लगता है जैसे पुण्डरीकपुरम् के शिल्पी ने गंगैकोण्डचोलपुरम् के बृहदीश्वर मन्दिर के उदाहरण से प्रेरणा लेकर इस मूर्ति को गढ़ा हो।[१७] कथा-संयोजन एवं भावात्मक पक्ष दोनों ही दृष्टियों से यह मूर्ति उत्कृष्ट है।

चण्डेशानुग्रह की एक कथात्मक मूर्ति नागेश्वर मन्दिर, कुम्भकोणम् के गर्भगृह की अधिष्ठान रथिका के नीचे बायें एवं दायें दो छोटे-छोटे प्रकोष्ठों में उत्कीर्ण हैं। इसमें कथा का अंकन सूक्ष्मता के साथ हुआ है। प्रस्तुत चोल कालीन (ल० १२वीं शती ई०) उदाहरण में बायीं ओर के प्रकोष्ठ में चण्डेश द्वारा पूजित एवं बालूका निर्मित शिवलिङ्ग पर उसके पिता द्वारा पैरों से प्रहार करने तथा आराधनारत चण्डेश का ध्यान भंग होने और तदुपरान्त क्रोधवश पिता के पैरों को काट डालने के पश्चात् चण्डेश की अनन्य भक्ति से प्रसन्न होकर शिव के प्रकट होने का अंकन शिल्पी ने कुशलतापूर्वक किया है। चण्डेश की द्विभुजी आकृति इस प्रकार परशु ऊपर उठाये प्रदर्शित है मानों अपने पिता पर क्रुद्ध होकर प्रहार कर रही हो। समीप ही एक हाथ ऊपर उठाये गिरती हुई आकृति चण्डेश के पिता की है जो घायल और इस घटना से स्तब्ध हैं। चण्डेश और उसके ऊपर कुछ गायों का अंकन कथा की सम्पूर्णता को व्यक्त करता है। चण्डेश के दायें पार्श्व में वृषभारूढ़ शिव का एक गणाकृति के साथ अंकन हुआ है जो शिव के आगमन और उनके प्रकट होने का भाव व्यक्त करता है। इस स्वरूप में चतुर्भुज शिव जटामुकुट एवं अन्य अलंकरणों से अलंकृत हैं तथा चण्डेश एवं उसके पिता को बायें हाथ से अभय-दान दे रहे हैं। शिव के ऊर्ध्व करों में परशु एवं मृग है जबकि दायाँ हाथ वाहन नन्दी के मस्तक पर स्थित है। दायीं ओर की रथिका के प्रकोष्ठ में कथा के समापन के रूप में शिव के प्रकट होने तथा चण्डेश की भक्ति से प्रसन्न होकर उसे 'चण्डेश' पद देने का रूपायन हुआ है। यहाँ भी गंगैकोण्डचोलपुरम् के उदाहरण के समान शिव-पार्वती की आसीन मुद्रा और भाव दोनों से चण्डेश्वर के सम्मान का संकेत मिलता है। इस मूर्ति में पार्वती का दायीं ओर होना विशेषतः ध्यातव्य है। जटामुकुट एवं अन्य आभूषणों से शोभित चतुर्भुज शिव के दो करों (ऊर्ध्व करों) में परशु एवं मृग हैं जबकि शेष दो हाथ चण्डेश के मस्तक पर पुष्पहार निर्मित उष्णीष बाँधने को तत्पर हैं। सुन्दर केश रचना वाली द्विभुजा पार्वती विभिन्न अलंकरणों से सज्जित हैं और उनका एक हाथ आसन पर टेक देने की मुद्रा में है जबकि दूसरा हाथ जानु पर स्थित है। शिवासन के नीचे सम्मुख भाग में चण्डेश की आकृति घुटनों के बल अंजलिबद्ध, श्रद्धावनत् स्वरूप में बैठी है। यहाँ चण्डेश पूरी तन्मयता एवं भक्तिभाव से शिव की इस असीम कृपा से कृतकृत्य हो रहे हैं। चण्डेश के पार्श्व में दो

मानवाकृतियाँ सम्भवत: शिव-लीला के इस दृश्य का दर्शनलाभ करती निरूपित हैं। यहाँ कथा का उत्कीर्णन सम्पूर्णता में हुआ है एवं पार्वती को बायें के स्थान पर दायीं ओर दिखाया गया है।

चिदम्बरम् (तमिलनाडु) स्थित चोल कालीन (ल० १२वीं शती ई०) नटराज मन्दिर के दक्षिणी गोपुरम् के द्वितीय तल की प्रथम रथिका में भी चण्डेशानुग्रह स्वरूप की एक मूर्ति है। इस मूर्ति में कथा के अन्तिम अंश का अंकन हुआ है जिसमें शिव ब्राह्मण बालक विचारशर्मन् की अनन्य भक्ति से प्रसन्न होकर उसे चण्डेश नाम एवं गणाध्यक्ष का पद देते हुए तथा चण्डेश के शीश पर पुष्पहार बाँध कर उसका सम्मान करते हुए दिखाये गये हैं। मूर्ति में शिव-पार्वती एक ही आसन पर विराजमान हैं एवं दोनों ही मुख्य आकृतियाँ (शिव-पार्वती) द्विभुज स्वरूप में आमूर्तित हैं। शिव गंगैकोण्डचोलपुरम् के बृहदीश्वर मन्दिर के उदाहरण की भाँति थोड़ा आगे की ओर बढ़कर दायें हाथ से पुष्पहार का अन्तिम छोर पकड़े एवं बायें हाथ को चण्डेश के मस्तक पर रखे निरूपित हैं। इसी क्रम में पार्वती भी चण्डेश पर अपनी अनुकम्पा प्रदर्शित करती और उसे अभय देती एवं एक अन्य हाथ से आसन पर टेक लगाये आकारित हैं। शिवासन से नीचे एवं शिव के सम्मुख घुटने मोड़कर आसीन तथा अंजलिबद्ध स्वरूप में चण्डेश का रूपायन हुआ है। इस स्वरूप में चण्डेश मानों शिव के इस कृपापूर्ण अनुग्रह के रससागर में पूरी तरह सराबोर हैं। शिव एवं चण्डेश दोनों को जटाजूट से शोभित दिखाया गया है। यहाँ पहली बार शिव द्विभुज हैं।

चण्डेशानुग्रह स्वरूप की तीन मूर्तियाँ आन्ध्र प्रदेश के विभिन्न मन्दिरों से प्राप्त हैं। ये मूर्तियाँ ल० १०वीं से ११वीं शती ई० के मध्य की हैं। पहली मूर्ति श्री शैलम्, पाटलगंगा की बाह्य भित्ति पर उत्कीर्ण है। इस मूर्ति में शिव का एकल स्वरूप में अंकन हुआ है जो कांचीपुरम् के मातङ्गेश्वर मन्दिर एवं मुक्तेश्वर मन्दिर तथा तंजौर के पुलमंगलई मन्दिर के समरूप है। इस स्वरूप में चतुर्भुज और त्रिनेत्र शिव जटामुकुट एवं अन्य आभूषणों से आभूषित और सुखासन में आसीन हैं। शिव के ऊर्ध्व करों में परशु एवं मृग का अंकन हुआ है जबकि सामान्य करों से शिव चण्डेश के मस्तक पर पुष्प-माला निर्मित उष्णीष बाँधकर उस पर अनुग्रह करने की मुद्रा में रूपायित हैं। शिवासन के नीचे एवं सम्मुख भाग में उकेरी चण्डेश की स्थानक आकृति जटाभार एवं अन्य सामान्य आभूषणों से अलंकृत है। चण्डेश शिव की कृपा से आह्लादित हो रहे हैं। चण्डेश के दायें हाथ में परशु है जो उसके कन्धे से टिका है जबकि बायाँ हाथ चिन-मुद्रा में है।[१८]

आन्ध्र प्रदेश से प्राप्त दूसरी मूर्ति सोमेश्वर मन्दिर की उत्तरी बाह्य भित्ति की रथिका में उत्कीर्ण है। इस मूर्ति में त्रिनेत्र शिव त्रिभंग में हैं। मूर्ति में शिव का

ऊर्ध्वलिङ्ग होना विशेषतः ध्यातव्य है। चतुर्भुज शिव के ऊर्ध्व करों में त्रिशूल एवं अक्षमाला प्रदर्शित है जबकि नीचे का दायाँ हाथ वरद-मुद्रा में चण्डेश के मस्तक का स्पर्श करता हुआ है। शिव के बायें हाथ में परशु का अंकन है। यहाँ सांकेतिक रूप में उष्णीष के स्थान पर वरद-मुद्रा के माध्यम से शिव कृपा का भाव व्यक्त हुआ है। शिव के वाम पार्श्व की लघु एवं स्थानक आकृति गज की है। शिव के दायीं ओर चण्डेश स्थानक रूप में जटामुकुट से युक्त एवं अंजलिबद्ध-मुद्रा में आमूर्तित हैं। चण्डेश शिव की कृपा से उपकृत भाव में मूर्तिमान हैं।

तीसरा उदाहरण जायती स्थित शिव मन्दिर (ल० ११वीं शती ई०) की बाह्य उत्तरी भित्ति की रथिका में उकेरी है। इस मूर्ति में स्थानक एवं त्रिनेत्र शिव सोमेश्वर मन्दिर के उदाहरण की भाँति जटामुकुट, ग्रैवेयक, यज्ञोपवीत एवं उदर-बन्ध से शोभित हैं। चतुर्भुज शिव के ऊर्ध्व करों में परशु एवं त्रिशूल हैं तथा शिव का सामान्य दायाँ हाथ सोमेश्वर मन्दिर के उदाहरण के समान ही चण्डेश के शीश का स्पर्श करता वरद-मुद्रा में है। बायें हाथ की स्थिति अस्पष्ट है। द्विभंग में शिव के समक्ष चण्डेश अंजलिबद्ध-मुद्रा में विनयमूर्ति के रूप में उपस्थित हैं।

चण्डेशानुग्रह स्वरूप की अन्य विशेषताओं वाली मूर्तियाँ भी प्रस्तर एवं कांस्य में उपलब्ध हैं। ऐसी मूर्तियाँ चण्डेश, चण्डिकेश्वर एवं चण्डेश्वर नामों से विभिन्न चोल मन्दिरों की बाह्य भित्तियों एवं देवकुलिकाओं में आमूर्तित हैं। इस स्वरूप में सामान्यतया चण्डेश की आसीन या स्थानक आकृति जटामुकुट, कुण्डल, ग्रैवेयक, यज्ञोपवीत, भुज-बन्ध एवं कभी-कभी उदर-बन्ध से युक्त और अंजलिबद्ध-मुद्रा में कभी हाथ में परशु लिये या परशु कन्धे पर रखे दिखाया गया है। इस स्वरूप की मूर्तियाँ प्रस्तर एवं कांस्य दोनों ही माध्यमों में बनीं, जिनके अधिकतर उदाहरण चोल काल के हैं। राष्ट्रकूट काल की एक प्रस्तर मूर्ति एलोरा की लंकेश्वर गुफा में उत्कीर्ण है।

पल्लव कालीन दो और उदाहरण गणेश रथ (महाबलीपुरम्) एवं मातङ्गेश्वर मन्दिर (कांचीपुरम्) में हैं। दोनों ही उदाहरण प्रस्तर में निर्मित हैं। प्रारम्भिक चालुक्यों के समय की चण्डेश्वर मूर्ति का एक उदाहरण बादामी गुफा (कर्नाटक) में भी उत्कीर्ण है।

चण्डेश्वर अथवा चण्डिकेश्वर की प्रस्तर एवं कांस्य निर्मित मूर्तियों के चोल कालीन उदाहरण मुख्यतः सुन्दरेश्वर मन्दिर, तिरुकट्टालि (ल० नवीं शती ई०); तिरुदूम्बरेश्वरम् मन्दिर, तिरुवेरुम्बूर (ल० नवीं शती ई०); पशुपतेश्वर मन्दिर, अल्लूर (ल० १०वीं शती ई०); उमा-महेश्वर मन्दिर, कोनेरिराडापुरम् (ल० १०वीं शती ई०); विरलेश्वर मन्दिर, किल्लूर (ल० १०वीं शती ई०); नटनपुरीश्वर मन्दिर, टण्डननतोत्तम (ल० १०वीं शती ई०); उद्वाहनेश्वर मन्दिर,

तिरुमञ्जरी (ल० १०वीं शती ई०); सेनवकेश्वर मन्दिर, परमेश्वरमंगलम् (ल० १०वीं शती ई०); त्यागराज मन्दिर, तिरुबरुर (ल० ९५० ई०); क्यारोहन—निलाय लक्ष्मी मन्दिर, तंजौर (ल० ९५० ई०); ओप्पीलमणिस्वर मन्दिर, अरकन्डनलूर (ल० ११वीं शती ई०); विकर्मारोलिश्वर मन्दिर, उदय्यौश्वर, चिदम्बरम् (ल० १०वीं शती ई०); बृहदीश्वर मन्दिर, तंजौर (ल० ११वीं शती ई०); परिजातवनेश्वर स्वामी मन्दिर, तिरुकल्लूर (ल० ११वीं शती ई०); सिद्धरलेश्वर मन्दिर, उट्टूर (ल० ११वीं शती ई०); जम्बूकेश्वरम्, तिरुवनेक्था (ल० ११वीं शती ई०) एवं पिरावामरुनतिश्वर मन्दिर, तंजौर (ल० ११वीं शती ई०) से प्राप्त हुए हैं। तमिलनाडु से प्राप्त एक उत्कृष्ट मूर्ति वर्तमान में डटोन कालिज, लन्दन (ल० १३वीं शती ई०) में सुरक्षित है।

चण्डेशानुग्रह स्वरूप शिव-भक्त का शिव के प्रति भक्ति की पराकाष्ठा का मूर्तिमान स्वरूप है, जहाँ भक्त अपने आराध्य से इतना जुड़ जाता है कि लौकिक सम्बन्ध अर्थहीन हो जाते हैं। विचारशर्मन् शिवभक्ति में बधाँ और पिता द्वारा शिव के अपमान के फलस्वरूप शिवभक्त विचारशर्मन् द्वारा अपने पिता के पैर काटने का सन्दर्भ इसी भाव भूमि पर बना। फलस्वरूप शिव स्वयं भक्त पर अनुग्रह करने के लिए प्रस्तुत होते हैं। शिव द्वारा विचारशर्मन् को 'चण्ड' की उपाधि प्रदान करना तथा स्वयं उसके मस्तक पर उष्णीष बाँधकर अपने अनुग्रह को प्रत्यक्ष करना इस मूर्ति स्वरूप का वैशिष्ट्य है। इस स्वरूप की मूर्तियों का उत्कीर्णन आठवीं शताब्दी में पल्लव काल से ही प्रारम्भ हो गया था।

सम्पूर्ण अध्ययन से स्पष्ट है कि चण्डेशानुग्रह स्वरूप केवल दक्षिण भारत में ही लोकप्रिय था। उत्तर भारत में न तो इस स्वरूप का साहित्यिक सन्दर्भ मिलते हैं और न ही मूर्त उदाहरण जबकि दक्षिण भारत में इस स्वरूप की मूर्तियाँ तथा उनके साहित्यिक सन्दर्भ दोनों ही उपलब्ध हैं। दक्षिण भारत के साहित्यिक सन्दर्भों के आधार पर ही पल्लव एवं चोल कालीन मन्दिरों में शिव के चण्डेशानुग्रह स्वरूप का अंकन हुआ और उनमें एक विकास क्रम भी मिलता है। पल्लव कालीन कैलाशनाथ, मातंगेश्वर एवं मुक्तेश्वर मंन्दिरों की चण्डेशानुग्रह मूर्तियों में एकल शिव चतुर्भुज रूप में चण्डेश का सम्मान करते या उस पर अनुग्रह करते दिखाये गये हैं। विकास की दृष्टि से अगर देखें तो इन उदाहरणों में कांचीपुरम् के कैलाशनाथ मन्दिर का उदाहरण अपने अंकन और विषयवस्तु दोनों ही दृष्टियों से समृद्ध और जीवन्त है। इस मूर्ति में चण्डेशानुग्रह की कथा के तीनों अंश क्रमबद्ध रूप में प्रदर्शित किये गये हैं। इसमें पिता (यज्ञदत्त) के पैरों पर विचारशर्मन् द्वारा प्रहार, अपने पुत्र के इस अप्रत्याशित व्यवहार से हतप्रभ और घायल होकर गिरते पिता की आकृति और बालक विचारशर्मन् की इस अपार

भक्ति से प्रसन्न शिव द्वारा उसे चण्डेश पद प्रदान कर उस पर अनुग्रह करने का अंकन हुआ है।

चोल पुरास्थलों से प्राप्त चण्डेशानुग्रह मूर्तियों की अपनी विशिष्टताएँ परिलक्षित होती हैं। तंजौर, गंगैकोण्डचोलपुरम्, चिदम्बरम् जैसे कला-केन्द्रों से इस स्वरूप के जो उदाहरण मिलते हैं, उनमें तुलनात्मक विकास और रचनाप्रक्रिया स्पष्ट दृष्टिगत होती है। चोल कालीन उदाहरणों में पल्लव शैली की एकल शिव प्रतिमाओं से अलग शिव को पार्वतीसहित आसीन और भक्त चण्डेश पर अनुग्रह करते दरशाया गया है। पार्वतीसहित आसीन चतुर्भुज शिव हाथों में परशु तथा मृग लिये हैं जबकि शेष दो हाथों से शिव बालक चण्डेश के मस्तक पर पुष्पों की माला से उष्णीष बाँधते दिखाये गये हैं। यह स्वरूप *उत्तरकामिकागम्* में वर्णित सन्दर्भ से निर्दिष्ट है।

चोल काल में इन मूर्तियों की इतनी अधिक लोकप्रियता थी कि अनेक चोल मन्दिरों में इस स्वरूप का स्पष्ट अथवा सांकेतिक अंकन हुआ है। गंगैकोण्डचोलपुरम् के बृहदीश्वर मन्दिर की एक रथिका में इस स्वरूप का श्रेष्ठतम् अंकन द्रष्टव्य है, जिसमें शिव चण्डेश के सिर पर पुष्पमाला से उष्णीष को दोनों हाथों से स्नेहपूर्वक बाँधते हुए निरूपित हैं जो शिव की असीम कृपा का मूर्त अंकन है और इसकी पृष्ठभूमि में कहीं न कहीं मन्दिर के निर्माणकर्त्ता शासक राजेन्द्र चोल की स्वयं की चण्डेश के रूप में प्रस्तुति और इस प्रकार शिव का अनुग्रह प्राप्त करने की इच्छा भी रही है।

उपरोक्त मूर्तियों में बालक विचारशर्मन् सामान्यतः परशु अथवा टंक लिये या अंजलिबद्ध और शिव के समक्ष विनयावनत् रूप मे आमूर्तित हैं। शिव के प्रकट होने के पूर्व बालूकालिङ्ग की पूजा के अतिरिक्त विचारशर्मन् द्वारा पिता के पैरों पर कुल्हाड़ी मारने का चण्डरूप विभिन्न उदाहरणों में सजीव रूप में अंकित हुआ है।

पाद-टिप्पणी

१. सी०वी० नारायण अय्यर, *ओरिजिन ऐण्ड अर्ली हिस्ट्री ऑफ शैविज्म इन साउथ इण्डिया*, मद्रास, १९७४, पृ० १७१
२. *वही*, पृ० १७२
३. आर० नागास्वामी, *मास्टरपीसेज ऑफ अर्ली साउथ इण्डियन ब्रोन्जेज*, नई दिल्ली, १९८३, पृ० १२३
४. *ए०हि०आ०*, खं० दो, अं० एक, पृ० २०५-२०७
५. प्रतापादित्य पाल, *इण्डियन स्कल्प्चर*, (खं० दो), लांस एंजिल्स, पृ० १५१

६. डी०एन० शुक्ला, *भारतीय वास्तुशास्त्र एवं प्रतिमा विज्ञान*, लखनऊ, १९५६
७. आर० नागास्वामी, *पू०नि०*
८. *ए०हि०आ०, पू०नि०*, पृ० १०६-१०७
९. *वही*
१०. के०आर० श्रीनिवासन्, *दि धर्मराज रथ ऐण्ड इट्स स्कल्प्चर्स, महाबलीपुरम्*, नई दिल्ली, १९७५, पृ० २७
११. *ए०हि०आ०, पू०नि०*, पृ० २०९
१२. डी०आर० राजेश्वरी, *दि पल्लव स्कल्प्चर*, नई दिल्ली, १९८८, पृ० ९६
१३. *आ०अ०मे०सा०इ०*, पृ० २६५
१४. *वही*, पृ० २६९
१५. आर०नागास्वामी, *गंगैकोण्डचोलपुरम्*, तमिलनाडु, १९७०, पृ० ३२; *भ०भा० मू०*, पृ० ४३ एवं *भ०भा०प्र०*, पृ० ४४
१६. सी० शिवराममूर्ति, *ऐन एलबम ऑफ इण्डियन स्कल्प्चर*, दिल्ली, १९७५, पृ० २७
१७. आर० नागास्वामी, पुण्डरीकपुरम् टेम्पुल ऐण्ड इट्स स्कल्प्चर्स, *रूप-लेखा*, खं० ३२, अं० एक-दो, १९६१, पृ० ५७
१८. एम० रामाराव, *शैवाइट डिटीज ऑफ आन्ध्र प्रदेश*, तिरुपति, १९६६, पृ० ८१

षष्ठ अध्याय

विष्णवनुग्रह एवं नन्दीशानुग्रह मूर्तियाँ

विष्णवनुग्रह मूर्तियाँ

विष्णवनुग्रह मूर्ति स्वरूप अथवा चक्रदान मूर्ति स्वरूप का कथात्मक एवं प्रतिमा लाक्षणिक वर्णन विभिन्न ग्रन्थों में मिलता है, परन्तु मूर्तियाँ संख्या की दृष्टि से शिव की अन्य अनुग्रह मूर्ति स्वरूपों की तुलना में अत्यल्प हैं। इतनी रोचक विषयवस्तु होते हुए भी कम अंकन होने का कारण सम्भवतः यह है कि यह स्वरूप भारतीय शिल्पकारों को लुभा नहीं सका। यह भी हो सकता है कि उस समय की राजनैतिक एवं धार्मिक स्थिति ने विशेष रूप से शिल्पियों को प्रभावित किया हो। इस स्वरूप के उदाहरण आरम्भिक मध्य काल से लेकर उत्तर-मध्य काल तक, विभिन्न राजवंशों यथा—पल्लव, चोल एवं चालुक्य काल में विभिन्न पुरास्थलों (कांचीपुरम्, गंगैकोण्डचोलपुरम् एवं पाटलगंगा) से प्राप्त होते हैं। इस स्वरूप में श्रीहरि विष्णु पर शिव ने अपनी अनुकम्पा की तथा उन्हें इच्छित शस्त्र प्रदान किया। कथा के अनुसार देवों को असुरों द्वारा लगातार परेशान किये जाने पर सभी देवतागण विष्णु की शरण में आये और दैत्यों से देवों की रक्षा करने की प्रार्थना की। इस पर विष्णु ने उन्हें अभय-दान भी दिया, परन्तु अपने सारे अस्त्रों को निष्फल होते देखकर विष्णु ने शिव-सहस्रनाम का जाप और सहस्र पद्म-पुष्प के माध्यम से शिव आराधना प्रारम्भ की। शिव ने कौतुकवश एवं विष्णु के भक्ति की परीक्षा के लिए एक पद्म-पुष्प कम कर दिया। परिणामस्वरूप कमललोचन विष्णु ने स्वनेत्र को ही शिव को अर्पित कर दिया, जिससे शिव प्रसन्न हुए और उन्होंने विष्णु को 'सुदर्शन चक्र' प्रदान किया। इस कथा का उल्लेख *महाभारत, शिवपुराण* एवं *वामनपुराण* में मिलता है तथा प्रतिमालाक्षणिक स्वरूप का वर्णन मुख्यतः *उत्तरकामिकागम्, श्रीतत्त्वनिधि, उत्तरकारणागम्* जैसे दक्षिण भारतीय शिल्पशास्त्रीय ग्रन्थों में प्राप्त होता है। विष्णवनुग्रह स्वरूप के कुल तीन उदाहरण कांचीपुरम् (कैलाशनाथ मन्दिर), गंगैकोण्डचोलपुरम् (बृहदीश्वर मन्दिर) एवं पाटलगंगा स्थित श्रीशैलम् मन्दिर से प्राप्त होते हैं।

शिवपुराण (कोटिरुद्र संहिता, अध्याय ३४) के अनुसार एक बार दैत्य अत्यन्त बलशाली हो गये और उन्होंने मानव, ऋषियों एवं देवताओं को प्रताड़ित करना प्रारम्भ कर दिया। सभी ने उनका (दैत्यों) प्रतिकार किया, परन्तु सफल न

हो सके। अन्ततः देवतागण श्रीहरि विष्णु की शरण में अपनी रक्षा की प्रार्थना लेकर गये। शरणागत देव एवं ऋषियों का पूरा वृत्तान्त सुनने के पश्चात् भक्तवत्सल विष्णु ने उन्हें आश्वासन दिया। विष्णु को उनके कष्टों के निवारण और दैत्यों के संहार करने हेतु एक विशेष अस्त्र की आवश्यकता थी, जिसके लिए उन्होंने शिव की कठोर तपस्या आरम्भ की। शिवाराधना के क्रम में विष्णु प्रत्येक दिन शिव-सहस्त्रनाम का जाप करते एवं प्रत्येक नामों के उच्चारण के साथ एक पद्म-पुष्प शिवलिङ्ग पर अर्पित करते थे। शिव ने कौतुकवश एवं विष्णु के भक्ति की गहराई जानने के उद्देश्य से ऐसी लीला रची कि एक पद्म-पुष्प कम पड़ गया।

परीक्षार्थं विष्णुभक्तेस्तदा वै शंकरेणह।
कमलानां सहस्त्रात्तु ह्रतमेकं च नीरजम्॥ २०॥

उस पद्मपुष्प को विष्णु ने आकाश, पृथ्वी तक में खोज डाला परन्तु उसको न पा सके। अन्ततः श्रीहरि ने अपने कमल जैसे दृग (क्योंकि उन्हें कमललोचन भी कहा गया है) को निकालकर शिव को अर्पित कर दिया।

बभ्राम सकलां पृथ्वीं तत्प्रीत्यै सुदृढव्रतः।
तदप्राप्य विशुद्धात्मा नेत्रमेकमुदाहरत्॥ २२॥
तं दृष्ट्वा स प्रसन्नोऽभूच्छंकरस्संर्वदुःखहा।
आविर्बभूव तत्रैव जमाद वचनं हरिम्॥ २३॥

विष्णु के इस अप्रत्याशित उपक्रम एवं प्रगाढ़ भक्ति से शिव अत्यन्त प्रसन्न हुए। शिव विष्णु के सम्मुख प्रकट हुए और बोले "श्रीहरि मैं आपकी तपस्या से अत्यन्त प्रसन्न हूँ अतः आप हमसे कोई भी वर माँग लें। आपके लिए कुछ भी अदेय नहीं है।" तब श्रीहरि विष्णु ने कहा "आप तो अन्तर्यामी हैं, परन्तु आपने आज्ञा दी है इसलिए वर माँगना ही होगा। उसी के आदेशानुसार मैं दैत्यों से देवताओं की सुरक्षा के लिए आपसे एक उत्तम शस्त्र की कामना करता हूँ, क्योंकि उन पर मेरे अस्त्र-शस्त्र प्रायः निष्फल हो रहे हैं।"

किं करोमि क्व गच्छामि नान्यो मे रक्षकः परः।
अतोऽहं परमेशान शरणं त्वां समागतः॥ २८॥

श्रीहरि विष्णु के इस प्रकार के उत्तम वचन सुनकर परम कृपालु महादेव शंकर ने उन्हें अपना प्रिय, अनुपम एवं तेजोमय रूपराशि वाला शस्त्र 'सुदर्शन चक्र' प्रदान कर उन पर परम अनुग्रह किया।[१]

इति श्रुत्वा वचो विष्णोर्देवदेवो महेश्वरः।
ददौ तस्मै स्वकं चक्रं तेजोराशिं सुदर्शनम्॥ ३०॥

महेश्वर ने श्रीहरि को चक्र प्रदान करते हुए कहा कि "आप बिना किसी अतिरिक्त परिश्रम के सभी दैत्यों के संहार में सक्षम होंगे।"

इसी प्रकार *महाभारत* के अनुशासनपर्व (दान-धर्मपर्व, १४वें अध्याय) के अनुसार श्रीकृष्ण शिव की तपस्या के लिए हिमालय में स्थित महर्षि उपमन्यु के आश्रम में पहुँचे। महाज्ञानी उपमन्यु ने उनके वास्तविक स्वरूप (नारायण या श्रीहरि विष्णु) को जान लेने के पश्चात् उन्हें अर्थात् श्रीकृष्ण को तपस्या के लिए प्रेरित करते हुए प्रसङ्गवश कहा कि "आप यहाँ तपस्या करें, क्योंकि यहाँ पर शिव पार्वतीसहित विराजते हैं।"

तपः सुमहदास्थाय तोषयेशानमीश्वरम्।
इह देवः सपत्नीकः समाक्रीडत्यधोक्षज॥ ६९॥

इसी क्रम में उपमन्यु ने पुनः प्रसङ्गवश श्रीकृष्ण से 'सुदर्शन चक्र' का वर्णन करते हुए कहा कि "यह चक्र स्वयं शिव से उत्पन्न है। इस उत्तम एवं अद्भुत तेज से युक्त चक्र से शिव ने जल में निवास करने वाले जलोद्भव नामक दैत्य का संहार किया था जिसके पश्चात् उसे आपको प्रदान किया था। चक्र अद्भुत एवं अजेय है।"[२]

यत् तद् भगवता पूर्वं दत्तं चक्रं तवानघ।
जलान्तरचरं हत्वा दैत्यं च बलगर्वितम्॥ ७६॥
उत्पादितं वृषाङ्केन् दीप्तज्वलनसंनिभम्।
दत्तं भगवता तुभ्यं दुर्धर्ष तेजसाद्भुतम्॥ ७७॥

महाभारत में इस कथा का वर्णन संकेतों के माध्यम से हुआ है जिसके अन्तर्गत दैत्यों के संहार के लिए स्वयं शिव ने इस अद्भुत चक्र को उत्पन्न किया तथा दैत्यों का संहार करने के पश्चात् उसे श्रीहरि विष्णु को दे दिया। *महाभारत* का यह अंश *शिवपुराण* से कुछ भिन्नता रखते हुए भी काफी साम्य रखता है।

वामनपुराण (८२वें अध्याय) में इस कथा का उल्लेख *महाभारत* की भाँति संकेतों के माध्यम से हुआ है जिसका वर्णन श्लोक संख्या २३ से ३९ के मध्य हुआ है। *वामनपुराण* के अनुसार श्रीदामा नामक दैत्य के संहार हेतु महादेव ने अपना अनुपम तेजोमय शस्त्र 'सुदर्शन चक्र' श्रीहरि को प्रदान किया।

ततः प्रीतः प्रभुः प्रादाद्विष्णवे परमं पद्म।
प्रत्यक्षतेजसा युक्तं दिव्यं चक्रं सुदर्शनम्॥ २३॥
कालचक्रनिभं चक्रं शंकरो विष्णुभब्रवीत्।

शिव ने विष्णु को 'सुदर्शन चक्र' के प्रकृति व गुणों के विषय में भी विस्तार से बताया था।[३]

प्राकृतोऽयं महाभाग विकारो ब्रह्मणो मम।
निकृतो न स्वभावो मे अच्छेद्योऽदाह्य एव हि॥ ३८॥
तदेतानीह चक्रेण त्रीण्याङ्गानीह केशव।
कृत्तानि तानि पुण्यानि भविष्यन्ति न संशयः॥ ३९॥

साथ ही *वामनपुराण* में 'सुदर्शन चक्र' द्वारा स्वयं से वर्णित १२ वाक्य एवं छः कारणों का भी उल्लेख है।[४]

आरासंस्थास्त्वमी तत्र देवा मासाश्च राशयः।
शिष्टानां रक्षणार्थाय संस्थिता ऋतपश्चषद्॥ ४२॥

इस प्रकार *वामनपुराण* में भी केवल शिव द्वारा विष्णु को चक्र देने की ही बात की पुष्टि होती है, परन्तु कथा के अन्य पक्षों यथा—विष्णु की तपस्या अथवा चक्षुदान का सन्दर्भ *महाभारत* की तरह *वामनपुराण* में भी नहीं मिलता है।

विष्ण्वनुग्रह स्वरूप का शिल्पशास्त्रीय वर्णन विभिन्न दक्षिण भारतीय आगम ग्रन्थों में मिलता है।

उत्तरकामिकागम् के ५५वें पटल में विष्ण्वनुग्रह मूर्तिस्वरूप के लक्षण के अन्तर्गत कहा गया है कि चतुर्भुज शिव अर्द्ध-पद्मासन में त्रिनेत्र, जटामुकुट से युक्त ऊर्ध्व करों में टंक (परशु) एवं मृग धारण किए होंगे, जबकि दो सामान्य करों में से दायें हाथ से शिव विष्णु को चक्र प्रदान करते तथा बायें हाथ से वरद-मुद्रा का प्रदर्शन करते दिखाये जायेंगे। चतुर्भुज विष्णु शिव के बायीं ओर स्थानक स्वरूप में वनमाला, पीताम्बर, कौस्तुभ-मणि से आभूषित एवं अंजलिबद्ध (दो सामान्य कर जिसमें चक्र विद्यमान होगा चक्र प्राप्ति के बाद अंकन का होगा) होंगे। विष्णु के ऊर्ध्व करों में शंख एवं पद्म होगा। इस स्वरूप में विष्णु की आँखें महेश्वर के चरणों पर स्थिर होंगी।[५]

नन्दीशानुग्रहस्त्वेवं तद्वद्विष्णुप्रसादकृत्।
हित्वा नन्दीश्वरं तस्मिन्विष्णुं तल्लक्षणान्वितम्॥
सचक्राञ्जलिहस्तं च शंङ्खाब्जापरहस्तकम्।
कारयेद्देव एष स्याच्चक्रदो विष्णुमूर्तिनः॥
कारयेदेवमेवान्यप्रसादाभिमुखं शिवम्।[६]

श्रीतत्त्वनिधि के अनुसार शिव चतुर्भुज स्वरूप में उपरोक्त लक्षणों से युक्त होंगे परन्तु *उत्तरकामिकागम्* की भाँति शिव के ऊर्ध्व एक कर में टंक के स्थान पर परशु का उल्लेख हुआ है। विष्णु का अंकन पूर्व की भाँति भक्तिभाव से युक्त चतुर्भुज स्वरूप में तथा ऊर्ध्व करों में शंख एवं चक्र से युक्त होगा। सामान्य दो कर अंजलिबद्ध-मुद्रा में निरूपित करने का उल्लेख हुआ है। *श्रीतत्त्वनिधि* के अनुसार विष्णु को अपनी पूजा समाप्त करने के पश्चात् शिव से अनुग्रह स्वरूप चक्र प्राप्त करते दिखाये जाने तथा शिव द्वारा विष्णु को पीताम्बर, कौस्तुभ-मणि और चक्र प्रदान करते दिखाये जाने का वर्णन हुआ है। इसमें विष्णु के 'राजीवलोचन' तथा 'कमलाक्ष' नाम भी बताये गये हैं।[७]

विष्णुस्त्वीशपुरःस्थितोऽञ्जलिकरो देवस्य पदाब्जयो-
स्संस्थाप्याक्षिलसत्सुमाल्यमनिशं पीताम्बरं कौस्तुभम्।
यस्तस्मै दयया परं पशुपतिं पद्माक्ष इत्याख्यया
टङ्कं कृष्णमृगं वरं च दधतं चक्रप्रदं तं भजे॥
एकवक्त्रं त्रिनेत्रं च जटामकुटसंयुतम्।
दधमेणं च परशुं वरं च चैव वामके॥
दक्षिणे चक्रसंयुक्तं दातृरूपमिहोच्यते।
देवस्य वामभागे तु श्यामरूपं सुसंस्थितम्॥
सर्वाभरणसंयुक्तं पीतवस्त्रोत्तरयिकम्।
शङ्खचक्रसमायुक्तमुत्तरे चाञ्जलिं न्यसेत्॥
एवं लक्षणसंयुक्तं विष्णुरूपमिहोच्यते।

उत्तरकारणागम् के अनुसार चतुर्भुज शिव अर्द्ध-पद्मासन में आसीन होंगे। शिव जटामुकुट एवं आभूषणों से आभूषित तथा ऊर्ध्व करों में टंक और कृष्णमृग (*उत्तरकामिकागम्* के समान) एवं अन्य करों में क्रमशः चक्र एवं वरद-मुद्रा धारण किये होंगे। इसमें शिव के बायें पार्श्व में पार्वती के होने का भी उल्लेख मिलता है, जो अन्य दक्षिण भारतीय शिल्पशास्त्रीय ग्रन्थों में नहीं प्राप्त है। पार्वती के नीचे स्थानक ब्रह्मा के अंकन का निर्देश है। बायीं ओर अंजलिबद्ध-मुद्रा में शिवाराधना में संलग्न विष्णु कमलपुष्प या आँख प्रदान करते, शिव को प्रसन्न करने वाले भाव के साथ निरूपित होंगे।[६]

अथातस्संप्रवक्ष्यामि सर्वभूतहिताय च।
चक्रदानस्वरूपं तु शृणु (ष्व) शरवणोद्भव॥
त्रिनेत्रं चतुर्भुजं शान्तं जटामकुटमण्डितम्।
वामपादं तु शयनं लम्बितं सव्यपादकम्॥
टङ्कं रथाङ्गं सव्ये च वर (दं) कृष्णमृगं तथा।
वामे विष्णुसमायुक्तं कृताञ्जलिपुटान्वितम्॥
वामे गौरीसमायुक्तमुत्तरे परमेष्ठिनम्।
सर्वावयवसंयुक्तं सर्वलक्षणसंयुतम्॥
पद्मपुष्पं समभ्यर्च्य हरिणा नेत्रपूजितम्।
प्रभामण्डलमध्यस्थं शिरश्चक्रसमायुतम्॥
एवं कल्प्य विशेषेण प्रतिष्ठां शृणु षण्मुख।

सामान्यरूप से चक्रदान अथवा विष्ण्वनुग्रह स्वरूप में त्रिनेत्र एवं चतुर्भुज शिव जटामुकुट एवं सामान्य आभूषणों से आभूषित दिखाये जायेंगे। उनके ऊर्ध्व करों में टंक या परशु तथा मृग का अंकन होगा, जबकि सामान्य करों से चक्र प्रदान करने की मुद्रा एवं वरद अथवा अभय-मुद्रा व्यक्त होंगी। शिव के बायीं ओर नीचे चतुर्भुज विष्णु किरीट मुकुट, पीताम्बर एवं कौस्तुभ-मणि से सुसज्जित

होंगे। विष्णु के दो ऊर्ध्व करों में शंख एवं पद्म होगा तथा सामान्य करों से अंजलिबद्ध-मुद्रा प्रदर्शित होगी। *उत्तरकारणागम्* के अनुसार शिव के वाम पार्श्व में पार्वती भी उपस्थित होंगी।

कैलाशनाथ मन्दिर, कांचीपुरम् (तमिलनाडु) के उत्तरी प्रकार की देवकुलिका में विष्ण्वनुग्रह (चित्र ४३, रेखा चित्र ४) की प्रतिमा रावणानुग्रह मूर्ति के पार्श्व में उत्कीर्ण है। यह प्रतिमा अब तक ज्ञात विष्ण्वनुग्रह मूर्तियों में सर्वप्राचीन है। इस मूर्ति में एक ऊँचे पीठासन पर शिव-पार्वती अर्द्धपर्यंकासन में विराजमान हैं। त्रिनेत्र एवं चतुर्भुज शिव जटामुकुट एवं अन्य सामान्य अलङ्करणों से अलंकृत हैं। शिव के ऊर्ध्व करों में परशु एवं मृग हैं, जबकि सामान्य दो करों से शिव विष्णु को चक्र प्रदान करने की मुद्रा तथा वरद-मुद्रा का प्रदर्शन करते निरूपित हैं। वाम पार्श्व में द्विभुजा पार्वती को सुखासन में पद्मनाल सहित दिखाया गया है। शिवासन के नीचे चतुर्भुज विष्णु घुटने मोड़कर शिवार्चना में संलग्न हैं। इस उपक्रम में विष्णु पूर्ण भक्तिभाव से एक बायें हाथ से अपनी आँख निकालते एवं दूसरे दायें हाथ से उसे शिवलिङ्ग पर अर्पित करते रूपायित हैं।[९] विष्णु के अन्य हाथों में शंख एवं चक्र है साथ ही विष्णु किराटमुकुट एवं अन्य आभूषणों से आभूषित हैं। कैलाशनाथ मन्दिर की यह मूर्ति *उत्तरकारणागम्* में वर्णित प्रतिमालक्षण से साम्य रखती है। इस मूर्ति के परिकर में शिव-पार्वती की आकृति के ऊपर दो अनुचर आकृतियों को इस लीला का विस्मय-भाव से दर्शन करते निरूपित किया गया है। एक अन्य देवाकृति को विष्णु के पास अंजलिबद्ध-मुद्रा में दिखाया गया है। इसमें एक ही मूर्ति के माध्यम से शिल्पी ने कथा के सभी पक्षों का समावेश कर लिया है, जिसमें शिव महिमा से एक पद्म-पुष्प की कमी होने पर कमलाक्ष विष्णु ने स्वनेत्र शिव को अर्पित कर दिया तथा शिव ने प्रसन्न होकर इच्छित वर के रूप में विष्णु को 'सुदर्शन चक्र' प्रदान किया। राजसिंह शैली की इस मूर्ति में विष्णु का भक्तिभाव के साथ सुन्दर अंकन हुआ है।[१०] इस मूर्ति में विष्णु की गहन भक्ति और परिणामस्वरूप विष्णु को प्राप्त हो रही शिव कृपा या अनुग्रह का अद्‌भुत अंकन हुआ है । शिल्पी ने इस मूर्ति के माध्यम से सम्भवतः शैव सम्प्रदाय की वैष्णव सम्प्रदाय पर श्रेष्ठता तथा किन्हीं अर्थों में सम्पृक्त रूप में उनके ऐक्य भाव को भी व्यक्त किया है।[११]

विष्ण्वनुग्रह स्वरूप की दूसरी मूर्ति बृहदीश्वर मन्दिर, गंगैकोण्डचोलपुरम् की पश्चिमी भित्ति रथिका में उत्कीर्ण है। वर्तमान में यह मूर्ति काफी ऋतुक्षरित हो चुकी है, फिर भी चोल कालीन (ल० ११वीं शती ई०) यह उदाहरण भावाभिव्यक्ति की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण है। इस मूर्ति में शिव-पार्वती सुखासन में विराजमान हैं। त्रिनेत्र एवं चतुर्भुज स्वरूप में शिव जटामुकुट आदि अलंकरणों से युक्त हैं। शिव के ऊर्ध्व करों में परशु एवं मृग है तथा सामान्य हाथों में बायाँ हाथ घुटने पर स्थित है जबकि दायाँ हाथ सम्भवतः विष्णु को चक्र प्रदान करने

की मुद्रा में है। वाम पार्श्व में सर्वाभूषित द्विभुजा पार्वती एक हाथ में सनालपद्म धारण किये अंकित हैं। शिवासन के नीचे सम्भवतः विष्णु की आकृति थी, जो ऋतुक्षय प्रभाव से प्रायः नष्ट हो चुकी है। शिवासन के ऊपर दो चामरधारी अनुचर आकृतियाँ दृश्यावलोकन करती निरूपित हैं। मुख्य रथिका के दायें व बायें पार्श्वों की भित्ति पर कथा के शेष भाग का अंकन हुआ है, जिसमें बायीं ओर की भित्ति पर सर्वोपरि चन्द्रमा, मध्य में दो अनुचर या पूजा करती मानव आकृति और सबसे नीचे विष्णु को शिवाराधना में संलग्न दिखाया गया है। इसी प्रकार दायीं भित्ति पर सबसे ऊपर सूर्य और मध्य में दो मानव आकृतियाँ उकेरी हैं। नीचे का अंकन प्रायः नष्ट हो चुका है, जिसके कारण उसकी पहचान सम्भव नहीं है।[१२] इस मूर्ति में भी कांचीपुरम् के कैलाशनाथ मन्दिर के उदाहरण की भाँति सम्पूर्ण कथा का अंकन विस्तार के साथ हुआ है। सूर्य-चन्द्रमा की उपस्थिति यहाँ विशेषतः द्रष्टव्य है, जो इस बात का प्रमाण है कि जब तक सृष्टि है तब तक इसे सत्य माना जाना चाहिए। इसके माध्यम से शिल्पी ने विष्णु द्वारा शिव की निरन्तर आराधना का प्रमाण भी प्रस्तुत किया है। सृष्टि के इन प्रमुख उपादनों की उपस्थिति में विष्णु द्वारा शिव के प्रति असीम भक्ति का प्रदर्शन एवं शिव द्वारा विष्णु को इच्छित वर के स्वरूप 'सुदर्शन चक्र' प्रदान करने का सुन्दर अंकन हुआ है।

विष्ण्वनुग्रह अथवा चक्रदान स्वरूप का तीसरा उदाहरण श्रीशैलम् मन्दिर, पाटलगंगा (आन्ध्र प्रदेश) से प्राप्त है। उपरोक्त दोनों उदाहरणों की भाँति शिव-पार्वती का अंकन हुआ है, परन्तु यहाँ शिव-पार्वती स्थानक रूप में हैं। त्रिनेत्र व चतुर्भुज शिव जटामुकुट एवं अन्य आभूषणों से आभूषित हैं। शिव के ऊर्ध्व करों में परशु एवं मृग है तथा सामान्य करों से शिव नीचे खड़े विष्णु पर अनुग्रह करने के भाव सहित चक्र प्रदान करने की मुद्रा में दिखाये गये हैं। वामांगी पार्वती द्विभंग में खड़ी हैं जिनके दायें हाथ में सनालपद्म है जबकि बायें हाथ से देवी शिव स्कन्ध पर टेक लगाये हैं। नीचे किरीट-मुकुट एवं अन्य आभूषणों से अलंकृत चतुर्भुज विष्णु की आकृति है जिनके ऊर्ध्व करों में शंख एवं चक्र तथा दो सामान्य करों से अंजलिबद्ध-मुद्रा प्रदर्शित है।[१३] इस मूर्ति में शिव एवं विष्णु दोनों प्रसन्नवदन हैं। विष्णु भक्तिभाव से परिपूर्ण रूपायित हैं। इसमें कथा के अन्तिम भाग को जिसमें शिव प्रसन्न होकर विष्णु को चक्र प्रदान करते और उसके पश्चात् विष्णु को शिवकृपा से अभिभूत होते दिखाया गया है।

उपरोक्त तीनों मूर्तियों में *श्रीतत्त्वनिधि* में उल्लिखित एवं *शिवपुराण* (कोटिरुद्र संहिता) में वर्णित कथा का पूरी तरह अनुपालन हुआ है। केवल श्रीशैलम् मन्दिर वाले उदाहरण में शिव-पार्वती को स्थानक रूप में दिखाया गया

है। विष्णवनुग्रह के कथात्मक विवरण एवं अंकन से स्पष्ट है कि मध्यकाल तक आते-आते कतिपय कारणों से ब्रह्मा की महत्ता में आयी कमी से शैव एवं वैष्णव सम्प्रदाय ने अपनी-अपनी श्रेष्ठता सिद्ध करने के लिए अनेकानेक आख्यान एवं मूर्ति स्वरूपों की रचना की, जिससे दोनों सम्प्रदायों में कहीं कटुता और कहीं समन्वय की भावना व्यक्त हुई है। टकराहट को टालने के लिए सम्पृक्त अथवा संघाट (संघात) स्वरूपों की कल्पना ने एक आकार लिया जिसने शैव, वैष्णव, शाक्त, सौर एवं गाणपत्य सम्प्रदायों को एकसूत्र में पिरोने का काम किया गया।

नन्दीशानुग्रह मूर्तियाँ

शिव के अन्य अनुग्रह स्वरूपों की भाँति नन्दीशानुग्रह स्वरूप का भी महाकाव्यों, पुराणों एवं शिल्पशास्त्रीय ग्रन्थों में विस्तार से उल्लेख हुआ है, परन्तु इस स्वरूप का प्रतिमा के रूप में अंकन प्रायः नगण्य है। इस स्वरूप में बालक नन्दी ने अपनी आयु की समाप्ति जानकर शिव की कठिन तपस्या की और अन्ततः शिव को प्रसन्न किया। उसकी इस प्रगाढ़ भक्ति से प्रसन्न शिव ने उसे अपने जैसा स्वरूप प्रदान किया, जिससे वह 'द्वितीय शंकर' सा प्रतीत होने लगा। साथ ही साथ शिव ने उसे अपने पार्षद एवं गणों का अध्यक्ष भी नियुक्त किया। शिव की इस असीम कृपा को भारतीय साहित्य में नन्दीशानुग्रह के रूप में नन्दी के ऊपर शिव के अनुग्रह के रूप में मान्यता मिली। इस स्वरूप का कथात्मक विवरण *रामायण, वराहपुराण, शिवपुराण, लिङ्गपुराण* एवं *भागवतपुराण* में विस्तार से हुआ है। साथ ही *विष्णुधर्मोत्तरपुराण* एवं *उत्तरकामिकागम्* जैसे शिल्पशास्त्रीय ग्रन्थों में प्रतिमा-लाक्षणिक सन्दर्भों की उपलब्धता विशेष रूप से द्रष्टव्य है। यहाँ यह स्पष्ट कर देना उपयुक्त होगा कि शिव वाहन नन्दी और बालक नन्दी का अलग-अलग अस्तित्व था। ये वह नन्दी है जिसका शिव द्वारा सम्मान किया गया हो, मुख्यद्वारपाल एवं कैलाश रक्षक के रूप में शिव द्वारा मान्य तथा गणों-पार्षदों का अध्यक्ष रहा हों, साथ ही प्रजापति दक्ष के यज्ञ के विध्वंस का कारण बना हो और गणेश के मस्तक छेदन के पश्चात् पुनः मस्तक को स्थापित करने जैसा महत्त्वपूर्ण कार्य शिव की आज्ञा से सम्पादित किया हो। रावण के कैलाशोत्तोलन से पूर्व उसके वानर मुख का उपहास उड़ाये जाने पर उसके समूल नाश का शाप देने जैसा अद्भुत कार्य करने वाले व्यक्तित्व का अनुग्रह मूर्तियों में शिल्पांकन न करना सर्वथा आश्चर्य एवं शोध का विषय है। एकल नन्दीकेश्वर के रूप में उत्तर एवं दक्षिण भारत के मन्दिरों के प्रवेशद्वारों पर द्वारपाल के रूप में एवं चोल कला में स्वतन्त्र रूप में, उमा-महेश्वर परिवार के रूप में, नटराज़ मूर्तियों में वाद्य-यन्त्रों के साथ और साथ ही काँस्य प्रतिमाओं के रूप में एकल नन्दिकेश्वर एवं कभी-कभी शक्ति के साथ चोल कालीन एवं अनेकानेक प्रतिमाओं का एक स्वतन्त्र वर्ग ही मिलता है।

शिवपुराण (शतरुद्रसंहिता) में अध्याय छः से सात तक नन्दीकेश्वर के जन्म और शिव तपस्या के पश्चात् शिव द्वारा अनुग्रह करने की कथा का विस्तारपूर्वक उल्लेख हुआ है जिसका सार अंश इस प्रकार है—

शिवपुराण के अनुसार काफी समय से पुत्रविहीन महर्षि शिलाद ने तपस्या से इन्द्र को प्रसन्न किया। परन्तु इन्द्र ने अयोनिज पुत्र देने में असमर्थता व्यक्त की एवं साथ ही देवाधिदेव महादेव को प्रसन्न करने की सम्मति भी दी और यह भी बताया कि शिव को प्रसन्न करने से ही इच्छित वर की प्राप्ति हो सकती है। महर्षि शिलाद ने तब शिव की कठोर तपस्या की, जिससे प्रसन्न होकर शिव ने स्वयं अयोनिज पुत्र के रूप में उत्पन्न होकर शिलाद के मनोरथ को पूर्ण किया। शिव का यह अंश नन्दी के नाम से जाना गया।

बालक नन्दी सात वर्ष की अवस्था तक सम्पूर्ण वेदशास्त्र में पारंगत हो गया। सात वर्ष की अवस्था पूर्ण होने पर एक दिन शिव की आज्ञा से मित्र एवं वरुण नामक दो मुनि, महर्षि शिलाद के आश्रम गए। उन्होंने शिलाद ऋषि को यह बताया कि अब नन्दी की आयु केवल एक ही वर्ष शेष रह गयी है। यह सुनकर मुनि शिलाद ने विलाप करना प्रारम्भ कर दिया। अपने पिता की यह दारुण दशा देखकर बालक नन्दी अत्यन्त दुःखी हुआ और अपने पिता को आश्वासन देते हुए बोला—"मैं मृत्यु पर विजय प्राप्त कर लूँगा" पिता द्वारा यह पूछने पर कि यह असम्भव कार्य कैसे सम्पन्न करोगे तो उसके उत्तर में नन्दी ने कहा "शिव-भक्ति से।" इस प्रकार बालक नन्दी ने वन के एकान्त स्थान में जाकर उग्र तप आरम्भ किया। उसका तप इतना उग्र था, जो बड़े-बड़े मुनियों के लिए भी दुष्कर था। उसने 'रुद्र-मन्त्र' का जाप करना प्रारम्भ किया। रुद्र-मन्त्र के जाप से शिव प्रसन्न हुए और उमासहित बालक नन्दी को दर्शन दिया। शिव ने नन्दी से कहा कि "तुमने उत्तम व्रत का पालन किया है, अतएव मैं तुम पर अत्यधिक प्रसन्न हूँ।" चरणों में गिरे नन्दी को उठाकर शिव ने उसे अपने हृदय से लगा लिया और कहा "तुम मेरे समान हो। तुम अजर, अमर, दुःखरहित और अक्षय होकर गणनायक बने रहोगे।" इस प्रकार भक्तवत्सल शिव ने पद्म निर्मित शिरोमाला अपने गले से उतारकर नन्दी के गले में डाल दिया तथा नन्दी का सम्मान करते हुए उसे अपने जैसा बलशाली और सदा पार्श्वगण के रूप में रहने का आशीर्वाद भी प्रदान किया। बालक नन्दी के गले में उपरोक्त फूलों की माला पड़ते ही वह नन्दीकेश्वर के रूप में त्रिनेत्र एवं दस भुजाओं से युक्त 'द्वितीय शंकर' सा प्रतीत होने लगा। शिव ने अपनी जटा से गंगाजल लेकर नन्दीकेश्वर का अभिषेक किया तथा पार्वती ने भी उसे अपना पुत्रवत् स्नेह प्रदान किया। इस प्रकार परम अनुग्रहकारी शिव ने उसे अपनी समस्त कृपा प्रदान की।[१४]

वराहपुराण में इस कथा का उल्लेख २११वें से २१२वें अध्याय के मध्य विस्तारपूर्वक हुआ है। पर्वतराज मन्दर के उत्तर में स्थित मृत्युञ्जवान पर्वत पर त्रेता युग में नन्दी नामक महातपस्वी ने शिव की कठोर तपस्या की।

ततस्त्रेतायुगे काले नन्दी नाम महामुनिः।
आरिराधयिषुः शर्वं तपस्तेपे महत् तदा॥ २११.३०॥

इनके इस कठोर तप के परिणामस्वरूप शिव प्रसन्न हुए और उन्हें दिव्य दृष्टि प्रदान की।

तदात्मदर्शनं प्रदात् स मुनेर्वृषभध्वजः॥
उक्तवांश्च मुनिं शर्वश्चक्षुर्दिव्यं ददामि ते।
अदृश्यं पश्य मे रूपं वत्स प्रीतोऽस्मि ते विभो॥ (२११.३५-३६)॥

दिव्य दृष्टि प्राप्त होने के पश्चात् नन्दी ने अद्‌भुत स्वरूप में विश्वरूपी शङ्कर का दर्शन किया। इस रूप में उन्होंने त्रिनेत्रधारी शिव के सहस्र नेत्र, सहस्र सिर, सहस्र बाहु, सहस्र उदर एवं सहस्र चरण सहित दिव्य स्वरूप का दर्शन किया। शिव के अंग-प्रत्यंग पर रुद्राक्ष की माला सुशोभित हो रही थी। शिव इस स्वरूप में व्याघ्रचर्म, कमण्डलु एवं यज्ञोपवीत धारण किए हुए थे। नन्दी उनके इस अद्‌भुत रूप को देख रोमाञ्चित हो उठे और बार-बार शिव की स्तुति करने लगे।

बालार्कमण्डलाकारं प्रभामण्डलमण्डितम्।
जटाजूटतटाश्लिष्टं चन्द्रालंकृतशेखरम्॥
जगदालोकनं श्रीमत्प्रदीप्तत्रयलोचनम्।
प्रादेशमात्रं रुचिरं शतशीर्षं शतोदरम्॥
सहस्त्रबाहुचरणं सहस्त्राक्षिशिरोमुखम्।
अणीयसामणीयांसं बृहतां तु बृहत्तरम्॥
अक्षमालापवित्राङ्गं कमण्डलुकरोद्यतम्।
सिंहचर्माम्बरधरं व्यालयज्ञोपवीतिनम्॥
दृष्ट्वा देवं महादेवं हृष्टरोमा महातपाः।
प्राञ्जलिः प्रणतो भूत्वा गृणन ब्रह्म सनातनम्॥ (२११.३८-४२)

तपस्वी नन्दी द्वारा अनेकों बार स्तुति से शिव ने प्रसन्नतापूर्वक उससे वर माँगने को कहा। शिव द्वारा प्राप्त आज्ञा से नन्दी ने शिव में अटल भक्ति बनी रहने की प्रार्थना की।

यदि प्रीतोऽसि भगवन्ननुक्रोशतया मम।
अनुग्राह्यो ह्ययं देव त्वयाऽवश्यं सुराधिप॥
यथाऽन्ये न भवेद् भक्तिस्त्वयि नित्यं महेश्वर।
तथाऽहं भक्तिमिच्छामि सर्वभूताशये त्वयि॥ (२११.५७-५८)

नन्दी से ऐसे उत्तम वर की याचना सुनकर देवाधिदेव महादेव शङ्कर ने अत्यन्त प्रसन्नता से नन्दी पर अनुग्रह करते हुए उन्हें यह वरदान दिया कि तुम मेरे सादृश्य एवं प्रभाव से युक्त होगे, साथ ही तुम जन्म-मरण, वृद्धावस्था से वंचित तथा देवताओं को न प्राप्त होने वाले 'गणेश्वरी' पद के अधिकारी होगे। शिव ने आगे कहा कि ''तुम सभी द्वारा पूजित व 'नन्दीकेश्वर' के नाम से सारे संसार में जाने जाओगे।''

दिव्यतेजोवपुः श्रीमान् दिव्याभरणभूषितः।
मत्तुल्यो मत्प्रभावश्च त्वमेकः ससुरासुरैः॥
मद्रूपधारी मत्तेजास्त्र्यक्षः सर्वगुणोत्तमः।
भविष्यसि न संदेहो देवदानवपूजितः।
अनेनैव शरीरेण जरामरणवर्जितः॥
दुष्प्राप्येयमवाप्ता ते देवैर्गाणेश्वरी गतिः।
पार्षदानां वरिष्ठस्त्वं मामकानां द्विजोत्तम।
नन्दीश्वर इति ख्यातो भविष्यसि न संशयः॥ (२११.६६-६८)

इस प्रकार शिव ने कहा ''तुम देव-कार्य में अग्रगण्य रहते हुए संसार के स्वामी के रूप में मेरे दक्षिण द्वार के प्रमुख रक्षक होगे। साथ ही तुम्हें महाकाल के साथ मेरी रक्षा करने का भी सौभाग्य प्राप्त होगा।''

अद्यप्रभृति देवाग्र्य देवकार्येषु सर्वतः।
त्वं प्रभुर्भविता लोके मत्प्रसादान्मुनीश्वर॥ ७०॥
द्वारे तु दक्षिणे नित्यं त्वया स्थेयं गणाधिप।
वामे तु विभुना चापि महाकालेन सर्वदा॥ ७४॥
प्रतीहारो भवानद्य सर्वदा त्रिदशोत्तम।
शिरो मे रक्षतु भवान् महाकालेऽपि मे गणः॥ ७५॥ (२११.७०, २११.७४-७५)

इस प्रकार नन्दीकेश्वर को यह वर देकर एवं उसे अनुगृहीत कर भगवान् शिव अन्तर्ध्यान हो गये।

अभिप्रायं च सर्वेषां जानामि द्विजसत्तम।
अनुगृह्य वैरस्तैश्च तत्रैवान्तरधीयत॥ (२११.८८)

शिव द्वारा नन्दी पर किये गये इस अनुग्रह के परिणामस्वरूप नन्दिकेश्वर स्वयं द्वितीय शङ्कर के रूप में चतुर्भुज, अलंकृत, सुन्दर वर्ण वाले, मूँज की मेखला धारण किए अत्यन्त शोभायमान हो उठे। इस स्वरूप में नन्दिकेश्वर के करों में त्रिशूल, परिध, दण्ड व पिनाक भी शोभा पाने लगे।[१५]

चतुर्भुजास्त्रिनयनो दिव्यसंस्थानसंस्थितः।
दिव्यवर्णवपुश्चारुर्दिव्याङ्गदविभूषितः॥

त्रिशूली परिधी दण्डी पिनाकी मौञ्जमेखली।
शुशुभे तेजसा तत्र द्वितीय इव शंकरः॥ (२१२.२-३)

लिङ्गपुराण में इस स्वरूप की कथा का वर्णन ४२वें से ४४वें अध्याय के मध्य हुआ है, जिसमें नन्दी की उत्पत्ति से लेकर उनके द्वारा शिव की तपस्या और शिव के प्रसन्न होने के पश्चात् नन्दी पर अनुग्रह की कथा का विस्तारपूर्वक वर्णन हुआ है। *लिङ्गपुराण* की कथा के अनुसार पुत्रविहीन व नेत्रहीन महामुनि महात्मा शिलाद ने एक ऐसे पुत्र की कामना से प्रेरित होकर तपस्या आरम्भ की, जो विद्वान् और तीक्ष्ण बुद्धिसम्पन्न तो हो परन्तु मानवजनित न हो। उनकी तपस्या से देवताओं के अधिपति इन्द्र उन पर प्रसन्न हुए और प्रकट होकर उन्होंने इच्छित वर की प्राप्ति के लिए शिलाद को शिवाराधना की सम्मति प्रदान की। इन्द्र की आज्ञा से महामुनि शिलाद ने अपने आश्रम के चारों ओर घोर अग्नि प्रज्वलित कर कठोर तप आरम्भ किया जिससे कुछ समय पश्चात् शिव प्रसन्न हुए और महातपस्वी शिलाद को स्वजनित पुत्र प्रदान किया। यह बालक चतुर्भुज स्वरूप में त्रिशूल, टंक, गदा और वज्र जैसे आयुधों के साथ मस्तक पर जटामुकुट एवं त्रिनेत्र से सुशोभित हो रहा था। उसके बाद शिव अन्तर्ध्यान हो गये। इस प्रकार के पुत्र की प्राप्ति से शिलाद काफी प्रसन्न हुए। शिव के अन्तर्ध्यान होते ही बालक नन्दी (जो नाम शिव द्वारा प्रदान किया गया था) के उपरोक्त लक्षण समाप्त हो गये और वह सामान्य बालक-सा प्रतीत होने लगा। तब ऋषि शिलाद ने बालक नन्दी के साथ अपने आश्रम को पुनः व्यवस्थित किया और उसे विद्या संचय की ओर उन्मुख किया। बालक नन्दी मात्र सात वर्ष की अवस्था तक आते-आते समस्त विद्याओं में पारंगत हो गया था। एक बार मित्र एवं वरुण नामक दो महात्मा मुनि शिलाद के आश्रम में आये। शिलाद द्वारा सभी प्रकार से आदर-सत्कार किये जाने के पश्चात् जब दोनों महात्माओं ने नन्दी के अल्प आयु की बात मुनि शिलाद को बतायी, तभी से पुत्र वियोग में महातपस्वी मुनि शिलाद शोक-सन्तप्त हो गये। बालक नन्दी द्वारा पिता की यह अवस्था देखकर और उसका कारण जानने के पश्चात् उसने अपने पिता को आश्वस्त किया। बालक नन्दी इसके बाद शिवाराधना में संलग्न हो गया। बालक की प्रगाढ़ भक्ति को देखकर भक्त वत्सल भगवान् शिव प्रसन्न हुए और बालक नन्दी पर परम अनुग्रह करते हुए उसे अपने जैसा स्वरूप प्रदान किया। साथ ही जन्म-मरण के बन्धन से भी मुक्त कर दिया। शिव द्वारा प्रदत्त स्वरूप के कारण नन्दिकेश्वर त्रिनेत्र एवं दस भुजाओं से युक्त हो गया।[१६]

रामायण (वाल्मीकि कृत) के उत्तरकाण्ड (१६/८) में नन्दी के स्वरूप का वर्णन हुआ है। इसमें कोई कथात्मक वर्णन नहीं है। इसके अनुसार नन्दी

भयंकर आकृति, कृष्ण वर्ण का, छोटा कद, बलिष्ठ भुजाओं से युक्त एवं मुंडित केश वाला बताया गया है।[१७]

इति वाक्यान्तरे तस्य करालः कृष्णपिङ्गलः।
वामनो विकटो मुण्डी नन्दी ह्रह्वभुजो बली॥

भागवतपुराण में दक्ष-यज्ञ विध्वंस के समय नन्दिकेश्वर का वर्णन मिलता है। इसमें संकेतों के माध्यम से नन्दिकेश्वर का उल्लेख हुआ है जिसके अनुसार दक्ष सहित अन्य जो शिव से वैर भाव रखते थे उन सभी का नाश नन्दिकेश्वर ने किया था।

नन्दीशानुग्रह स्वरूप का शिल्पशास्त्रीय वर्णन उत्तर एवं दक्षिण भारतीय ग्रन्थों यथा—*विष्णुधर्मोत्तरपुराण* एवं *उत्तरकामिकागम्* में हुआ है।

विष्णुधर्मोत्तरपुराण के तृतीय खण्ड (७३/१५-१७) में नन्दी के स्वरूप का उल्लेख हुआ है। इसके अनुसार नन्दी त्रिनेत्र एवं चतुर्भुज स्वरूप में लाल (सिन्दूर) वर्ण वाले एवं व्याघ्रचर्म को धारण करने वाले होंगे। इनके हाथों में त्रिशूल, टंक, तीसरा हाथ मस्तक पर और चौथा हाथ तर्जनी-मुद्रा में निरूपित होगा।[१८] यहाँ शिव की अनुपस्थिति द्रष्टव्य है, अर्थात् यह स्वरूपगत लक्षण केवल नन्दिकेश्वर के लिए है। इसमें नन्दीशानुग्रह भाव वाली मूर्तिस्वरूप का वर्णन नहीं है।

नन्दी कार्यस्त्रिनेत्रस्तु चतुर्बाहुर्महाभुजः॥
सिन्दूरारुणसङ्काशो व्याघ्रचर्माम्बरच्छदः।
त्रिशूलभिन्दिपालौ च कारयोस्तस्य कारयेत्॥
शिरोगतं तृतीयं तु तर्जयन्तं तथा परम्।[१९] (३/७३/१५-१७)

उत्तरकामिकागम् के ५५वें पटल में केवल नन्दी के स्वरूप का उल्लेख हुआ है। *विष्णुधर्मोत्तरपुराण* के विपरीत यहाँ नन्दी को द्विभुज, द्विनेत्र और जटामुकुट से युक्त प्रसन्नभाव में एवं अंजलिबद्ध-मुद्रा में कार्य करने को हमेशा तत्पर दिखाने का उल्लेख हुआ है।[२०]

नन्दीश्वरप्रसादे तु विशेषः कश्चिदिष्यते।
द्विनेत्रं द्विभुजं शान्तं कृताञ्जलिपुटान्वितम्॥
सुविकीर्णजटोपेतं जटामुकुटकान्वितम्।
आभङ्गसहितं कुर्य्यादागमश्रवणोन्मुखम्॥
नन्दीश्वरप्रसन्नं तु कारयेत्पूर्वमाऽनतः।[२१]

विष्ण्वनुग्रह और नन्दीशानुग्रह स्वरूपों के प्रतिमालाक्षणिक सन्दर्भों तथा सीमित संख्या में मूर्ति अंकनों से स्पष्ट होता है कि यह विषय यदि काव्यकारों में अथवा मन्दिर-मूर्ति निर्माणकर्ताओं में अधिक रुचि से नहीं लिया गया तो

इसका कारण यह है कि *रामायण* अथवा *महाभारत* जैसी लोकप्रिय कथाओं के मुख्य-पात्रों से यह प्रसङ्ग नहीं जुड़ा था। यदि कालक्रम की ऐतिहासिक धारा को सूक्ष्म दृष्टि से देखा जाय तो पूर्वमध्य काल तक पूरे भारत में शैव मतावलम्बियों का राजनीतिक एवं सामाजिक रूप से वर्चस्व हो गया था। देवत्रयी के अन्य दो देवताओं यथा ब्रह्मा और विष्णु की तुलना में शिव सामान्यीकरण के अपने विशिष्ट गुणों के कारण पूरे देश के सभी वर्गों यथा— नागरक, ग्रामीण, धार्मिक, वनवासी, आर्यों, अनार्यों, राक्षसों आदि में सर्वमान्य, सर्वप्रिय और सर्वस्वीकृत देवता के रूप में प्रतिष्ठित हो गये। तुलनात्मक रूप से देखा जाय तो ब्रह्मा अतिबौद्धिक, कला एवं धार्मिक अध्ययन के क्षेत्र में प्रतिष्ठित देवता के रूप में जाने गये, जबकि विष्णु अतिकुलीन, कूटनीतिक, राजनीतिकर्मी नागरिकों के देव प्रतीक के रूप में माने गये। विष्णु को एक कुलीन अवतार मानते हुए कुछ अवतार रूपों को छोड़ दें तो प्रायः सभी अवतार राजकुल अथवा सम्भ्रान्तकुलों में ही जन्म लेने वाले वर्णित हैं जबकि शिव सर्वसाधारण आराध्यदेव के प्रतीक के रूप में विकसित हुए। ग्रामीण और वनवासी आर्येतर समाजों में विष्णु की तुलना में शिव की अधिक प्रतिष्ठा थी। कालान्तर में जब वैष्णव वाङ्मय शैवमतों पर भारी पड़ने लगे तब देश की राजनीतिक व धार्मिक व्यवस्था में संघर्ष की स्थिति होनी शुरू हो गयी। कदाचित् ऐसी परिस्थिति में देश के हित चिन्तकों ने सभी त्रिदेवों, शक्तियों तथा उपदेवों को एक-दूसरे से पूजित और सम्मानित प्रदर्शित करने और संघात मूर्तियों के निर्माण का विधान किया। ग्रन्थों में विष्णु पर अनुग्रह करने का प्रसंग शायद इसी योजना की एक प्रामाणिक परिणति बना। दैत्य का संहार करने के लिये शिव द्वारा विष्णु को चक्रदान तथा विष्णु द्वारा शिवलिङ्ग पर कमलरूपी नेत्र चढ़ाना, रावण को पराजित करने के लिये राम (विष्णु के एक अवतार) द्वारा रामेश्वरम् में शिवलिङ्ग बनाकर पूजना आदि प्रसंग, प्रकारान्तर में उस समय वैष्णव एवं शैव मतों में सामञ्जस्य की स्थिति बना कर शैव मत (लोक मत) को महत्त्वपूर्ण स्थान देने के परिणामस्वरूप वर्णित या अंकित किये गये हैं। इसके अतिरिक्त उत्तर भारत के कुछ ऐसे राजा, जो स्वयं को विष्णु अथवा सूर्य के वंशज या उनके स्वरूप में प्रतिष्ठित मानते थे, उनके दक्षिण भारत विजय के विरोधस्वरूप भी शैवमत के अनुयायी मन्दिर निर्माताओं ने शिव का विष्णु पर अनुग्रह करने जैसे विषय को प्रमुखता दी। दुर्भाग्य से इस विषय की उतनी मूर्तियाँ नहीं मिल पायीं जितना साहित्य में विवरण मिला है।

इसी प्रकार नन्दीशानुग्रह स्वरूप भी भक्त और भगवान् की एक-दूसरे के प्रति अगाध श्रद्धा का मूर्त अंकन है। मुनि को पुत्र देने के लिये शिव स्वयं अपना

अंश देकर जन्मे अथवा शिव-अंश से जन्मा यह बालक अपने आराध्य के प्रति इतनी आस्था रखता है कि मृत्यु जैसी सृष्टि की आवश्यक घटना को भी शिव-भक्ति द्वारा टाल देने का निर्णय अपने पिता को सुना देता है। बाद में शिव ऐसे महान् भक्त को स्वयं में एकाकार कर लेते हैं और अपना प्रमुख गण बना लेते हैं। इन प्रसंगों से शिव-भक्ति की पराकाष्ठा और भगवान् द्वारा अपने भक्त से तादात्म्य बना लेने का उदाहरण प्राप्त होता है।

इन सभी प्रसंगों की लोकजीवन में उतनी लोकप्रियता शायद इसलिये नहीं बन पायी थी क्योंकि भक्त और भगवान् के बारे में इससे अधिक रोचक प्रसंग साहित्य और वाङ्मय में उपलब्ध थे। अधिक संख्या में मूर्ति न बन पाने का भी शायद यही कारण रहा होगा। उपरोक्त वर्णित उदाहरणों से स्पष्ट होता है कि कुछ भी हो अपने विषयवस्तु और घटनापरक सन्दर्भों के कारण शिव के विष्ण्वनुग्रह स्वरूप या चक्रदान स्वरूप तथा नन्दीशानुग्रह स्वरूप का भारतीय मूर्तिकला में महत्त्वपूर्ण स्थान है।

पाद-टिप्पणी

१. *शिवमहापुराणम्,* पुष्पेन्द्र कुमार (सम्पा०), खं० एक, दिल्ली, १९८६, पृ० ३८९-९०
२. *महाभारत,* अनुशासनपर्व (दानधर्मपर्व, अध्याय १४), रामनारायण दत्त शास्त्री (अनु०), गोरखपुर, १९७९, पृ० ५४८२-५४८३
३. वी०एस० अग्रवाल, *वामनपुराण : ए स्टडी,* वाराणसी, १९८३, पृ० २१०-२११
४. एस०एल० नागर, *शिव इन इण्डियन आर्ट, लिट्रेचर ऐण्ड थॉट,* नई दिल्ली, १९९४, पृ० १००
५. एस०के० रामचन्द्रन, *प्रतिमा-कोष (इनसाइक्लोपीडिया ऑफ इण्डियन आइकोनोग्राफी),* खं० दो, मद्रास, १९८९, पृ० १९६
६. *ए०हि०आ०,* खं० दो, अं० एक, पृ० १०७
७. *वही,* खं० दो, अं० एक, पृ० २११
८. *वही,* पृ० २१०
९. एस०एल०नागर, *पू०नि०,* पृ० १००
१०. डी०आर० राजेश्वरी, *दी पल्लव स्कल्प्चर,* नई दिल्ली, १९८८, पृ० ७६
११. *आ०अ०मे०सा०इ०,* पृ० २४६-२४७
१२. आर० नागास्वामी, *गंगैकोण्डचोलपुरम्,* मद्रास, १९७०, पृ० ३१
१३. एस० समाराव, *शैवाइट डिटीज ऑफ आन्ध्र प्रदेश,* तिरुपति, १९६६, पृ० ३१

१४. *शिवपुराणाङ्क*, हनुमानप्रसाद पोद्दार (सम्पा०), गोरखपुर, १९८८, पृ० ३०५-३०७
१५. *वराहपुराणम्*, आनन्द स्वरूप गुप्त (सम्पा०), वाराणसी, १९८३, पृ० ७९४-८०१
१६. एस०एल० नागर, *पू०नि०*, पृ० १०१-१०२
१७. गयाचरण त्रिपाठी, *वैदिक देवता: उद्भव एवं विकास*, वाराणसी, १९८२, पृ० ५५४
१८. डी०सी० भट्टाचार्य, *प्रतिमालक्षण ऑफ दि विष्णुधर्मोत्तर*, नई दिल्ली १९९१, पृ० १५८
१९. *विष्णुधर्मोत्तरपुराणम्*, चारुदेव शास्त्री (सम्पा०), दिल्ली, १९८६, पृ० ३४४
२०. एस०एल० नागर, *पू०नि०*, पृ० १०३
२१. *ए०हि०आ०*, खं० दो, अ० दो, पृ० १०९

सप्तम अध्याय

अन्य अनुग्रह मूर्ति स्वरूप

पूर्व अध्यायों में शिव के उन अनुग्रह स्वरूपों का अध्ययन प्रस्तुत हुआ है जिनके मूर्त उदाहरण (नन्दीशानुग्रह के अतिरिक्त) हमें मिलते हैं। प्रस्तुत अध्याय में विघ्नेश्वरानुग्रह या गणेशानुग्रह के रूप में ऐसे स्वरूप का अध्ययन किया गया है जिनका निरूपण केवल ग्रन्थों में ही मिलता है। इस स्वरूप का कोई मूर्त उदाहरण नहीं प्राप्त होता है। गणपति के रूप में गणेश की अवधारणा वैदिक है जिसका *महाभारत* के समय तक पूरा विकास हुआ। लोक और आंचलिक पृष्ठभूमि से विकास की प्रक्रिया में गुप्त काल तक गणेश सिद्धि और बुद्धि के देवता तथा शिवपुत्र के रूप में मान्य हुए। इसी प्रसंग में विघ्नेश्वरानुग्रह स्वरूप का विकास हुआ जिसका उल्लेख प्रस्तुत अध्याय में पुराणों में वर्णित कथाओं की पृष्ठभूमि में किया गया है।

पुस्तक में स्थान-स्थान पर इस बात का संकेत किया गया है कि सृष्टि के संहार या विलय के देवता होने के बाद भी शिव के सभी स्वरूपों में तत्त्वतः जगत् के कल्याण और अनुग्रह का भाव निहित है। इस दृष्टि से गजान्तक, अन्धकारि और त्रिपुरान्तक जैसे संहारक स्वरूपों में भी निहितार्थ तत्त्व जगत् का कल्याण ही है। संहार स्वरूपों में यमान्तक विशेषतः उल्लेखनीय है, क्योंकि इस स्वरूप में शिव द्वारा यम को दण्डित करने के मूल में भक्त मार्कण्डेय पर शिव का अनुग्रह है। वस्तुतः मार्कण्डेय पर शिव के अनुग्रह की परिणति यमान्तक रूप में दिखायी देती है। अतः अनुग्रह मूर्तियों की श्रेणी में इस मूर्ति स्वरूप को भी रखा गया है और कार्य (यमान्तक) के स्थान पर कारण को आधार मान कर इस स्वरूप को 'मार्कण्डेयानुग्रह' नाम दिया गया है।

इसी प्रकार इस अध्याय में गंगा के पृथ्वी पर अवतरण तथा शिव द्वारा गंगा को अपनी जटाओं में रोकने और बाद में भगीरथ की तपस्या से प्रसन्न शिव द्वारा गंगा को अपनी जटाओं से मुक्त करने से सम्बन्धित गंगाधर स्वरूप को भी एक नई दृष्टि से देखने का प्रयास किया गया है। इस स्वरूप का भी मूल महान् तपस्वी भगीरथ और उनके माध्यम से सम्पूर्ण मानवता या जगत् पर शिव का अनुग्रह है। मोक्षदायिनी, पुण्यतोया गंगा का पृथ्वी पर आगमन सम्पूर्ण जगत् के कल्याण का कारक है, जो भगीरथ की गहन शिव-तपस्या और शिव का भगीरथ पर अनुग्रह की परिणति है।

विघ्नेश्वरानुग्रह

विघ्नेश्वरानुग्रह स्वरूप से सम्बन्धित कथा का उल्लेख *मत्स्यपुराण, वराहपुराण, शिवपुराण, लिङ्गपुराण* एवं *स्कन्दपुराण* में हुआ है, तथा इस स्वरूप के प्रतिमालाक्षणिक विवरण *श्रीतत्त्वनिधि* एवं *उत्तरकारणागम्* में वर्णित हैं। *मत्स्यपुराण* के १५४वें अध्याय में विघ्नेश्वरानुग्रह की कथा का वर्णन मिलता है, जिसके अनुसार एक बार शिव और पार्वती बहुत समय तक विहार करते रहे। कुछ समय पश्चात् पार्वती के मन में एक पुत्र की अभिलाषा उत्पन्न हुई और वे अपनी सखियों के साथ पुत्तलकों के खिलौनों को पुत्रवत् स्नेह प्रदान कर क्रीड़ा करने लगीं। इसी दौरान पुत्तलक (पुतले) को सुगन्धित द्रव्यों का लेपन कर उससे मैले हो गये पुत्तलक को उबटन लगाया और उससे निकली मैल से उन्होंने एक गजमुख आकृति का निर्माण कर उसे गंगा में प्रवाहित कर दिया। गंगा के स्पर्श-मात्र से ही वह पुतला विशालकाय स्वरूप में प्रकट होकर सम्पूर्ण संसार को आच्छादित करने लगा, जिसे पार्वती एवं गंगा दोनों ने 'पुत्र' कहकर पुकारा। वही 'गजानन' देवताओं द्वारा पूजित हो गया तथा पितामह ब्रह्मा ने उन्हें 'विघ्नहर्त्ता' का पद सौंपा, जिससे यह स्वरूप 'गांगेय' और 'गजानन' के नाम से भी विख्यात हुआ।[१]

विघ्नेश्वरानुग्रह की कथा, *वराहपुराण*[२] के २३वें अध्याय में वर्णित है। *वराहपुराण* के अनुसार एक बार दैत्यों द्वारा उत्पन्न विघ्न-बाधाओं से घबराकर देवतागण शिव के पास गये। शिव ने जब उनकी इस प्रकार की दशा देखी तो उमा (पार्वती) की तरफ देखकर हँसने लगे, जिससे एक अतीव सुन्दर कुमार उनके मुख से उत्पन्न हुआ। बालक को देखकर सभी मोहित होने लगे और पार्वती भी उसे अपलक निहारने लगीं। यह देख शिव ने उस बालक को शाप देते हुए कहा कि "तुम गजानन स्वरूप में लम्बोदर एवं सर्प तथा यज्ञोपवीत को धारण करने वाले होगे।"

कुमार गजवक्त्रस्त्वं प्रलम्बजठरस्तथा।
भविष्यसि तथा सर्वैरुपवीतगतिर्ध्रुवम्।
एवं शशाप तं देवस्तीव्रकोपसमन्वितः॥ १७॥

वराहपुराण, २३/१७

शिव द्वारा ऐसा कहने पर सभी देवताओं में भय व्याप्त हो गया। तब ब्रह्मा ने उन्हें आश्वस्त करते हुए कहा "तुम लोगों को विघ्न-बाधाओं से दूर करने के लिए ही शिव ने विघ्नेश्वर को उत्पन्न किया है और साथ ही तुम पर अनुग्रह भी किया है।"

धन्याः स्थ देवाः सुरनायकेन, त्रिलोचनेनाद्भुतरूपिणा च।
अनुगृहीताः परमेश्वरेण, सुरद्विषां विघ्नकृतां नतौ च॥ २३॥

वराहपुराण, २३/२३

ब्रह्मा ने शिव से यह कहा कि ''आप के मुख से उत्पन्न हुआ यह बालक देवपूजित एवं देवताओं में अग्रगण्य होवे, अर्थात् यह विनायकों (देवताओं) का प्रभु हो।''

इत्येवमुक्त्वा प्रपितामहस्तानुवाच देवस्त्रिशिखास्त्रपाणिम्।
यस्ते विभो वक्त्रसमुद्भवः प्रभुर्विनायकानां भवतु त्विमेऽनुगाः॥ २४॥

वराहपुराण, २३/२४

ब्रह्मा द्वारा ऐसा कहे जाने पर, शिव ने स्वर्णकलश से जल लेकर उस बालक का अभिषेक कर उसे अपनी कृपा प्रदान की जिससे वह देवपति के रूप में सुशोभित होने लगा।

इत्येवमुक्त्वा परमेश्वरेण सुरैः समं काञ्चनकुम्भसंस्थैः।
जलैस्तथासावभिषिक्तगात्रो रराज राजेन्द्र विनायकानाम्॥ २९॥

वराहपुराण, २३/२९

शिवपुराण[३] के रुद्रसंहिता (कुमार खण्ड) में अध्याय १३ से १८ तक विघ्नेश्वर गणेश की उत्पत्ति एवं शिव द्वारा गणेश पर अनुग्रह की कथा का वर्णन है। *शिवपुराण* के अनुसार पार्वती को एक बार उसकी परम सखी जया और विजया ने शिव के परम सेवक नन्दी एवं भृङ्गी की तरह का अपना भी एक सेवक नियुक्त करने का परामर्श दिया, जिस पर पार्वती ने उस समय कोई विशेष ध्यान नहीं दिया। एक दिन अपने अन्तःकक्ष में पार्वती स्नान कर रही थीं, उन्हें खोजते शिव वहाँ पहुँच गये तो उन्हें बड़ी लज्जा हुई, साथ ही अपनी सखियों द्वारा कही गयी बात का भी स्मरण हो आया। तब उन्होंने अपने अंग से निकाले गये मैल से एक सुन्दर एवं चेतन बालक का निर्माण किया और उसे पुत्रवत् स्नेह प्रदान करते हुए अपने अन्तःपुर का रक्षक नियुक्त किया। प्रसंगवश एक बार शिव अन्तःपुर में जाने लगे तो इसी द्वारपाल (जो पार्वती द्वारा निर्मित था) द्वारा रोके जाने पर शिव तथा उस द्वारपाल बालक के मध्य घोर युद्ध आरम्भ हो गया और अन्ततः शिव ने उसे मस्तकविहीन कर दिया। बालक को मस्तकविहीन कर दिया जाने का करुण समाचार जब पार्वती ने सुना तो वे अत्यन्त क्रोधित हो उठीं और क्रोध के कारण उनकी आदिशक्तियाँ सर्वत्र प्रलय मचाने लगीं, जिससे सभी देवतागण भयाक्रान्त हो गये। अन्ततः देवतागण शिवा (पार्वती) की स्तुति कर उन्हें शान्त करने का प्रयास करने लगे तब पार्वती ने कहा ''जब तक मेरा पुत्र पुनर्जीवित नहीं होगा तब तक संहार होता रहेगा'' साथ ही यह भी कहा कि ''उसके जीवित होने पर तुम सभी उसे 'सर्वाध्यक्ष' का पद प्रदान कर दोगे तभी लोक में शान्ति स्थापित हो सकती है।'' पार्वती के ऐसे दृढ़ वचन को सुनकर सभी देवतागण शिव के पास गये और उन्होंने देवी की इच्छा को पूर्ण करने का प्रार्थना की, जिसे शिव ने स्वीकार कर लिया। ब्रह्माजी के परामर्श से उत्तर दिशा

में गये देवगणों को एकदन्त गज मिला, जिसका मस्तक उतार कर उस बालक के धड़ से जोड़ दिया गया। पुनः शिवाज्ञा और शिव-मन्त्र से अभिसिक्त जल लेकर उसे मृत बालक पर डाल दिया गया। इस प्रकार शिवकृपा से गजाननरूपी यह बालक जीवित हो उठा, पार्वती-पुत्र को जीवित देखकर सभी के दुःख स्वतः ही दूर हो गये और सभी देवगण, ऋषि एवं सामान्यजन प्रसन्न हो उठे—

यस्मात्त्वत्तेजसस्सर्वे वयं जाता महात्मनः।
त्वत्तेजस्तत्समायातु वेदमंत्राभियोगतः॥५४॥
इत्येवमभिमंत्रेण मंत्रितं जलमुत्तमम्।
स्मृत्वा शिवं समेतास्ते चिक्षिपुस्तत्कलेवरे॥५५॥
तज्जलस्पर्शमात्रेण चिद्युतो जीवितो द्रुतम।
तदोत्तस्थौ सुप्त इव स बालश्च शिवेच्छया॥५६॥
तं दृष्ट्वा जीवितं बालं शिवापुत्रं मुनीश्वर।
सर्वे मुमुदिरे तत्र सर्वं दुःखं क्षयं गतम्॥५८॥ अध्याय-१७

अपने पुत्र को जीवित देखकर पार्वती अत्यधिक प्रसन्नता से भर गयीं और उन्होंने बालक गजानन को अपने अंकपाश में लेकर अनेक प्रकार के वस्त्राभूषण प्रदान किए।

दृष्ट्वा स्वतनयं देवी शिवा हर्षसमन्विता॥
गृहीत्वा बालकं दोर्भ्यो प्रमुदा परिषस्वजे॥४॥
वस्त्राणि विविधानीह नानालंकरणानि च॥
ददौ प्रीत्या गणेशाय स्वपुत्राय मुदांबिका॥५॥ अध्याय-१८

बाद में सभी प्रकार से सिद्धियों द्वारा पूजन एवं पार्वती के स्पर्श-मात्र से बालक के दुःखों का स्वतः ही नाश हो गया। बालक मुख को चूम कर वर देते हुए पार्वती बोली "तुम्हें अब कभी दुःख नहीं होगा एवं सम्पूर्ण देवताओं में तुम्हारी अग्रपूजा होगी"—

पूजयित्वा तया देव्या सिद्धिभिश्च्वाप्यनेकशः॥
करेण स्पर्शितस्सोथ सर्वदुःख हरेण वै॥६॥
पूजयित्वा सुतं देवी मुखमाचुम्ब्य शांकरी॥
वगन्ददौ तदा प्रीत्या जातस्त्वं दुःखितोऽधुना॥७॥ अध्याय-१८

.....तदन्तर इन्द्रादि देवताओं ने पार्वती की स्तुति की और बालक गजानन को शिव के पास ले जाकर बालक की कल्याण भावना से शिव की गोद में बैठा दिया। तब शिव उसके मस्तक पर हाथों से स्पर्श करते हुए बोले, "यह मेरा दूसरा पुत्र है"। गणेश शिव से प्राप्त इस अनुग्रह से अत्यधिक प्रसन्न हुए और उन्होंने शिव, पार्वती, ब्रह्मा सहित विष्णु आदि उपस्थित देवों को प्रणाम किया।

एतस्मिंश्च क्षणे देवा वासवाद्याः शिवं मुदा॥
स्तुत्वा प्रसाद्य तं देवं भक्ता निन्युः शिवांतिकम्॥ १५॥
संसाद्य गिरिशं पश्चादुत्संगे सन्न्यवेशयन्॥
बालकं तं महेशान्यास्त्रिजगत्सुखहेतवे॥ १६॥
शिवोपि तस्य शिरसि दत्त्वा स्वकरपंकजम्॥
उवाच वचनं देवान् पुत्रोऽयमिति मेऽपरः॥ १७॥
गणेशोपि तदोत्थाय नमस्कृत्य शिवाय वै॥
पर्वत्यै च नमस्कृत्य महंय् वै विष्णवे तथा॥ १८॥ अध्याय-१८

लिङ्गपुराण[५] के १०५वें अध्याय में विघ्नेश्वरानुग्रह की कथा अन्य पुराणों में वर्णित कथाओं से काफी भिन्न है, किन्तु *वराहपुराण* से काफी समानता रखता है। *लिङ्गपुराण* के अनुसार एक बार देवताओं ने दैत्यों द्वारा उत्पन्न विघ्न-बाधाओं से मुक्ति के लिए शिव से प्रार्थना की। उनकी प्रार्थना सुनकर शिव ने गजमुख गणेश को उत्पन्न किया, जिसके हाथों में त्रिशूल एवं पाश शोभायमान था। गजमुख गणेश का अनेक प्रकार से शिव ने अभिषेक करते हुए कहा कि "यह देवताओं में अग्रपूज्य एवं सभी विघ्नों को हरने वाला होगा।" इससे देवगण प्रसन्न हुए साथ ही पर्वतसुता पार्वती ने भी उन्हें अपना वात्सल्य-प्रेम प्रदान किया।

स्कन्दपुराण[६] में इस कथा का वर्णन ब्राह्मखण्ड के धर्मअरण्य खण्ड (१२वें अध्याय) में प्राप्त होता है। इसमें वर्णित कथा *शिवपुराण* में वर्णित कथा से काफी समानता रखती है। परन्तु कुछ स्थानों पर भिन्नता स्पष्ट है, जिसका उल्लेख आवश्यक है। कथान्तर की दृष्टि से *स्कन्दपुराण* के अनुसार शिव द्वारा बालक गणेश के मस्तक को काट दिये जाने के पश्चात् पार्वती ने जब अपने उस बालक को भूमि पर गिरे देखा तो विलाप करने लगीं। तब महेश्वर ने कहा, "यह सब अनजाने में हुआ है अब मैं क्या कर सकता हूँ।" उसी समय अचानक 'गजासुर' नामक दैत्य उपस्थित हुआ, जिसका तत्काल शिव ने संहार किया। साथ ही गणेश को पुनर्जीवित करने के लिए उसका मस्तक काट कर गणेश के धड़ पर रख दिया, इस प्रकार गणेश को जीवित कर शिव ने उन पर कृपा की। इसमें गजासुर-संहार और गणेश के ऊपर शिव की कृपा का एक ही साथ वर्णन हुआ है, जो एक ही कथा के कालक्रम की दृष्टि से होने वाले विकास और परिवर्तन के अध्ययन की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण है।

विघ्नेश्वरानुग्रह अथवा गणेशानुग्रह स्वरूप का प्रतिमालाक्षणिक संकेत *लिङ्गपुराण* में मिलता है, परन्तु इस स्वरूप का पूर्ण प्रतिमालाक्षणिक सन्दर्भ दक्षिण भारतीय आगम ग्रन्थों में ही उपलब्ध है। विघ्नेश्वरानुग्रह स्वरूप में शिव पार्वती एक ही आसन पर सुखासन में विराजमान होंगे। *श्रीतत्त्वनिधि* के अनुसार चतुर्भुज शिव के तीन करों में मृग, परशु तथा वरद-मुद्रा होगी, जबकि एक दायाँ

हाथ गणेश के मस्तक पर स्थित होगा। इस स्वरूप में शिव शान्त किन्तु त्रिनेत्र होंगे। उनके हाथों में कभी-कभी मृग और परशु के स्थान पर अंकुश एवं अक्षमाला (*उत्तरकारणागम्*) का भी सन्दर्भ मिलता है। शिव के बायीं ओर आसीन द्विभुजा पार्वती वरद एवं पुष्प (कुमुद पुष्प) धारिणी होंगी।[६] नीचे शिव कृपा से अनुगृहीत गणेश की अंजलिबद्ध आकृति के रूपायन का विधान है।

श्रीतत्त्वनिधि में ऊपर वर्णित शिव-पार्वती के प्रतिमांकन के लक्षण यथावत हैं। केवल गणेश को शिवासन के दायीं ओर स्थानक और अंजलिबद्ध-मुद्रा में दिखाये जाने का उल्लेख है। गणेश के शेष दो करों में पाश एवं अंकुश होगा। गणेश रक्तवर्ण वाले एवं किरीटमुकुट से युक्त होंगे जबकि पार्वती उपरोक्त आसन व आयुध के अतिरिक्त मन्दस्मित और त्रिनेत्र दिखायी जायेंगी।

चतुर्भुजं त्रिनेत्रं च जटामकुटसंयुतम्।
अभयं शिरसि न्यस्य वरदं वामहस्तके॥
कृष्णापरशुसंयुक्तं विघ्नेशो दक्षिणे स्थितः।
शयानं दक्षिणं पादं दधं वामं तु लम्बितम्॥
सर्वाभरणसंयुक्तं श्यामवर्णं सुशोभितम्।
देवस्य वामपार्श्वे तु देवीं प्रहसिताननाम्॥
सर्वालङ्कारसंयुक्तां सव्ये तूत्पलधारिणीम्।
वामे वरदसंयुक्तां द्विभुजां च त्रिनेत्रकाम्॥
दक्षिणे शयितं पादं दधं वामे तु लम्बितम्।
एकपीठस्थितां देवीमुमास्कन्दोक्तवत्कुरु॥
विघ्नेशं रक्तवर्णं च किरीटमकुटान्वितम्।
नमस्काराञ्जलिकरं पाशाङ्कुशसमन्वितम्॥

ए०हि०आ०, खं० दो, भाग दो से उद्धृत, पृ० १०९-११०

विघ्नेश्वरानुग्रह अथवा गणेशानुग्रह स्वरूप की कथा इतना विस्तार पाती है कि अनेक पुराणों में इस कथा का प्रचुर उल्लेख मिलता है। साथ ही प्रतिमालाक्षणिक ग्रन्थों में भी इस स्वरूप का निरूपण उपलब्ध है। परन्तु इस स्वरूप की मूर्ति का न मिलना सर्वथा आश्चर्यजनक है।

मार्कण्डेयानुग्रह (या यमान्तक)

इस स्वरूप का कथात्मक वर्णन *महाभारत, मत्स्यपुराण, श्रीमद्भागवतपुराण* एवं *स्कन्दपुराण* में मिलता है। प्रथम तीन ग्रन्थों (*महाभारत, मत्स्यपुराण* और *श्रीमद्भागवतपुराण*) में वर्णित कथा विष्णु से सम्बन्धित है, अर्थात् ऋषि मार्कण्डेय की तपस्या से प्रसन्न होकर श्रीहरि विष्णु (विभिन्न रूपों में) ने मार्कण्डेय ऋषि को सर्वदा तरुणावस्था में होने का वरदान दिया था। *स्कन्दपुराण* में इस कथा के स्वरूप में थोड़ी भिन्नता मिलती है। अबतक के प्राप्त मूर्तिगत उदाहरण

स्कन्दपुराण के वर्णन के अनुरूप हैं। *स्कन्दपुराण*[७] के अनुसार ऋषिपुत्र मार्कण्डेय अपनी आयु समाप्त होने के समय शिवभक्ति में संलग्न थे। उनके प्राण ले जाने आये यमदूत जब विवश होकर लौट गये तब स्वयं यम को आना पड़ा। ज्योंहि यम उस बालक का प्राण हरने के लिए आगे बढ़ते हैं, उसी समय शिवलिङ्ग से प्रकट होकर शिव यम को दण्डित करते हैं साथ ही भक्त मार्कण्डेय की प्राणरक्षा भी करते हैं। मार्कण्डेय की अटल भक्ति से प्रसन्न शिव उसे सर्वदा १६ वर्ष की आयु का तरुण बने रहने का वरदान देते हुए मार्कण्डेय पर अनुग्रह करते हैं।

मार्कण्डेयानुग्रह स्वरूप के लक्षण दक्षिण भारतीय आगमग्रन्थों (*अजितागम्, अंशुमद्भेदागम्, कारणागम्, कामिकागम्, सुप्रभेदागम्, शिल्परत्न*) में वर्णित हैं। इन ग्रन्थों में थोड़ी-बहुत भिन्नता के साथ विस्तार में लक्षण उल्लिखित हैं। सामान्यतः इस स्वरूप में शिव को शिवलिङ्ग से प्रकट होते तथा दायें पैर एवं त्रिशूल से यम के वक्ष पर प्रहार करते अंकित किया गया है जबकि यम को गिरने की अवस्था में निरूपित किया गया है। मध्य में इस स्थिति से अचम्भित एवं भयभीत मार्कण्डेय की आकृति को शिवलिङ्ग से लिपटे दिखाया गया है।

मार्कण्डेयानुग्रह स्वरूप के उदाहरण महाबलीपुरम् (धर्मराज रथ), कांचीपुरम् (कैलाशनाथ मन्दिर से चार उदाहरण), एलोरा (गुफा सं० १५ एवं गुफा सं० १६ से तीन उदाहरण), पट्टडकल (विरूपाक्ष मन्दिर), तंजौर (बृहदीश्वर मन्दिर), गंगैकोण्डचोलपुरम् (बृहदीश्वर मन्दिर) एवं हलेबीड (होयसलेश्वर मन्दिर) जैसे स्थलों से प्राप्त होते हैं।[८] एलोरा के कैलाश मन्दिर (चित्र ४५) में उत्कीर्ण मार्कण्डेयानुग्रह का शिल्पांकन बड़े ही भव्य रूप में हुआ है। यहाँ शिव की गतिशील आकृति को यम पर प्रहार करते दिखाया गया है, वहीं भक्त मार्कण्डेय को भयाक्रान्त, किन्तु शिव-भक्ति में तल्लीन निरूपित किया गया है।[९] उपरोक्त सभी स्थलों की मूर्तियाँ कुछ अन्तर के साथ (आयुध एवं हाथों की संख्या व स्थिति) एक जैसी विवरणों-लक्षणों वाली हैं।

गंगाधर

इस स्वरूप का कथात्मक वर्णन विभिन्न पुराणों एवं अन्य ग्रन्थों में उपलब्ध है। कथा के अनुसार भगीरथ ने अपने पूर्वजों के उद्धार के लिए ब्रह्मा की तपस्या की, क्योंकि उनके पूर्वज राजा सगर और उनके साठ सहस्र पुत्रों को कपिल मुनि की क्रोधाग्नि ने जलाकर भस्म कर दिया था। अन्ततः ब्रह्माजी प्रसन्न हुए और भगीरथ के पूर्वजों के उद्धार के लिए अपने कमण्डलु से गंगा को छोड़ने को तैयार भी हो गए; परन्तु गंगा के तीव्र प्रवाह से पृथ्वी पर प्रलय जैसी स्थिति उत्पन्न न हो इसके लिए ब्रह्मा ने शिव को प्रसन्न करने को कहा। ब्रह्मा की आज्ञा से भगीरथ ने शिव की तपस्या कर उनको प्रसन्न किया। तब शिव ने अपनी जटा खोलकर गंगा के तीव्र-प्रवाह को शान्तभाव से अपनी जटा में धारण कर लिया। पुनः भगीरथ की

प्रार्थना से प्रसन्न होकर लोक-कल्याण के लिए शिव ने गंगा को पृथ्वी पर प्रवाहित किया। भारतीय कला और साहित्य में शिव का यह स्वरूप 'गंगाधर' के नाम से विख्यात है। किन्तु इस स्वरूप में शिव का अनुग्रह भाव भी स्पष्ट है।

गंगाधर स्वरूप का शिल्पशास्त्रीय वर्णन *कामिकागम्* एवं *कारणागम्* में मिलता है। इस स्वरूप में सामान्यतया शिव को प्रत्यालीढ़ या समभंग में, त्रिनेत्र व जटाजूट से शोभित दिखाया जाता है। चतुर्भुज शिव दायें हाथ से कुछ रूठी हुई उमा (पार्वती) की ठुड्डी पकड़ कर उनका मनुहार करते एवं बायें हाथ से जटा पकड़कर गंगा को धारण करते कला में शिल्पांकित हुए हैं। शिव के शेष दो करों में परशु एवं मृग के प्रदर्शन का विधान मिलता है। शिव की जटा में मकरवाहिनी गंगा को अवतरित होते दिखाया जाता है, जबकि बायीं और स्थानक व द्विभुजा पार्वती प्रायः कट्यवलम्बित-मुद्रा में कुछ अप्रसन्न और गंगा के प्रति डाह के भाव सहित रूपायित होती हैं। नीचे भगीरथ सहित अन्य ऋषिगण आकृतियों को शिव-लीला के दर्शन से कृत-कृत्य होते दिखाया जाता है।

गंगाधर स्वरूप की मूर्तियां विभिन्न कला-केन्द्रों यथा—कांचीपुरम्, महाबलीपुरम् (चट्टानी शिल्प, चित्र ४५), एलिफेण्टा, तंजौर, अयहोल, पट्टडकल, गंगैकोण्डचोलपुरम्, खजुराहो एवं त्रिचिनापल्ली से प्राप्त हैं।[१०] इस स्वरूप में शिव ने गंगा को धारण कर गंगा के ऊपर कृपा की, साथ ही भगीरथ की तपस्या से प्रसन्न होकर उनके पूर्वजों के उद्धार एवं जगत् के कल्याण के निमित्त शिव द्वारा किया गया यह कार्य भी उनके अनुग्रह भाव को दर्शाता है।

पाद-टिप्पणी

१. *मत्स्यपुराण,* रामप्रताप त्रिपाठी (अनु०), इलाहाबाद, १९३६, पृ० ४४१
२. *वराहपुराण,* आनन्द स्वरूप गुप्त (सम्पा०), वाराणसी, १९८३, पृ० ९९-१०२
३. *शिवमहापुराण,* पुष्पेन्द्र कुमार (सम्पा०), दिल्ली, १९८६, पृ० ७६५-७८८
४. *लिङ्गपुराण,* जे०एल० शास्त्री (सम्पा०), दिल्ली, १९८०, पृ० ५७५-५७८
५. *स्कन्दमहापुराण,* श्रीकृष्ण क्षेमराज (सम्पा०), दिल्ली, १९८६, पृ० १२५-१२६
६. एस०के० रामचन्द्र राव, *प्रतिमा-कोष* (इनसाइक्लोपीडिया ऑफ इण्डियन आइकोनोग्राफी), बंगलौर, १९८८, पृ० ३३
७. *स्कन्दपुराण,* वैष्णव खण्ड (दो-दो) ३.४९-५५
८. *म०भा०प्र०,* पृ० ४९-५०
९. कार्मेल बर्क्सन, *एलोरा कान्सेप्ट ऐण्ड् स्टाइल,* नई दिल्ली, १९९२ : कालारि ऑर मार्कण्डेयानुग्रह ऐण्ड रावणानुग्रह, पृ० २६४-३१२
१०. *म०भा०प्र०,* पृ० ३५-३६

✢

अष्टम अध्याय

उपसंहार

शिव की अनुग्रह मूर्तियों से सम्बन्धित प्रस्तुत अध्ययन प्रारम्भ से ल० १३वीं शती ई० के मध्य के काल-खण्ड में किया गया है। अनुग्रह स्वरूपों में शिव केवल अर्जुन (अर्जुनानुग्रह) एवं चण्डेश (चण्डेशानुग्रह) जैसे भक्तों पर ही अनुग्रह नहीं करते हैं वरन् रावणानुग्रह स्वरूप में रावण जैसी आसुरी प्रवृत्ति वाले भक्त पर भी अनुग्रह करते हैं। यही शिव का शिवत्व है। अनुग्रह स्वरूपों में शिव के ऐसे स्वरूप भी सम्मिलित हैं जिनमें विष्णु (विष्ण्वनुग्रह), नन्दी (नन्दीशानुग्रह) और गणेश (विघ्नेश्वरानुग्रह) पर भी शिव ने अनुग्रह किया था। अभीष्ट मूलभाव के कारण गंगाधर एवं यमान्तक स्वरूपों का भी शिव की अनुग्रह मूर्तियों के अन्तर्गत अध्ययन किया गया है। गंगाधर स्वरूप में शिव मूलतः भगीरथ पर और उनके माध्यम से गंगा के पृथ्वी पर अवतरण का मार्ग प्रशस्त कर पूरी मानवता पर अनुग्रह करते हैं। ऐसे ही यमान्तक स्वरूप में एक ओर जहाँ यम को दण्डित करने के कारण उनका संहार भाव व्यक्त हुआ है वहीं दूसरी ओर भक्त मार्कण्डेय की रक्षा करने में शिव के अनुग्रह का भाव भी द्रष्टव्य है। अतः उपरोक्त सभी मूर्ति स्वरूपों का अनुग्रह स्वरूपों के अन्तर्गत अध्ययन किया गया है। वास्तव में अनुग्रह एवं संहार का विभाजन शिव के कार्य-सम्पादन एवं स्वरूप पर आधारित है। शिव की संहार मूर्तियों में भी कहीं न कहीं जगत् या मानवता पर शिव के अनुग्रह का भाव निहित है। अन्धकारि एवं गजान्तक स्वरूपों में भी संहार के पश्चात् शिव इन असुरों को अपने गणों के रूप में स्वीकार कर उन पर अनुग्रह ही करते हैं। अनुग्रह मूर्ति स्वरूपों में रावणानुग्रह स्वरूप निःसन्देह अखिल भारतीय स्तर पर सर्वाधिक लोकप्रिय था, जबकि चण्डेशानुग्रह एवं विष्ण्वनुग्रह जैसे मूर्ति स्वरूप केवल पल्लव तथा चोल कला में ही उपलब्ध हैं।

अनुग्रह मूर्तियों के निरूपण की परम्परा गुप्त काल से मिलती है, जिसके प्रारम्भिक उदाहरण रावणानुग्रह और अर्जुनानुग्रह मूर्तियों के रूप में उपलब्ध हैं। ज्ञातव्य है कि साहित्यिक परम्परा में भी रावणानुग्रह एवं अर्जुनानुग्रह स्वरूपों का उल्लेख अनुग्रह स्वरूपों में सबसे पहले मिलता है जो *रामायण, महाभारत* तथा कालिदास कृत *रघुवंश* और *कुमारसम्भव* एवं माघ कृत *शिशुपालवध* में द्रष्टव्य है।

अन्य अनुग्रह स्वरूपों का उल्लेख और कला में उनकी अभिव्यक्ति सातवीं शती ई० के पूर्व नहीं मिलती। इसका एकमात्र अपवाद विष्ण्वनुग्रह स्वरूप है जिसका उल्लेख *महाभारत* में भी हुआ है। अनुग्रह स्वरूपों में शिव सामान्यतः सौम्य दर्शन वाले और त्रिनेत्र निरूपित हैं। रावणानुग्रह, अर्जुनानुग्रह और चण्डेशानुग्रह स्वरूपों में भुवनेश्वर, पट्टडकल, एलोरा, तंजौर एवं गंगैकोण्डचोलपुरम् के उदाहरणों में शिव उमासहित रूपायित हैं। शिव सामान्यतया त्रिशूल या परशुधारी दिखलाये गये हैं। उत्तर भारत की रावणानुग्रह मूर्तियों में कभी-कभी आसन के नीचे शिव वाहन वृषभ और उमा वाहन सिंह का भी अंकन मिलता है। इनके अतिरिक्त केवल कुछ रावणानुग्रह (भुवनेश्वर एवं उत्तर भारत के उदाहरण) और अर्जुनानुग्रह(पट्टडकल, दारासुरम्, कडूर, डोण्डालूर) मूर्तियों में ही वाहन उत्कीर्ण हैं। सामान्यतः अनुग्रह स्वरूपों में वाहन का अंकन नहीं हुआ है। सभी उदाहरणों में पार्वती द्विभुजा हैं। विभिन्न स्थलों से प्राप्त शिव की अनुग्रह मूर्तियों में अलग-अलग प्रकार से शिव के अनुग्रह भाव को दर्शाया गया है। अर्जुनानुग्रह स्वरूप में यह भाव पाशुपत-अस्त्र देते हुए व्यक्त है जबकि चण्डेशानुग्रह स्वरूप में चण्डेश के मस्तक पर उष्णीष बाँधने में शिव का अनुग्रह भाव द्रष्टव्य है।

शिव के अनुग्रह स्वरूपों में रावणानुग्रह स्वरूप प्रारम्भिकतम् और सर्वाधिक व्यापक रहा है जिसके कम से कम ७८ मूर्त उदाहरण हमें सम्पूर्ण भारतवर्ष से मिले हैं। रावणानुग्रह मूर्तियों के निरूपण में ही हमें सर्वाधिक क्षेत्रीय विभिन्नतायें भी मिलती हैं। उत्तर भारत की उमा-महेश्वर मूर्तियों की पीठिका पर अनेकशः रावण की आकृति की उपस्थिति के माध्यम से रावणानुग्रह स्वरूप का संकेत दिया गया है। भुवनेश्वर एवं पट्टडकल की स्वतन्त्र मूर्तियों में कथात्मक शैली में निरूपण हुआ है, जबकि एलोरा के चट्टानी शिल्प (सातवीं-आठवीं शती ई०) में एक विशाल आयाम में रावणानुग्रह स्वरूप को कथात्मक पृष्ठभूमि में प्रस्तुत किया गया है। दक्षिण भारत में पल्लव एवं चोल कला में स्वतन्त्र मूर्तियों के साथ ही फलक मूर्तियों के रूप में भी एक से अधिक कथा दृश्यों के माध्यम से इस स्वरूप को अभिव्यक्त किया गया है।

रावणानुग्रह स्वरूप का अंकन गुप्त काल में प्रारम्भ हुआ जिसका प्रारम्भिक उदाहरण डींग दरवाजा, मथुरा से मिला है। यद्यपि रावणानुग्रह स्वरूप के साहित्यिक सन्दर्भ (*रामायण, शिवपुराण* एवं कालिदास के ग्रन्थों में) मुख्यतः उत्तर भारत में ही उपलब्ध हैं, तथापि सातवीं से १३वीं शती ई० के बीच यह स्वरूप एलोरा, भुवनेश्वर, पट्टडकल तथा दक्षिण भारत के अन्य पुरास्थलों पर उत्तर भारत की अपेक्षा कहीं अधिक लोकप्रिय था। एलोरा, पट्टडकल, भुवनेश्वर, कांचीपुरम्, गंगैकोण्डचोलपुरम् जैसे स्थलों पर शैवधर्म और शिव मन्दिरों की

प्रधानता के कारण ही शिव का अनुग्रह प्राप्त करने की इच्छा से रावणानुग्रह स्वरूप की मूर्तियों को एक प्रतीक के रूप में स्वीकार किया गया।

एलोरा के एक उदाहरण (दशावतार गुफा) के अतिरिक्त दक्षिण भारत से प्राप्त अन्य किसी उदाहरण में शिवगणों द्वारा रावण के उपहास का दृश्य नहीं दर्शाया गया है, जबकि उत्तर भारत की रावणानुग्रह मूर्तियों में रावण के उपहास का दृश्य लगभग सभी उदाहरणों में उपलब्ध है। यह तथ्य रावण के प्रति दक्षिण भारत में आदर भाव का सूचक भी हो सकता है। साथ ही यही तथ्य दक्षिण भारत में रावणानुग्रह मूर्तियों की विशेष लोकप्रियता का कारण भी हो सकता है।

भुवनेश्वर के शत्रुघ्नेश्वर एवं परशुरामेश्वर मन्दिरों के उदाहरणों के अतिरिक्त दक्षिण भारत की मूर्तियों में सामान्यतः शिव और पार्वती के वाहनों (नन्दी एवं सिंह), पुत्रों (गणेश एवं कार्तिकेय) एवं शृगी ऋषि को नहीं दिखाया गया है जबकि उत्तर भारत की मूर्तियों में इनका अंकन सामान्यतः हुआ है। भुवनेश्वर, एलोरा सहित दक्षिण भारत के कई उदाहरणों में पर्वत शिखर के नीचे विराजमान रावण की आकृति मुख्याकृति से भी बड़ी दिखायी गयी है जिसके दो सन्दर्भ बनते हैं। एक तो दक्षिण भारतीय परम्परा में रावण के प्रति विशेष आस्था और आदर का भाव है तथा दूसरे शिल्पी द्वारा दृश्य संयोजन की विशेष दृष्टि है, जिसमें उसने भूमि से कथा-दृश्य की परिकल्पना की है। फलतः पर्वत शिखर के नीचे रावण की आकृति बड़ी और पर्वत शिखर की शिव-पार्वती की आकृति छोटी है। ऐसा आभासित होता है मानों अधिकांश उदाहरणों में रावण के दर्प भंग की कथा की पृष्ठभूमि से अधिक शिव की इच्छा और प्रेरणा के फलस्वरूप रावण के कैलाशोत्तोलन की कथा मूर्तियों के उकेरने में अधिक प्रभावी रही है क्योंकि इनमें सामान्यतः भयजन्य परिस्थिति के फलस्वरूप पार्वती के शिव के निकट आने का भाव ही अधिक प्रखर है। इस प्रकार इस स्वरूप की अभिव्यक्ति मुख्यतः शिव की लीला के रूप में हुई है। यही कारण है कि कुछ उदाहरणों में पर्वतोत्तोलन की मुद्रा में रावण की वीणाधारी और उसके पार्श्वों में वाद्य-वादन करती आकृतियों (त्रिपुरी एवं जबलपुर से प्राप्त उदाहरणों में) का भी उकेरन हुआ है। साथ ही एक उदाहरण (सिरोन-खुर्द) में पर्वत उठाने में रावण की सहायता करने की मुद्रा में गणेश एवं कार्तिकेय की उपस्थिति भी ध्यातव्य है।

उत्तर भारत की उमा-महेश्वर मूर्तियों की पृष्ठभूमि में बनी रावणानुग्रह मूर्तियाँ महत्त्वपूर्ण हैं। परशुरामेश्वर मन्दिर, भुवनेश्वर के उदाहरण में शीर्ष भाग में ब्रह्मा और विष्णु की उपस्थिति भी उल्लेखनीय है जिन्हें मानों इस अवसर पर साक्षी के रूप में रूपायित किया गया है। उत्तर भारत की मूर्तियों में उमा-महेश्वर

मूर्ति स्वरूप की पृष्ठभूमि में बनी रावणानुग्रह मूर्तियों की पीठिका पर रावण की लघु आकृति को एक, तीन और पाँच मुखों वाला दिखाया गया है जो दशानन रूप का पार्श्व या पृष्ठ दर्शन में प्रतीकात्मक अंकन है। कई बार रावण की आकृति के मानव मुखों के ऊपर गर्दभ मुख दिखाया गया है जो उत्तर भारत की रावणानुग्रह मूर्तियों का वैशिष्ट्य है। गर्दभ मुख स्थूल रूप में रावण के मूर्खतापूर्ण कृत्य का प्रतीक हो सकता है, क्योंकि *रामायण* में रावण के रथ में अश्व के स्थान पर गर्दभ होने का उल्लेख मिलता है। किन्तु भारतीय कला का मर्म स्थूल से कहीं अधिक सूक्ष्म या गूढ़ रहा है। इस दृष्टि से विचार करने पर रावण का वेदज्ञ होना और *श्रीतत्त्वनिधि* में *ऋग्वेद* को गर्दभ मुख बताया जाना रावणानुग्रह मूर्ति के सन्दर्भ में प्रासंगिक हो सकता है। वैसे एक और महत्त्वपूर्ण बात यह है कि एलोरा के एक उदाहरण (गुफा सं० २१) के अतिरिक्त दक्षिण भारत की मूर्तियों में रावण के साथ गर्दभ मुख कहीं नहीं दिखाया गया है जिसका कारण दक्षिण भारत में रावण के प्रति विशेष आदर भाव रहा होगा।

अर्जुनानुग्रह स्वरूप के अध्ययन में भी कुछ तथ्य उभर कर सामने आये हैं। रावणानुग्रह स्वरूप के बाद भारतीय साहित्य एवं कला में अर्जुनानुग्रह स्वरूप ही सर्वाधिक प्रचलित अनुग्रह स्वरूप रहा है जिसका प्रारम्भिक उदाहरण गुप्तकाल (राजौना, बिहार) का है। अन्य प्रारम्भिक मूर्तियाँ (छठी से आठवीं शती ई०) भुवनेश्वर (शिशिरेश्वर एवं स्वर्णजालेश्वर मन्दिर), नागरी (राजस्थान), महाबलीपुरम्, कांचीपुरम् एवं एलोरा (कैलाश मन्दिर)से मिली हैं। प्रायः सभी उदाहरणों में इस स्वरूप का निरूपण कथात्मक शैली में हुआ है। प्रारम्भिक उदाहरण भारत के उत्तरी एवं दक्षिणी दोनों ही भागों से प्राप्त होते हैं परन्तु बाद में दक्षिण भारत में इस स्वरूप की अपेक्षाकृत अधिक मूर्तियाँ बनीं।

शिल्प में अर्जुनानुग्रह स्वरूप का अंकन प्रायः तीन रूपों में हुआ है। प्रथम वर्ग में स्वतन्त्र प्रतिमा के रूप में किरातवेशधारी शिव और अर्जुन को शर-संधान की मुद्रा में युद्धरत (कैलाशनाथ मन्दिर, कांचीपुरम्) अथवा शिव (वास्तविक स्वरूप में) अर्जुन को पाशुपतास्त्र प्रदान (पुलमंगलई एवं बृहदीश्वर मन्दिर, तंजौर) करते दिखाये गये हैं। दूसरे वर्ग में *महाभारत* कथा प्रसंग की पृष्ठभूमि में किरात एवं अर्जुन के युद्ध और तदुपरान्त शिव के अनुग्रह दृश्य का अंकन (कैलाश मन्दिर, एलोरा; शिशिरेश्वर मन्दिर, भुवनेश्वर एवं पट्टडकल) मिलता है। तीसरे वर्ग की मूर्तियाँ कथात्मक शैली में उकेरी गयी हैं जिनके उदाहरण भुवनेश्वर (स्वर्णजालेश्वंर मन्दिर) के अतिरिक्त चालुक्य, चोल एवं होयसल मन्दिरों (तंजौर, कुम्भकोणम्, दारासुरम्, पट्टडकल, हलेबीड, बेलूर) पर द्रष्टव्य हैं। ऐसे दृश्यांकनों में कथा के अंकन के स्तर पर काफी भिन्नताएँ दिखलायी पड़ती हैं जैसे चोल

कालीन कला-केन्द्रों के अर्जुनानुग्रह स्वरूप में *किरातार्जुनीयम्* (भारवि कृत) का प्रभाव स्पष्ट है। होयसल कालीन पुरास्थलों के फलकों के कथात्मक दृश्यांकन में अर्जुनानुग्रह स्वरूप के निरूपण में कर्नाटक एवं आन्ध्र में प्रचलित लोक-कथा और *किरातार्जुनीयम्* का मिश्रित रूप द्रष्टव्य है। इनमें प्रायः सभी उदाहरणों में वह लौकिक प्रसंग जिसमें पार्वती अर्जुन की पीठ पर बने मांगलिक चिह्न को देखने के लिए ही शिव को अर्जुन से युद्ध के लिए प्रेरित करती हैं, भी दर्शाया गया है जो भारतीय मूर्तिकला में स्थानीय, सामाजिक लोक प्रसंगों के प्रभाव की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण है। संख्या में भी तीसरे वर्ग की मूर्तियाँ सर्वाधिक हैं, जिन्हें मन्दिरों के नरथर, अधिष्ठान एवं स्तम्भों पर उत्कीर्ण किया गया है। ऐसे उदाहरण गुप्त काल से होयसल काल तक और उसके बाद भी मिलते हैं। राजौना (गुप्त काल) के उदाहरण में अर्जुन को 'पंचाग्नि' तप करते दिखाया गया है जिनके समीप ही मकरवाहिनी गंगा भी उपस्थित हैं। यह गंगा किनारे किये जाने वाले तप की अभिनव प्रस्तुति है। भुवनेश्वर के प्रारम्भिक मन्दिरों पर कथात्मक अंकन में अर्जुन तथा किरात को एक शूकर पकड़े हुए तथा कथा के क्रम में आगे अर्जुन को शिवलिङ्ग के समक्ष अंजलिबद्ध-मुद्रा में आमूर्तित किया गया है। इसी प्रकार चालुक्य, चोल एवं होयसल पुरास्थलों की मूर्तियों में अर्जुन और किरात के बीच के युद्ध प्रसंग में श्वान का अंकन भी प्रासंगिक है क्योंकि आखेट के दृश्यांकन में श्वान के अंकन की नियमित परम्परा मिलती है। साथ ही शूकर देहधारी असुर के आहत होने के बाद उसे मानवरूप में प्रकट होते भी दिखलाया गया है। होयसल पुरास्थलों के उदाहरणों में कभी-कभी अर्जुन की तपस्या में विघ्न उपस्थित करने की इच्छा से इन्द्र द्वारा भेजी अप्सराओं के नृत्य एवं संगीत का दृश्य भी प्रस्तुत किया गया है।

उपरोक्त अंकन के अतिरिक्त लोक-कथानक के अनुसार पार्वती की इच्छा से शिव का अर्जुन से युद्ध और युद्ध के क्रम में पार्वती द्वारा अर्जुन के पृष्ठभाग पर अंकित मांगलिक चिह्न देख लिये जाने और उसके पश्चात् एक हाथ उठाकर पार्वती का शिव को युद्ध समाप्त करने का संकेत देने जैसे कथा प्रसंग प्रायः होयसल कालीन एवं कर्नाटक एवं आन्ध्र के सीमान्त क्षेत्रों के उदाहरणों में द्रष्टव्य हैं। कथा के अन्तिम खण्ड में शिव पार्वतीसहित अर्जुन को पाशुपत-अस्त्र प्रदान करते दिखाये गये हैं। ऐसे स्वरूप में अधिकतर शिव-पार्वती आसीन हैं और सम्मुख अर्जुन की अंजलिबद्ध आकृति शिव-कृपा से अभिभूत दिखायी गयी है। शिव वाहन नन्दी का अंकन केवल कुछ ही स्थलों (पट्टडकल, दारासुरम्, कडूर और डोण्डालूर) पर हुआ है। सामान्य रूप से त्रिनेत्र शिव परशु, मृग, सर्प और वरद से युक्त हैं जबकि अर्जुन छन्नवीर वेषधारी निरूपित हैं।

चण्डेशानुग्रह स्वरूप की भी कुछ अपनी विशिष्टताएँ हैं। उत्तर भारत में इस स्वरूप का साहित्यिक सन्दर्भ अनुपलब्ध है और सम्भवतः इसी कारण मूर्तिगत उदाहरण भी नहीं मिलता है। दूसरी ओर दक्षिण भारत में अनेकशः इस स्वरूप की मूर्तियाँ तथा उनके साहित्यिक सन्दर्भ उपलब्ध हैं। दक्षिण भारत के सन्दर्भों के आधार पर ही कांचीपुरम् के कैलाशनाथ, मातंगेश्वर एवं मुक्तेश्वर मन्दिरों पर चण्डेशानुग्रह स्वरूप की एकल मूर्तियाँ उकेरी गयीं, जिनमें चतुर्भुज शिव को चण्डेश पर अनुग्रह करते दिखाया गया है। यदि विकास की दृष्टि से देखें तो इन उदाहरणों में कांचीपुरम् के कैलाशनाथ मन्दिर का उदाहरण कई दृष्टियों से विशिष्ट और गतिशील है। इस मूर्ति में चण्डेशानुग्रह की कथा के तीनों अंश क्रमबद्ध रूप में प्रदर्शित किये गये हैं जिनमें पिता के पैरों पर विचारशर्मन् द्वारा प्रहार करने और पुत्र के अप्रत्याशित व्यवहार से हतप्रभ तथा घायल होकर गिरते पिता की आकृति का अंकन महत्त्वपूर्ण है। साथ ही विचारशर्मन् की अपार भक्ति से प्रसन्न होकर शिव द्वारा उसे 'चण्डेश' पद प्रदान करने और उस पर अनुग्रह करने का नयनाभिराम अंकन हुआ है। इस स्वरूप का इतना क्रमवार अंकन अन्यत्र नहीं मिलता है।

चोल पुरास्थलों से प्राप्त चण्डेशानुग्रह मूर्तियों की भी अपनी विशिष्टताएँ रही हैं। तंजौर, गंगैकोण्डचोलपुरम् एवं चिदम्बरम् जैसे कला–केन्द्रों से इस स्वरूप के जो उदाहरण मिलते हैं, उनमें तुलनात्मक विकास भी स्पष्ट है। चोल उदाहरणों में पल्लव शैली की एकल शिव प्रतिमाओं से अलग शिव को पार्वतीसहित आसीन और भक्त चण्डेश पर अनुग्रह करते दर्शाया गया है। इनमें पार्वतीसहित आसीन चतुर्भुज शिव परशु तथा मृग सहित निरूपित हैं एवं शेष दो हाथों से बालक चण्डेश के मस्तक पर पुष्पों की माला से उष्णीष बाँधते दिखाये गये हैं। यह स्वरूप स्पष्टतः *उत्तरकामिकागम्* में वर्णित सन्दर्भ से निर्दिष्ट है।

अनेक चोल मन्दिरों में इस स्वरूप का सांकेतिक अंकन भी हुआ है। गंगैकोण्डचोलपुरम् के बृहदीश्वर मन्दिर की एक रथिका में उकेरी चण्डेशानुग्रह मूर्ति भाव भूमि पर अलौकिक और भव्यतम् है। इसमें शिव चण्डेश के सिर पर पुष्पमाला से स्नेहपूर्वक उष्णीष बाँध रहे हैं जो शिव की असीम कृपा का मूर्त रूपान्तरण है। इस मूर्ति की पृष्ठभूमि में कहीं न कहीं मन्दिर के निर्माणकर्ता राजेन्द्र चोल की स्वयं की चण्डेश के रूप में प्रस्तुति और इस प्रकार शिव का अनुग्रह प्राप्त करने की इच्छा भी अभिव्यक्त हुई है। मुख्यरथिका के पार्श्वों की दो रथिकाओं में कथा के पूर्ववर्ती अंशों को भी दिखाया गया है।

विष्ण्वनुग्रह और नन्दीशानुग्रह स्वरूप के प्रतिमालाक्षणिक सन्दर्भ तथा मूर्तियाँ अत्यल्प हैं। विष्ण्वनुग्रह स्वरूप विष्णु पर शिव के अनुग्रह से सम्बन्धित

है जिसकी पृष्ठभूमि में शैव और वैष्णव धर्मों के बीच का समन्वय भाव रहा है। इस स्वरूप की मूर्तियों के उदाहरण सातवीं से १२वीं शती ई० के मध्य कांचीपुरम् (कैलाशनाथ मन्दिर), गंगैकोण्डचोलपुरम् (बृहदीश्वर मन्दिर) और पाटलगंगा (श्री शैलम् मन्दिर) से प्राप्त हुए हैं।

नन्दीशानुग्रह स्वरूप में भक्त की भगवान् के प्रति अगाध श्रद्धा का मूर्त अंकन हुआ है जिसके शास्त्रीय सन्दर्भ दक्षिण भारतीय शिल्पशास्त्रीय ग्रन्थों में उपलब्ध हैं। संयोग से इस स्वरूप की मूर्तियाँ नहीं मिली हैं। पर सम्भव है भविष्य में इस स्वरूप की कोई मूर्ति प्राप्त हो जाय। विघ्नेश्वरानुग्रह या गणेशानुग्रह स्वरूप का निरूपण भी केवल ग्रन्थों में ही उपलब्ध है।

सन्दर्भ ग्रन्थ-सूची

(क) मूल ग्रन्थ

अथर्ववेद, निर्भयसागर प्रेस, बम्बई, १९८५ से १९९६, आर०टी०एच० ग्रिफिथ (अनु०), चौखम्भा, जिल्द १५, संस्कृत सीरीज, १९६८

अग्निपुराण, सरस्वती प्रेस, कलकत्ता, १८८२; श्री वेंकटेश्वर स्ट्रीट प्रेस, बम्बई, संवत् १९५८; मनमथ दत्त शास्त्री; (दो खण्ड) खण्ड एक, वाराणसी, १९६७, खण्ड दो, वाराणसी, १९६७; श्रीराम शर्मा आचार्य (सम्पा०), प्रथम संस्करण, बरेली, १९६८

अपराजितपृच्छा (भुवनदेव कृत), पोपटभाई अंबाशंकर मांकड (सम्पा०), गायकवाड़ ओरियण्टल सीरीज, खण्ड ११५, बड़ौदा, १९५०

अंशुमद्भेदागम्, आनन्दाश्रम संस्कृत सीरीज, अंक ४१, पूना, १९००, परिशिष्ट (टी०ए० गोपीनाथ राव), एलीमेण्ट्स ऑफ हिन्दू आइकोनोग्राफी, खण्ड एक, भाग दो, भाग एक एवं दो

ऐतरेय-ब्राह्मण, आनन्दाश्रम ग्रन्थांक ३२, १९३०, मार्टिन हाग (सम्पा०), बम्बई, १९६३

ऋग्वेद, एफ० मैक्समूलर (सम्पा०), लन्दन, वैदिक संशोधन मण्डल, पूना, ए०एच० विल्सन (अनु०), पूना, श्रीपद शर्मा, बम्बई, १९४०

किरातार्जुनीयम् *(भारवि कृत),* टी० गणपति शास्त्री (सम्पा०), पूना, १९२२

देवता मूर्तिप्रकरण तथा रूपमण्डन (सूत्रधार मण्डन कृत), कलकत्ता संस्कृत ग्रन्थमाला-१२, कलकत्ता, १९३६

देवी माहात्म्य (मार्कण्डेयपुराण), पार्जिटर (सम्पा०), कलकत्ता, १९०४; श्रीराम शर्मा आचार्य (सम्पा०), प्रथम संस्करण, बरेली, १९६७

पद्मपुराण, गुरुमण्डल ग्रन्थमाला-१८, कलकत्ता, १९५७-५९, श्रीराम शर्मा आचार्य (सम्पा०), दो खण्ड, प्रथम खण्ड, प्रथम संस्करण, बरेली, १९६८, द्वितीय खण्ड, प्रथम संस्करण, बरेली, १९६९

बृहत्संहिता (वराहमिहिर कृत), सरस्वती प्रेस, कलकत्ता, १८८०, जितेन्द्रनाथ बनर्जी द्वारा उद्धृत, दि डेवलपमेण्ट ऑफ हिन्दू आइकोनोग्राफी, परिशिष्ट-बी, भाग एक, पृ० ५७९-५८२

ब्रह्मवैवर्तपुराण, गुरुमण्डल ग्रन्थमाला सीरीज, कलकत्ता, १९५५, श्री वेंकटेश्वर स्ट्रीट प्रेस, बम्बई, संवत् १९६६, तारिणीश झा (सम्पा०), हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग, १९८१

भगवद्गीता, गीता प्रेस, गोरखपुर, संवत् २०१४

भविष्यपुराण, वेंकटेश्वर प्रेस, बम्बई, १९५९

भागवतपुराण, पूर्णेन्दु नारायण सिंह (सम्पा०), द्वितीय संस्करण, मद्रास, १९५०; गीता प्रेस, गोरखपुर, संवत् २०१८

मत्स्यपुराण, रामप्रताप त्रिपाठी (सम्पा०), हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग, संवत् २००३, श्रीराम शर्मा आचार्य (सम्पा०), प्रथम संस्करण, बरेली, १९७०

मयमत, ब्रुनो डेगल्स (सम्पा०), दिल्ली, १९९४, (पु०मु०)

महाभारत, क्रिटिकल एडीशन, पूना, प्रतापचन्द्र राय (सम्पा०), कलकत्ता, प्रतापचन्द्र राय (अनु०), कलकत्ता

मानसार, पी०के० आचार्य (सम्पा०), सात खण्ड (एक से पाँच खण्ड), इलाहाबाद, (छठा-सातवाँ खण्ड), नई दिल्ली, १९२७-४६

रामायण (वाल्मीकि कृत), गीता प्रेस, गोरखपुर, संवत् १९०२

रूपमण्डन (सूत्रधार मण्डन कृत), बलराम श्रीवास्तव (सम्पा०), वाराणसी, संवत् २०२१

लिङ्गपुराण, जे० विद्यासागर (सम्पा०), बिबिलियोथिका इण्डिका, कलकत्ता, १८८५; जे०एल० शास्त्री (सम्पा०), दो भाग, भाग एक, खण्ड पाँच, प्रथम संस्करण, दिल्ली, १९७३, भाग दो, खण्ड छः, प्रथम संस्करण, दिल्ली, १९७३

वराहपुराण, आनन्दाश्रम संस्कृत सीरीज, पूना, १९०५

वायुपुराण, रामप्रताप त्रिपाठी शास्त्री (अनु०), हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग, संवत् २००७

विष्णुधर्मोत्तरपुराण, प्रियबाला शाह (सम्पा०), बड़ौदा, १९५८, प्रियबाला शाह (अनु०), बड़ौदा, १९६१, स्टैला क्रैमरिश (अनु०), कलकत्ता, १९२८

विष्णुपुराण, श्री मुनिलाल गुप्त (सम्पा०), गीता प्रेस, गोरखपुर, संवत् १९९०

शतपथ-ब्राह्मण, अलवर्त बेबर (सम्पा०), लिपजिंग, १९२४

शिल्पप्रकाश (रामचन्द्र कुलाचार कृत), एलिस बोनर ऐण्ड सदाशिवरथ शर्मा (अनु०), लिडेन, १९६६

शिल्परत्न (श्रीकुमार कृत), त्रिवेन्द्रम् संस्कृत सीरीज, त्रिवेन्द्रम्, १९२२, १९२६

शिवपुराण, श्रीराम शर्मा आचार्य (सम्पा०), बरेली, १९७२; जे०एल० शास्त्री (सम्पा०), मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली, चार खण्ड, खण्ड एक, १९७०, खण्ड दो, १९९०, खण्ड तीन, १९८०, खण्ड चार, १९७०

समराङ्गण सूत्रधार (भोजदेव कृत), गायकवाड़ ओरियण्टल सीरीज, १९२४, १९२५

स्कन्दपुराण, ए०बी०एल० अवस्थी (सम्पा०), द्वितीय संस्करण, भाग एक, लखनऊ, १९७६

(ख) सहायक ग्रन्थ एवं लेख-सूची

अजीत प्रसाद सिंह, खजुराहो की शैव एवं शाक्त प्रतिमाएँ, वाराणसी, १९९१

अरविन्द कुमार सिंह, कलचुरि अभिलेखों में शिव, *पुरातन,* खण्ड छः, १९८९, पृ० १५९-६०

आई०के० शर्मा, दि डेवलपमेण्ट ऑफ अर्ली शैव आर्ट ऐण्ड आर्किटेक्चर, दिल्ली, १९८२

आई०के० त्यागी, शैविज्म इन ऐंशियण्ट इण्डिया, मेरठ, १९८२

आनन्द कुमार रिसवुड, तालगाँव का शिव मन्दिर, *पुरातन,* खण्ड एक, १९८४, पृ० ५८-६१

आनन्द प्रकाश श्रीवास्तव, (१) एलोरा की ब्राह्मण देव प्रतिमाएँ, इलाहाबाद, १९८८; (२) एलोरा की शैव प्रतिमाएँ, दिल्ली, १९९३

आर०एस० गर्ग, शैव प्रतिमाएँ, भोपाल, १९९०

आर०एस० गुप्ते, आइकोनोग्राफी ऑफ दि हिन्दू, बुद्धिस्ट ऐण्ड जैन, बम्बई, १९७२

आर०एस० गुप्ते एवं बी०डी० महाजन, अजन्ता, एलोरा ऐण्ड औरंगाबाद केव्स, बम्बई, १९७२

आर०के० दास, टेम्पुल ऑफ तमिलनाडु, बम्बई, १९६४

आर०के० भट्टाचार्य, कन्सेप्सन ऑफ रुद्र इन दि अर्ली वैदिक टेक्स्ट, *जर्नल ऑफ दि ओरियण्टल इन्स्टीट्यूट,* बड़ौदा, खण्ड २४, १९७४-७५, पृ० २८४-३००

आर०के० शर्मा, सुल्लैरे एवं गुप्त (सम्पा०), कलचुरि राजवंश और उनका युग, दो खण्ड, नई दिल्ली, १९९८

आर०जी० भण्डारकर, वैष्णविज्म, शैविज्म ऐण्ड माइनर रीलिजियस सिस्टम, वाराणसी, १९६५, (पु०मु०)

आर०जे० मेहता, मास्टरपीसेज़ ऑफ इण्डियन स्कल्प्चर, बम्बई, १९६८

आर०डी० बनर्जी, (१) दि हैहयज ऑफ त्रिपुरी ऐण्ड देयर मानुमेण्ट्स, *मेमॉयर ऑफ दि आर्कियोलॉजिकल सर्वे ऑफ इण्डिया,* खण्ड २६, १९३१; (२) ईस्टर्न इण्डियन स्कूल ऑफ मेडिवल स्कल्प्चर, दिल्ली, १९३२, (पु०मु०)

आर० नागास्वामी, (१) पुण्डरीकपुरम् टेम्पुल ऐण्ड इट्स स्कल्प्चर्स, *रूपलेखा,* खण्ड ३२, अंक एक, १९६१, पृ० ५३-५७; (२) सम कन्ट्रीब्यूशन ऑफ दि पॉण्ड्य टू साउथ इण्डियन आर्ट, *आर्टिब्स एशिआई,* खण्ड २७ (तीन), १९६४, पृ० २६५-७४; (३) मास्टरपीसेज़ ऑफ अर्ली साउथ इण्डियन ब्रोन्जेज, नई दिल्ली, १९८३: (४) शिवभक्ति, दिल्ली, १९८९; (५)

गंगैकोण्डचोलपुरम्, मद्रास, १९७०; (६) **आर्ट ऑफ तमिलनाडु**, तमिलनाडु, १९७२; (७) **साउथ इण्डियन स्टडीज**, भाग एक एवं दो, चेन्नई, १९७९; (८) **आर्ट ऐण्ड कल्चर ऑफ तमिलनाडु**, दिल्ली, १९८०; (९) **आन डेटिंग साउथ इण्डियन ब्रोन्जेज**, *एसे इन ऑनर ऑफ डॅगलस बैरेट एवं जॉन गुय* (सम्पा०), नई दिल्ली, १९९५, पृ० १२०-२२

आर०सी० अग्रवाल, (१) **रावण अप्लिफ्टिंग दि कैलाश : ऐन अनपब्लिश्ड स्टोन रिलीफ फ्रॉम राजस्थान**, *भारतीय विद्या,* खण्ड १६ (तीन-चार), १९५६, पृ० ५३; (२) **सम शैव एण्टीक्वीटिज फ्रॉम राजस्थान**, *अड्यार लाइब्रेरी बुलेटिन,* खण्ड २०, १९५६, पृ० ५७-८३

आर०सी० हाजरा, **स्टडीज इन दि उप-पुराण** (खण्ड दो), कलकत्ता, १९५८

आशा कालिया, **आर्ट ऑफ ओसियन टेम्पुल्स**, नई दिल्ली, १९८२

इन्दिरा वी० पैटरसन, **तापस ऐण्ड क्षात्र धर्म इन भारवि किरातार्जुनीयम्**, *(डॉ०एस०एस० जानकी फेलिसिटेशन वॉल्यूम) दि जर्नल ऑफ ओरियण्टल रिसर्च,* मद्रास, खण्ड ५६-५७, १९९२, पृ० ३५१-६१

इन्दुमती मिश्रा, **प्रतिमा विज्ञान**, भोपाल, १९७२

इ०बी० हैवेल, **दि मैथेमेटिकल बेसिस ऑफ इण्डियन आइकोनोग्राफी**, *रूपम,* कलकत्ता, अंक २९, जनवरी १९२७, पृ० ६-१३

उदय नारायण राय, **गुप्त राजवंश तथा उसका युग**, इलाहाबाद, १९७७

ए०एम० गास्टोम, **शिव इन डान्स, मिथ्स ऐण्ड आइकोनोग्राफी**, बम्बई, १९८२

ए०एस० अन्निगेरी, **ए गाइड टू दि पट्टडकल टेम्पुल्स**, धारवाड़, १९६१

ए०ए० मैक्डोनल, **दि डेवलपमेण्ट ऑफ अर्ली हिन्दू आइकोनोग्राफी**, *जर्नल ऑफ दि रायल एशियाटिक सोसायटी,* लन्दन, १९७७, पृ० ५९२-६०२

ए०एल० श्रीवास्तव, **पंचाल का मूर्ति-शिल्प**, कासगंज, २००२

ए० कमला वासिनी, **आइकोनोग्राफी ऑफ शिव**, दिल्ली, १९९२

ए०के० कुमारस्वामी, (१) **दि डॉन्स ऑफ शिव**, न्यूयार्क, १९१८; (२) **हिस्ट्री ऑफ इण्डियन ऐण्ड इण्डोनेशियन आर्ट**, न्यूयार्क, १९२६; (३) **इन्ट्रोडक्शन टू इण्डियन आर्ट**, दिल्ली, १९६९

ए०के० श्रीवास्तव, **कैटलॉग ऑफ दि शैव स्कल्प्चर्स इन गर्वन्मेण्ट म्यूजियम-मथुरा**, मथुरा, १९९१

ए०के० सिंह, (१) **अन्केयर्ड स्कल्प्चर फ्रॉम विरसिंहपुर**, *कला* (जर्नल ऑफ इण्डियन आर्ट हिस्ट्री कांग्रेस), ए०एल० श्रीवास्तव (सम्पा०), गुवाहाटी, खण्ड दो, १९९४-९५, पृ० ८७-९२; (२) **टेम्पुल्स ऑफ दि कलचुरि पीरियड**, दिल्ली, २००२

ए० गोस्वामी, इण्डियन टेम्पुल स्कल्प्चर, कलकत्ता, १९५६

ए० गुरुमूर्ति, स्कल्प्चर ऐण्ड आइकोनोग्राफी, मद्रास, १९९०

एच०एम० नायक एवं आर० गोपाल (सम्पा०), साउथ इण्डियन स्टडीज, *डॉ० टी०वी० महालिङ्गम् कोमोमोरेशन वॉल्यूम,* मैसूर, १९९०

एफ०एच० ग्रेवली एवं रामचन्द्रन, कैटलॉग ऑफ दि साउथ इण्डियन हिन्दू मेटल इमेजेज इन दि मद्रास गवर्नमेण्ट म्यूजियम, *बुलेटिन ऑफ दि मद्रास गवर्नमेण्ट म्यूजियम,* खण्ड एक, अंक दो, १९३२

एच०के० शास्त्री, साउथ इण्डियन इमेजेज ऑफ गॉड्स ऐण्ड गॉडेसेस, मद्रास, १९७४

एच०जिम्मर, मिथ्स ऐण्ड सिम्बलस् इन इण्डियन आर्ट एण्ड सिविलाइजेशन, न्यूयार्क, १९६२

एच०जी० शास्त्री, मेन टाइप्स ऑफ शैव स्कल्पचर्स इन गुजरात, *पुरातन,* खण्ड छः, १९८९, पृ० १००

एच० भीष्म पाल, दि टेम्पुल्स ऑफ राजस्थान, जयपुर, १९६९

एन०के० चौधरी, शिव-रुद्र ऐण्ड लिङ्ग वर्शिप, *पुरातन,* खण्ड छः, १९८९, पृ० १३-१७

एन०पी० जोशी, (१) मथुरा की मूर्तिकला, मथुरा, १९६६; (२) कैटलॉग ऑफ दि ब्राह्मैनिकल स्कल्प्चर इन दि स्टेट म्यूजियम, लखनऊ, १९७२, खण्ड एक-दो; (३) प्राचीन भारतीय मूर्ति विज्ञान, पटना, १९७७; (४) अर्ली फार्म्स ऑफ शिव, *डिस्कोरसेज ऑन शिव,* बम्बई, १९८४, पृ० ४७-६१; (५) पुराणज ऐज इन्टरप्रेटर्स ऑफ आइकन्स, *कला* (जर्नल ऑफ इण्डियन आर्ट हिस्ट्री कांग्रेस), एम०एन०पी० तिवारी एवं कमल गिरि (सम्पा०), खण्ड सात, २०००-२००१

ए०बी०एल० अवस्थी, (१) स्टडीज इन स्कन्दपुराण (चार खण्ड), लखनऊ, १९७६; (२) गरुड़पुराण : एक अध्ययन, लखनऊ, १९६८; (३) ब्राह्मैनिकल आर्ट ऐण्ड आइकोनोग्राफी, लखनऊ, १९७६

एम०आर० काले (अनु०), (१) किरातार्जुनीयम् (अनुच्छेद एक-तीन), दिल्ली, १९६६; (२) दि मेघदूत ऑफ कालिदास, पटना, १९६९

एम०आर० रॉव, शैवाइट डीटीज ऑफ आन्ध्र प्रदेश, तिरूपति, १९६६

एम०ए० ढाकी, (१) चण्डेश इन नॉर्थ इण्डियन ट्रेडीशन, *जर्नल ऑफ एशियाटिक सोसाइटी ऑफ बंगाल,* खण्ड १२, अंक एक-दो, १९७०, पृ० १०३-०९; (२) चोल स्कल्प्चर, *छवि-गोल्डेन जुबली वॉल्यूम,* (खण्ड एक), आनन्दकृष्ण (सम्पा०), १९७१, पृ० २६३-२८९

एम०एम० डेनेक, (१) **इण्डियन स्कल्प्चर**, लन्दन, १९६७; (२) **इण्डियन आर्ट**, लन्दन, १९७०

एम०एस० शुक्ला, **शैव ट्रेडिशन ऐण्ड आर्ट ऑफ साउथ ईस्ट एशिया**, *पुरातन*, खण्ड छः, १९८९, पृ० १०३-१०८

एम०के० धवलीकर, **मास्टरपीसेज़ ऑफ राष्ट्रकूट आर्ट दि कैलाश**, बम्बई, १९६०

एम०जी० मजूमदार, **ए गाइड टू दि स्कल्प्चर इन दि इण्डियन म्यूजियम**, दिल्ली, १९३७

एम०पी० जोशी, **ए रावणानुग्रह मूर्ति फ्रॉम कुमायूँ**, *जर्नल ऑफ ओरियण्टल इन्स्टीट्यूट*, बड़ौदा, खण्ड ३२, अंक तीन-चार, १९८२-८३, पृ० ३००-३०२

एम०एन०पी० तिवारी एवं कमल गिरि, (१) **मध्यकालीन भारतीय मूर्तिकला**, वाराणसी, १९९१; (२) **मध्यकालीन भारतीय प्रतिमालक्षण**, वाराणसी, १९९७

एम०एस० नागराज रॉव, (१) **ए किरातार्जुनीयम् रिलीफ स्कल्प्चर**, *प्रो०पी०बी० देसाई फेलिसिटेशन वॉल्यूम*, श्रीनिवास रित्ती एवं गोपाल (सम्पा०), धारवाड़, १९७१, पृ० १९३-९५; (२) **ए किरातार्जुनीयम् स्कल्प्चर फ्रॉम हलेबीड**, *प्रो०जी०एच० खरे फेलिसिटेशन वॉल्यूम*, एम०एस० माते एवं कुलकर्णी (सम्पा०), १९७४, पृ० १५१-५८; (३) **किरातार्जुनीयम् इन इण्डियन आर्ट**, दिल्ली, १९७९; (४) **दि चालुक्य ऑफ बादामी** (सेमिनार पेपर), बंगलौर, १९७८

एम० नागराज, **किरात इन दि लैटर मेडिवल आर्ट ऑफ तमिलनाडु**, *ईस्ट ऐण्ड वेस्ट*, खण्ड ४३, अंक एक-चार, दिसम्बर १९९३, पृ० २९५-९९

एम० रामाराव, **शैवाइट दैत्य ऑफ आन्ध्र प्रदेश**, तिरुपति, १९६६

एम० विंटरनित्ज, **हिस्ट्री ऑफ इण्डियन लिट्रेचर**, खण्ड एक, नई दिल्ली, १९७७ (पु०मु०),

एल०के० त्रिपाठी, **दि टेम्पुल्स ऑफ बाडोली**, वाराणसी, १९७५

एल० फैड्रिक, **इण्डियन टेम्पुल्स ऐण्ड स्कल्प्चर्स**, लन्दन, १९१२

एलन डेनिलाव, **हिन्दू पोलिथिज्म**, न्यूयार्क, १९६४

ए०लिप्पी, **इण्डियन मेडिवल स्कल्प्चर**, एम्स्टरडम, १९७८

ए०वी० नरसिम्हमूर्ति, **शैव ट्रेडिशन इन कर्नाटक आर्ट**, *पुरातन*, खण्ड छः, १९८९, पृ० ३०-३२

एस०आर० बालासुब्रह्मण्यम, (१) **अर्ली चोल आर्ट**, (खण्ड एक), बम्बई, १९६६; (२) **अर्ली चोल टेम्पुल्स** (९०७ से ९८५ ई०), नई दिल्ली,

१९७१; (३) मिडिल चोल टेम्पुल्स (९८५-१०७० ई०), हरियाणा, १९७५; (४) लैटर चोल टेम्पुल्स, नई दिल्ली, १९७९

एस०एन० पाण्डेय, शैवाइट टेम्पुल्स ऐण्ड स्कल्प्चर्स ऐट सोमनाथ, दिल्ली, १९८७

एस०एल० नागर, (१) कम्पोजिट डीटिज इन इण्डियन आर्ट ऐण्ड लिट्रेचर, नई दिल्ली, १९८९; (२) शिव इन आर्ट, लिट्रेचर ऐण्ड थॉट, नई दिल्ली, १९९४

एस०एम० गुप्ता, (१) फ्रॉम दैत्य टू देवता इन हिन्दू माइथोलॉजी, बम्बई, १९२७; (२) लिजेण्डस् एराउण्ड शिव, बम्बई, १९७९

एम०के० मैती, (१) मास्टरपीसेज़ ऑफ होयसल आर्ट, बम्बई, १९७८; (२) मास्टरपीसेज़ ऑफ पल्लव आर्ट, बम्बई, १९८२

एस०के० रामचन्द्र रॉव, (१) प्रतिमाकोष (खण्ड एक), बंगलौर, १९८८; (२) दि डान्स ऑफ शिव, *एशिया,* खण्ड दो, जून १९५३, पृ० ३१-३५; (३) इण्डियन आइकोनोग्राफी, बंगलौर, १९८१

एस०के० सरस्वती, ए सर्वे ऑफ इण्डियन स्कल्पचर, नई दिल्ली, १९७५

एस०डी० त्रिवेदी, (१) पुरातात्त्विक स्थल सिरोन-खुर्द, *बुलेटिन ऑफ म्युजियम ऐण्ड आर्कियोलॉजी इन यू०पी०,* अंक २५, १९८०, पृ० ५६-६२; (२) स्कल्प्चर्स इन दि झाँसी म्यूजियम, झाँसी, १९८३; (३) सम रावणानुग्रह आइकन्स फ्रॉम सेन्ट्रल इण्डिया : ए एप्राइजल, *पुरातन,* खण्ड आठ, १९९१, पृ० ३८-४९; (४) सम रेयर स्कल्प्चर्स फ्रॉम कालिंजर, *डिमीनेशन ऑफ इण्डियन* आर्ट *(पुप्पुल जयकर सेवेन्टी),* लोकेशचन्द्र एवं ज्योतिन्द्र झा (सम्पा०), दिल्ली, १९८६, पृ० ५४५

एस०पी० तिवारी, हिन्दू आइकोनोग्राफी, नई दिल्ली, १९७९

एस०बी० सिंह, ब्राह्मैनिकल आइकन्स इन नॉर्दर्न इण्डिया, नई दिल्ली, १९७७

एस० राजशेखर, मास्टरपीसेज़ ऑफ विजयनगर आर्ट, बम्बई, १९८३

एस०वी० वेंकटेश्वर, ओरिजिन्स ऑफ हिन्दू आइकोनोइज्म, *दि इण्डियन हिस्टोरिकल क्वाटर्ली,* खण्ड तीन, १९२७, पृ० २९८-३०६

ए० सरकार, शिव इन मेडिवल इण्डियन लिट्रेचर, कलकत्ता, १९७४

एस०सी० काला, स्कल्प्चर्स इन दि म्यूनिसिपल म्यूजियम, इलाहाबाद, १९४६

ओ०सी० कैल, एलिफेण्टा, बम्बई, १९८४

ओ०सी० गांगुली, (१) साउथ इण्डियन ब्रोन्जेज, कलकत्ता, १९१४; (२) दि आर्ट ऑफ पल्लव, बम्बई, १९५७; (३) दि आर्ट ऑफ राष्ट्रकूट, कलकत्ता, १९५८

ओ०सी० हाण्डा, **शिव इन आर्ट**, नई दिल्ली, १९९२
कन्हैयालाल एच० वकील, **रार्क कट टेम्पुल्स एराउण्ड बाम्बे**, बम्बई, १९३२
कन्हैयालाल अग्रवाल, **खजुराहो**, दिल्ली, १९८०
कमल गिरि, मारुति नन्दन तिवारी एवं विजय प्रकाश सिंह. **काशी के मन्दिर एवं मूर्तियाँ**, वाराणसी, २०००
कमलेश सिन्हा एवं दिनेश चन्द्र, **भारतीय प्रतिमा विज्ञान**, नई दिल्ली, १९९०
कँवरलाल, **टेम्पुल्स ऐण्ड स्कल्प्चर ऑफ भुवनेश्वर**, दिल्ली, १९७६
करुणा खरे, **प्रतिमा विज्ञान**, लखनऊ, १९८१
करुणा गिरि, **मोढ़ेरा का सूर्य मन्दिर**, इलाहाबाद, १९९९
कल्याण अंक, (१) **श्री शिव अंक**, गोरखपुर, १९३३; (२) **उपासना अंक**, गोरखपुर, १९६८
कारमेल बर्क्सन, **एलोरा, कान्सेप्ट ऐण्ड स्टाइल**, नई दिल्ली, १९९२
कृष्णदेव, (१) **खजुराहो**, नई दिल्ली, १९८६; (२) **शैविज़्म इन नेपाल**, *पुरातन,* खण्ड छः, १९८९
के०आर० श्रीनिवासन, **दि धर्मराज रथ ऐण्ड इट्स स्कल्प्चर्स**, नई दिल्ली, १९७५
के० कृष्णामूर्ति, **महासदाशिव इन हिन्दू आइकोनोग्राफी**, *रंगावली : एम०आर० रॉव फेलिसिटेशन वॉल्यूम,* नरसिम्हा मूर्ति एवं रॉव (सम्पा०), दिल्ली, १९८३, पृ० २६७-८९
के०के चक्रवर्ती (सम्पा०), **भारतीय कला में शैव परम्परा**, *पुरातन,* खण्ड चार, १९८६
के०डी० वाजपेयी, (१) **सम इन्टरेस्टिंग स्कल्प्चर फ्रॉम त्रिपुरी**, *सत्कारी मुकर्जी फेलिसिटेशन वॉल्यूम,* बी०पी० सिन्हा एवं अन्य (सम्पा०), वाराणसी, १९६९, पृ० १५९-१६१;(२) **इवोल्यूशन ऑफ दि आइकोनोग्राफी ऑफ शिव**, *डॉ० डी०एन० शास्त्री फेलिसिटेशन वॉल्यूम,* केशवराम पाल (सम्पा०), १९८२, पृ० २७१-२७३; (३) **सम साइलेन्ट ट्रेट्स इन दि आइकोनोग्राफी ऑफ शिव ऐण्ड शक्ति**, *सुधाकर चट्टोपाध्याय कोमेमोरेशन वॉल्यूम,* प्रनभानन्द जस (सम्पा०), कलकत्ता, १९८४, पृ० १५५-१६१; (४) **दि शैव आर्ट ऑफ एम०पी० विथ् रिफरेन्स टू कालिदास ऐण्ड बाणभट्ट**, *पुरातन,* खण्ड आठ, १९९१, पृ० ७-९
के०वी० रमन (सम्पा०), **गोपुर स्कल्प्चर फ्रॉम वृद्धागिरीश्वर टेम्पुल**, *श्री के०आर० श्रीनिवासन फेस्टक्रिफ्ट,* १९८३
के०वी० शास्त्री एवं गाड़रे (सम्पा०), **विश्वकर्मा वास्तुशास्त्र**, *तंजौर सरस्वती महल सीरीज,* अंक ८५, १९५८

के०वी० सुन्दरराजन, (१) सम आइकोनोग्राफिक एलिमेण्ट्स, *ललित कला,* खण्ड आठ, अक्टूबर १९६०, पृ० १५-२४; (२) आर्ट ऑफ साउथ इण्डिया : तमिलनाडु ऐण्ड केरल, दिल्ली, १९७८

के०सी० पाणिग्रही, आर्कियोलॉजिकल रिमेन्स ऐट भुवनेश्वर, कलकत्ता, १९६१

गयाचरण त्रिपाठी, वैदिक देवता उद्भव एवं विकास, वाराणसी, १९८२

गायत्री अखौरी, शैविज्म इन ऐंशियण्ट बिहार, पटना, १९८८

ग्रेवली एवं सी० शिवराममूर्ति, इण्डियन स्कल्प्चर *(मोस्टली सदर्न),* मद्रास, १९३९

गोझ्स्टा लाइबर्ट, आइकोनोग्राफिक डिक्शनरी ऑफ दि इण्डियन रिलिजिन्स, लिडेन, १९७६

जितेन्द्र कुमार (सम्पा०), नवीन शैव प्रतिमाएँ, *प्रो०के०डी० वाजपेयी स्मृति अङ्क,* संग्रहालय पुरातत्त्व पत्रिका, अंक ४५-४६, जून-दिसम्बर, १९९०, पृ० १०६-११०

जी०एन० बहोरा, शिव महिमा स्तोत्रम्, जयपुर, १९८४

जी०के० अग्निहोत्री एवं एस०बी० शर्मा, कन्नौज, पुरातत्त्व और कला, फर्रुखाबाद, १९७८

जी०जे० डूब्रिइल, आइकोनोग्राफी ऑफ सदर्न इण्डिया, ए०सी० मार्टिन (अनु०), पेरिस, १९३७

जे०एन० बनर्जी, (१) दि डेवलपमेण्ट ऑफ हिन्दू आइकोनोग्राफी, कलकत्ता, १९५६; (२) दि डेवलपमेण्ट ऑफ रिलीजन इन आर्ट ऐण्ड आर्कियोलॉजी (वैष्णविज्म ऐण्ड शैविज्म), प्रथम संस्करण, लखनऊ, १९६८

जे०एम० सोमसुन्दर पिल्लई, दि ग्रेट टेम्पुल ऐट तंजौर, तमिलनाडु, १९५८

जे०एल० शास्त्री (सम्पा०) ऐंशियण्ट ट्रेडिशन ऐण्ड माइथोलॉजी (शिवपुराण, खण्ड तीन), दिल्ली, १९७०

जे०ली० रॉय डेविडसन, एलोरा ए स्पेशल सप्लीमेण्ट, *मार्ग* खण्ड सात (चार), सितम्बर १९५४, पृ० ६३-७३

जे०सी० हार्ल, गुप्त स्कल्प्चर, ऑक्सफोर्ड, १९७४

टी०ए० गोपीनाथ रॉव, एलिमेण्ट्स ऑफ हिन्दू आइकोनोग्राफी, खण्ड एक, भाग एक और दो, खण्ड दो, भाग एक और दो, मद्रास, १९१४-१६

टी०एन० रामचन्द्रन, (१) चण्डिकेश्वर, *बुलेटिन ऑफ दि मद्रास गवर्नमेण्ट म्यूजियम,* खण्ड एक (दो), १९३२, पृ० १३०-१३३; (२) दि किरातार्जुनीयम् ऑर अर्जुन पेनान्स इन इण्डियन आर्ट, *जर्नल ऑफ इण्डियन सोसाइटी ऑफ ओरियण्टल आर्ट,* कलकत्ता, खण्ड १८, १९५०-

५१, पृ० १-११०; (३) किरातार्जुन इन इण्डियन आर्ट, *जर्नल ऑफ ओरियण्टल रिसर्च,* मद्रास, खण्ड १९, १९५१-५२ (१९५३), पृ० १२७; (४) किरातार्जुनीयम् ऑर अर्जुन पेनान्स, *मार्ग,* खण्ड २३ (तीन), जून १९७०, पृ० ३३-३५

टी०एन० श्रीनिवासन्, ए हैण्डबुक ऑफ साउथ इण्डियन इमेजेज, बम्बई, १९५५

टी०वी० पाथी, एलोरा आर्ट ऐण्ड कल्चर, नई दिल्ली, १९८०

डब्लू०डी०ओ० फ्लाहेर्टी, (१) हिन्दू मिथ्स, ग्रेट ब्रिटेन, १९७६; (२) दि मिथ्स डिपेक्टेड ऐट एलिफेण्टा, *एलिफेण्टा (दि केव ऑफ शिव),* दिल्ली, १९८३

डब्लू० नॉरमन ब्राउन, दि महिम्नास्तवा, पूना, १९६५

डी०आर० भण्डारकर, शिव ऑफ दि प्री-हिस्टोरिक इण्डिया, *जर्नल ऑफ दि इण्डियन सोसाइटी ऑफ ओरियण्टल आर्ट,* खण्ड पाँच, १९३७, पृ० ३२-४०

डी०आर० राजेश्वरी, दि पल्लव स्कल्पचर, नई दिल्ली, १९८८

डी०एन० शुक्ला, (१) भारतीय वास्तुशास्त्र व प्रतिमाविज्ञान, लखनऊ, १९५६; (२) हिन्दू कैनन्स ऑफ आइकोनोग्राफी ऐण्ड पेण्टिंग, (वास्तुशास्त्र), लखनऊ, १९५८; (३) समराङ्गण-सूत्रधार *(शिल्पशास्त्र),* लखनऊ, १९६७

डी०के० विश्वास, सूर्य ऐण्ड शक्ति, *इण्डियन हिस्टोरिकल क्वाटर्ली,* खण्ड २४, १९४८, पृ० १४२-४७

डी०सी० भट्टाचार्य, (१) आइकोनोलॉजी, नई दिल्ली, १९८०; (२) प्रतिमालक्षण ऑफ दि विष्णुधर्मोत्तर, नई दिल्ली, १९९१

थानेस चन्द्र उपरेती, पुराण तत्त्वविमर्श, दिल्ली, १९८६

थामस ई० डोनाल्डसन, हिन्दू टेम्पुल आर्ट ऑफ उड़ीसा (खण्ड तीन), लिडेन, १९८७

दीपक कुमार महाशब्दे, मध्यप्रदेश की शैव प्रतिमाएँ-शैव कैटलाग, भोपाल, १९९१

दुर्गा नन्दन तिवारी, ओसियाँ के मन्दिरों की देव मूर्तियाँ, वाराणसी, १९९९

देबला मित्रा, भुवनेश्वर, नई दिल्ली, १९६८

नरायणपति शर्मा (सम्पा०), स्कन्दपुराण *(काशी खण्ड),* वाराणसी

निर्मला यादव, गणेश इन इण्डियन आर्ट ऐण्ड लिट्रेचर, जयपुर, १९९७

नीलिमा वशिष्ठ, स्कल्प्चरल ट्रेडिशन ऑफ राजस्थान, (ल० ८००-१००० ए०डी०)

प्रकाशेन्द्र माथुर, आशापुरी की परमारकालीन प्रतिमाएँ, *पुरातन,* खण्ड छः, १९८९, पृ० १७४-७५

प्रतापादित्य पाल, इण्डियन स्कल्पचर, खण्ड दो, लांस एंजिल्स, १९८७

प्रभाशंकर ओ० सोमपुरा, भारतीय शिल्पसंहिता, बम्बई, १९७५

प्रमोदचन्द्र, ए गाइड टू दि एलिफेण्टा केव्स, बम्बई, १९५७

पाउल-मार्टिन दूबोस्त, गणेश दि इनचैन्टर ऑफ दि थ्री वर्ल्ड्स, बम्बई, १९९७

पी०आर० श्रीनिवासन, ब्रोन्जेज ऑफ साउथ इण्डिया, मद्रास, १९६३

पी०के० अग्रवाल, (१) गुप्त टेम्पुल आर्किटेक्चर, वाराणसी, १९६८; (२) रावण शिखरान्ता इन इण्डियन स्कल्प्चर, *पुरातन,* खण्ड आठ, १९९१, पृ० १३

बलदेव उपाध्याय, पुराण विमर्श, वाराणसी, १९७८

ब्रजेश कृष्णा, दि आर्ट अण्डर दि गुर्जर प्रतिहार, नई दिल्ली, १९८९

बंशीधर विस्वाल, कल्ट ऑफ शिव, कलकत्ता, १९८८

बी०एन० शर्मा, (१) रावण लिफ्टिंग माउण्ट कैलाश इन इण्डियन आर्ट, *ईस्ट ऐण्ड वेस्ट,* खण्ड २३, अंक तीन-चार, सितम्बर-दिसम्बर १९७३; (२) रावणानुग्रह मूर्ति, ए यूनिक ब्रोन्ज इन दि नेशनल म्यूजियम, *एम०एम० देशपाण्डे फेस्टेस्क्रिफ्ट,* एम०एस० नागराज रॉव (सम्पा०), दिल्ली, १९८१, पृ० २६७-२६८; (३) स्कल्प्चर्स फ्राम आबनेरी, *रूपलेखा,* खण्ड ४३, अंक एक-दो, पृ० ७-१७; (४) सम शैव स्कल्प्चर इन दि नेशनल म्यूजियम, नई दिल्ली, *नेशनल म्यूजियम बुलेटिन,* अंक चार-पाँच-छः, पृ० २८-३८

बी०के० रथ, स्कल्प्चर आर्ट ऑफ उड़ीसा, *ग्लिम्सेज ऑफ उड़ीसा आर्ट ऐण्ड कल्चर,* एच०के० मेहताब (सम्पा०), गोल्डेन जुबली वॉल्यूम ऑफ दि हिस्टोरिकल रिसर्च जर्नल, भुवनेश्वर, १९८४, पृ० २०१-१५

बी० देशमुख, आइकोनोग्राफी ऑफ दि हिन्दू टेम्पुल्स इन मराठवाड़ा, जयपुर, १९८७

बी०पी० सिन्हा, भारतीय कला को बिहार की देन, पटना, १९५०

बी० बन्दोपाध्याय, सर्वे ऑफ इण्डियन मेटल स्कल्पचर, दिल्ली, १९८७

बी० भट्टाचार्य, शैविज्म ऐण्ड दि फैलिक वर्ल्ड (खण्ड एक और दो), नई दिल्ली, १९७५

बी०बी० श्रीवास्तव, प्राचीन भारतीय प्रतिमा विज्ञान एवं मूर्तिकला, वाराणसी, १९९०

बेन्जामिन रोलैण्ड, दि आर्ट ऐण्ड आर्किटेक्चर ऑफ इण्डिया, लन्दन, १९६७, (पु०मु०)

भरत अय्यर, शिव दि बेनाइन, *दि टाइम्स ऑफ इण्डिया एनुअल,* श्यामलाल (सम्पा०), नई दिल्ली, १९७१, पृ० ७६-७७

म्यूरिल नेफ्, स्कल्प्चर एलिफेण्टा, *मार्ग,* खण्ड १३ (चार), सितम्बर, १९६०, पृ० ३१-६०

मंजुश्री राव, आइकोनोग्राफिकल नोट्स, शिव ऐण्ड पार्वती, *प्राच्य प्रतिभा,* ख़ण्ड चार, अंक दो, जनवरी १९७६, पृ० १३३-३६

मथुरा प्रसाद (अनु०), शिवपुराण भाषा टीका, नई दिल्ली, १९८९

महादेव चक्रवर्ती, दि कन्सेप्ट ऑफ रुद्र, शिव थ्रू दि एजेज, दिल्ली, १९८६

माइकल लॉकवुड, दि मामल्लपुरम् पेनान्स पैनल इट्स इन्टरप्रेटेशन, *आचार्य वन्दना : डी०आर० भण्डारकर बर्थ सेनेटरी वॉल्यूम,* एस० बन्दोपाध्याय (सम्पा०), कलकत्ता, १९८४, पृ० २७२-२७६

मानसिंह (अनु०), हिन्दू धर्म, सर मोनियर विलियम्स (लेखक), वाराणसी, १९८४

मिखाइल डब्लू० माइस्टर (सम्पा०), (१) डिस्कोर्सेज ऑन शिव, बम्बई, १९८४; (२) इनसाइक्लोपीडिया ऑफ इण्डियन टेम्पुल्स आर्किटेक्चर *(साउथ इण्डिया),* बम्बई, १९८३

मिखाइल लॉकहुड, मामल्लपुरम् ऐण्ड दि पल्लव, मद्रास, १९८२

मीना संड, शिव की संहार मूर्तियाँ, *अप्रकाशित शोधप्रबन्ध,* कला इतिहास विभाग, का०हि०वि०वि०, अक्टूबर, १९९३

मुल्कराज आनन्द, दि लीजेण्ड ऑफ अर्जुन पेनान्स, *मार्ग,* खण्ड २३ (तीन), जून, १९७०, पृ० १०-११

मोगरेट स्टूटले, दि इलस्ट्रेटेड डिक्शनरी ऑफ हिन्दू आइकोनोग्राफी, केगन पॉल पब्लिकेशन्स, १९८५

यू०पी० शाह, (१) ए रेयर रिलिफ स्कल्प्चर फ्रॉम नार्थ गुजरात, *ईस्ट ऐण्ड वेस्ट,* खण्ड २७, अंक एक-चार, दिसम्बर १९७७; (२) ए फ्यू अर्ली स्कल्पचर्स फ्रॉम गुजरात, *जर्नल ऑफ दि ओरियण्टल इन्स्टीट्यूट,* बड़ौदा, खण्ड एक, पृ० १६२-६३

रतन परिमू, (१) एलिफेण्टा इन दि कान्टेक्स्ट ऑफ इवोलूइन ऐण्ड सिग्निफिकेन्स ऑफ शैव स्कल्प्चर, *जर्नल ऑफ दि ओरियण्टल इन्स्टीट्यूट,* बड़ौदा, खण्ड २६, अंक तीन, १९७६-७७, पृ० २८२-३०५; (२) दि फार्मेशन ऑफ मेडिवल स्टाइल इन मालवा रीजन (ए प्रेजेन्टेशन ऑफ हिंगलाजगढ़ स्कल्प्चर्स), *ए वॉल्यूम ऑफ एसे इन*

फेलिसिटेशन ऑफ कपिला वात्स्यायन, बी०एन० सरस्वती एवं अन्य (सम्पा०), नई दिल्ली, १९९४, पृ० २११-४४

रतन परिमू एवं अन्य (सम्पा०), एलोरा केव्स-स्कल्प्चर्स ऐण्ड आर्टिटेक्चर, नई दिल्ली, १९८८

रमानाथ मिश्र, भारतीय मूर्तिकला, नई दिल्ली, १९७८

राजकुमार जैन, वृषभदेव तथा शिव सम्बन्धी प्राच्य मान्यताएँ, *मुनिश्री हजारीमल स्मृतिग्रन्थ,* शोभाचन्द्र भारिल्ल (सम्पा०), दिल्ली, १९६५, पृ० ६०९-२९

राजबली पाण्डेय, प्राचीन भारत, वाराणसी, १९७७

राजनारायण श्रीवास्तव, मेकल क्षेत्र की मूर्तिकला का अध्ययन (शहडोल जिले के विशेष सन्दर्भ में, ६०० ई०-१२०० ई०), अप्रकाशित *शोधप्रबन्ध,* रानी दुर्गावती विश्वविद्यालय, जबलपुर, १९९४, पृ० ७१-७६

राजाराम सिंह, शैव सम्प्रदाय की प्राचीनता, *पुरातन,* खण्ड छः, १९८९, पृ० १६१-६२

राजू कालिदास, (१) आइकोनोग्राफी ऑफ अर्ली मेडिवल साउथ इण्डिया *(शैव),* खण्ड दो, तंजौर, १९८६; (२) टेम्पुल्स कारवान्स ऑफ मेडिवल तमिलनाडु, मदुरै, १९८९

रामप्रताप त्रिपाठी (अनु०), (१) किरातार्जुनीय महाकाव्य (भारवि कृत), इलाहाबाद, १९५८; (२) *मत्स्यमहापुराण,* प्रयाग, संवत् २००३; (३) कालिदास ग्रन्थावली, प्रयाग

रामपति त्रिपाठी (अनु०), वायु महापुराण, प्रयाग, संवत् २००७

रेखा पाण्डेय, भुवनेश्वर की देव प्रतिमाएँ, दिल्ली, १९८७

रेवाप्रसाद द्विवेदी (सम्पा०), कालिदास ग्रन्थावली, वाराणसी, १९८६

लालमुनि दूबे, अपराजितपृच्छा : ए क्रिटिकल स्टडी (इनसाइक्लोपीडिया मैनुअल ऑन आर्ट ऐण्ड आर्किटेक्चर), नई दिल्ली, १९८७

विजय प्रकाश सिंह, काशी के मन्दिर (मूर्तिपरक अध्ययन), *अप्रकाशित शोधप्रबन्ध,* कला इतिहास विभाग, का०हि०वि०वि०, वाराणसी, फरवरी १९९०, पृ० ११३-१४

विजयेन्द्र कुमार माथुर, ऐतिहासिक ग्रन्थावली, नई दिल्ली, १९६९

विद्याप्रकाश, खजुराहो, बम्बई, १९८७

विमल बन्दोपाध्याय, सर्वे ऑफ इण्डियन मेटल स्कल्प्चर, दिल्ली, १९८७

वी०आर० मणि, सन्स ऑफ शिव : ए स्टडी इन दि रिलिजियस कल्ट-ऑफ गणेश ऐण्ड कार्त्तिकेय, दिल्ली, १९७०

वी०एन० देसाई एवं डी०मैसन, गॉड् गार्जियन्स ऐण्ड लवर्स (टेम्पुल स्कल्प्चर्स फ्रॉम नार्थ इण्डिया), ७००-१२०० ई०, न्यूयॉर्क, १९९३

वी०एस० अग्रवाल, (१) ब्राह्मैनिकल इमेज इन मथुरा, *जर्नल ऑफ दि इण्डियन सोसाइटी ऑफ ओरियण्टल आर्ट,* कलकत्ता, खण्ड पाँच, १९३७, पृ० १२७-२८; (२) दि कर्दमेश्वर टेम्पुल ऐट कन्दवा, बनारस, *जर्नल ऑफ यू०पी० प्रोविन्स हिस्टोरिकल सोसाइटी,* खण्ड २२, १९४९, पृ० २११-२१३; (३) ए कैटलॉग ऑफ दि इमेजेज ऑफ ब्रह्मा, विष्णु ऐण्ड शिव इन मथुरा आर्ट, *जर्नल ऑफ दि यू०पी० हिस्टोरिकल सोसाइटी,* खण्ड २३, १९५०, पृ० ३५-१४६; (४) दि शिव ताण्डव-स्तोत्र ऑफ रावण, *जर्नल ऑफ दि ओरियण्टल इन्स्टीट्यूट,* बड़ौदा, खण्ड १०, १९६०, पृ० १८-२१; (५) मथुरा कला, अहमदाबाद, १९६४; (६) भारतीय कला, वाराणसी, १९६६; (७) शिव-महादेव (दि ग्रेट गॉड), वाराणसी, १९६६

वी०एस०पाठक, (१) शैविज्म इन अर्ली मेडिवल इण्डिया ऐज नॉन फ्रॉम आर्कियोलॉजिकल सोर्सेज मेनली इन्सक्रिप्शन्स, *भारती,* खण्ड तीन, १९५९-६०, पृ० १-५७; (२) हिस्ट्री ऑफ शिव कल्ट इन नॉर्दर्न इण्डिया फ्रॉम इन्सक्रिप्शन्स *(७००-१२०० ई०),* वाराणसी, १९६०

वी० रेमण्ड, हिन्दू मेडिवल स्कल्प्चर, पेरिस, १९५०

वी० स्मिथ, अर्ली हिस्ट्री ऑफ इण्डिया, लन्दन, १९६२

शशिबाला श्रीवास्तव, (१) भुवनेश्वर मन्दिर में प्रदर्शित शिव के विविध रूप, *पुरातन,* खण्ड दो-तीन, १९८४, पृ० ५६-६२; (२) भारतीय मन्दिर एवं देव मूर्तियाँ, दिल्ली, १९८९; (३) शिव के रावणानुग्रह स्वरूप का कला में प्रदर्शन, *प्रो० के०डी० वाजपेयी स्मृति विशेषांक,* ए०एल० श्रीवास्तव (सम्पा०), पंचाल शोध संस्थान, कानपुर, खण्ड पाँच, १९९२, पृ० १०६-११०

शिव बहादुर सिंह, ब्राह्मैनिकल आइकन्स इन नॉर्दर्न इण्डिया, नई दिल्ली, १९७७

सच्चिदानन्द सहाय, ऐन इन्टरेस्टिंग इमेज ऑफ उमा-महेश्वर फ्रॉम चम्पारण, *जर्नल ऑफ दि बिहार रिसर्च सोसाइटी,* खं० ४३, १९५७, पृ० ६४-६५

सम्पूर्णानन्द, हिन्दू देव परिवार का विकास, इलाहाबाद, १९६४

सविता शर्मा एवं एम०एन०पी० तिवारी, शिव ऑन कुषाण क्वॉयन्स, *जर्नल ऑफ न्यूमिसमैटिक सोसाइटी ऑफ इण्डिया,* उपेन्द्र ठाकुर (सम्पा०), वाराणसी, खण्ड ६५, अंक एक-दो, १९८३, पृ० १३४-४९

सिद्धेश्वरी नारायण राय, पौराणिक धर्म एवं समाज, इलाहाबाद, १९८२

सी०कार, इण्डियन मेटल स्कल्प्चर, लन्दन, १९५२

सी० कृष्णा, डेपिक्शन ऑफ नन्दी इन इण्डियन आर्ट, *पुरातन,* खण्ड छः, १९८९, पृ० १०९-१०

सी०पी० सिन्हा, अर्ली स्कल्प्चर ऑफ बिहार, पटना, १९८०

सी० मार्गबन्धु एवं पी०के० त्रिवेदी, स्कल्प्चरल रिप्रेजेन्टेशन ऑफ शैव टीचर्स फ्रॉम सर्दन राजस्थान, *रूपाञ्जलि : इन मेमोरी ऑफ ओ०सी० गांगुली,* के०के० गांगुली एवं विश्वास (सम्पा०), कलकत्ता, १९८६, पृ० १०७-११३

सी० मीनाक्षी, वीणाधर इन पल्लव स्कल्प्चर, *जर्नल ऑफ दि इण्डियन सोसाइटी ऑफ ओरियण्टल आर्ट,* खण्ड छः, १९३७, पृ० ८४-८७

सी०वी०एन० अय्यर, ओरिजिन ऐण्ड अर्ली हिस्ट्री ऑफ शैविज्म इन साउथ इण्डिया, मद्रास, १९७६

सी० शिवराममूर्ति, (१) ज्योग्राफिकल ऐण्ड क्रोनोलॉजिकल फैक्टर्स इन इण्डियन आइकोनोग्राफी, *ऐंशियण्ट इण्डिया,* खण्ड छः, जनवरी, १९५०, पृ० २१-६३; (२) रावण इन दि कैलाश टेम्पुल ऐट एलोरा, *दि जर्नल ऑफ दि गंगानाथ झा रिसर्च इन्स्टीट्यूट,* इलाहाबाद, खण्ड आठ, १९५०-५१, पृ० १२९-३४; (३) पैरेलेल्स ऐण्ड अपोजिट्स इन इण्डियन आइकोनोग्राफी, *जर्नल ऑफ दि एशियाटिक सोसाइटी लेटर्स,* कलकत्ता, खण्ड २१ (दो) १९५५, पृ० ८७; (४) चोल टेम्पुल्स, नई दिल्ली, १९६०; (५) इण्डियन स्कल्प्चर, नई दिल्ली, १९६१; (६) इण्डियन ब्रोन्जेज, बम्बई, १९६२; (७) अर्ली ईस्टर्न चालुक्य स्कल्प्चर, *बुलेटिन ऑफ मद्रास गवर्नमेण्ट म्यूजियम,* खण्ड सात, अंक दो, १९६२; (८) नोलम्ब स्कल्प्चर, *बुलेटिन ऑफ मद्रास गवर्नमेण्ट म्यूजियम,* खण्ड नौ, अंक एक, १९६४; (९) मास्टरपीसेज़ स्कल्प्चर इन दि नेशनल म्यूजियम, नई दिल्ली, १९७१; (१०) दि आर्ट ऑफ इण्डिया, न्यूयार्क, १९७४; (११) नटराज इन आर्ट, थॉट ऐण्ड लिट्रेचर, दिल्ली, १९७४; (१२) बर्ड्स ऐण्ड एनिमल्स इन इण्डियन स्कल्प्चर, नई दिल्ली, १९७४; (१३) ऐन एलबम ऑफ इण्डियन स्कल्प्चर्स, दिल्ली, १९७५; (१४) शतरुद्रीय विभूति ऑफ शिव आइकोनोग्राफी, नई दिल्ली, १९७६; (१५) एप्रोच टू नेचर इन इण्डियन आर्ट ऐण्ड थॉट, नई दिल्ली, १९८०; (१६) साउथ इण्डियन ब्रोन्जेज, नई दिल्ली, १९८१

श्री भगवान सिंह, गुप्तकालीन हिन्दू देव-प्रतिमाएँ, द्वितीय भाग, दिल्ली, १९८३

स्टेला क्रैमरिश, (१) **इण्डियन स्कल्प्चर**, कलकत्ता, १९३३; (२) **दि प्रेजेन्स ऑफ शिव**, न्यू-जर्सी, १९८१; (३) **मैनिफेस्टेशन ऑफ शिव**, फिलाडेल्फिया, १९८१; (४) **शिव भोलानाथ**, *डाइमेन्सन्स ऑफ इण्डियन आर्ट; पुपुल जयकर सेवेन्टी*, लोकश चन्द्रा एवं जैन (सम्पा०), खण्ड एक, दिल्ली, १९८६, पृ० २४१-२४५

सुशील कुमार सुल्लेरे, **अजयगढ़ और कालञ्जर की देव प्रतिमाएँ**, दिल्ली, १९८७

हरिप्रसाद शास्त्री (अनु०), **दि रामायण ऑफ वाल्मीकि**, खण्ड तीन, लन्दन, १९५९

हरिदास मित्र, **सदाशिव वर्शिप इन अर्ली बंगाल**, *जर्नल ऐण्ड प्रोसीडिंग ऑफ दि एशियाटिक सोसाइटी ऑफ बंगाल*, खण्ड नौ, १९३४, पृ० १७१-२५४

हीरानन्द शास्त्री, **ए गाइड टू एलिफेण्टा**, दिल्ली, १९७६

✣

तालिका

(क) शिव की अनुग्रह मूर्तियाँ—(पुरास्थल)

राजवंश	पुरास्थल	शिव की अनुग्रह मूर्तियाँ			
		रावणानुग्रह	अर्जुनानुग्रह	चण्डेशानुग्रह	विष्णवनुग्रह
पल्लव (ल० सातवीं से आठवीं शती ई.)	महाबलीपुरम्, ल० सातवीं–आठवीं शती ई.	१	२	१	×
	कांचीपुरम्, ल० आठवीं शती ई.	३	१	३	१
चोल (ल० नवीं से १३वीं शती ई.)	तंजौर, ल० १००० ई.	१	४	३	×
	गंगैकोण्डचोलपुरम्, ल० १०२५ शती ई.	१	१	१	१
	कुम्भकोणम्, ल० १२वीं शती ई.	×	१	२	×
	दारासुरम्, ल० १२वीं शती ई.	१	२	×	×
	चिदम्बरम्, ल० १२वीं–१३वीं शती ई.	×	×	१	×
सोम एवं गंग (ल० सातवीं से आठवीं शती ई.)	भुवनेश्वर, ल० सातवीं–१३वीं शती ई.	१	२	×	×
प. चालुक्य (ल० छठी से आठवीं शती ई.)	पट्टडकल, ल० सातवीं–आठवीं शती ई.	२	४	×	×
	अयहोल, ल० छठी–आठवीं शती ई.	×	×	×	×

राजवंश	पुरास्थल	शिव की अनुग्रह मूर्तियाँ			
		रावणानुग्रह	अर्जुनानुग्रह	चण्डेशानुग्रह	विष्णवनुग्रह
राष्ट्रकूट (ल० आठवीं से नवीं शती ई.)	एलिफेण्टा, ल० आठवीं शती ई.	१	×	×	×
	एलोरा, ल० आठवीं–नवीं शती ई.	९	२	२	×
प्रतिहार, चन्देल, परमार एवं गहड़वाल (ल० नवीं से १३वीं शती ई.)	वाराणसी, ल० १२वीं शती ई.	२	×	×	×
	ओसियाँ, ल० नवीं–१०वीं शती ई.	१	×	×	×
	आबनेरी, ल० आठवीं–नवीं शती ई.	१	×	×	×
	हरदोई, ल० ११वीं शती ई.	१	×	×	×
	कुमायुँ, ल० १०वीं–११वीं शती ई.	१	×	×	×
	खाण्डवा (निमाड़), ल० १०वीं शती ई.	१	×	×	×
	फतेहगढ़, ल० नवीं शती ई.	१	×	×	×
होयसल (ल० १०वीं से १३वीं शती ई०, कर्नाटक एवं आन्ध्र प्रदेश के क्षेत्र सहित)	बेलूर, ल० १२वीं शती ई.	२	२	×	×
	हलेबीड, ल० १२वीं–१३वीं शती ई.	२	३	×	×
	हेमावती, ल० १२वीं शती ई.	१	×	×	×
	सोमनाथपुर, ल० १३वीं शती ई.	×	१	×	×

राजवंश	पुरास्थल	शिव की अनुग्रह मूर्तियाँ			
		रावणानुग्रह	अर्जुनानुग्रह	चण्डेशानुग्रह	विष्ण्वनुग्रह
होयसल	अमृतापुर, ल० १३वीं शती ई.	×	१	×	×
	आलमपुर, ल० १०वीं शती ई.	×	१	×	×
	सिरवाल, ल० १०वीं शती ई.	×	२	×	×
	कडूर, ल० १०वीं शती ई.	×	१	×	×
	डोण्डालूर, ल० ११वीं शती ई.	×	१	×	×
	मार्ले, ल० १२वीं शती ई.	×	१	×	×
	बासरलू, ल० १३वीं शती ई.	×	१	×	×
	कृष्णराज नगर, ल० १३वीं शती ई.	×	१	×	×
	जगावल, ल० १३वीं शती ई.	×	१	×	×
अन्य	हसन, ल० १३वीं शती ई.	×	१	×	×
	नागरी (राजस्थान), ल० आठवीं शती ई.	×	१	×	×
	श्रीशैलम (पाटलगंगा) आन्ध्र प्रदेश, ल० १२वीं शती ई.	×	×	१	१

नोट : विभिन्न पुरास्थलों से केवल रावणानुग्रह, अर्जुनानुग्रह, चण्डेशानुग्रह एवं विष्ण्वनुग्रह स्वरूपों की ही मूर्तियाँ मिली हैं। चण्डेशानुग्रह स्वरूप की दो मूर्तियाँ सोमेश्वर एवं शिव मन्दिर (जायती) से भी प्राप्त हैं।

मूर्तियाँ : रावणानुग्रह-३४, अर्जुनानुग्रह-३७, चण्डेशानुग्रह-१४, विष्ण्वनुग्रह-३

तालिका

(ख) शिव की अनुग्रह मूर्तियाँ—(संग्रहालय)

प्रदेश	संग्रहालय	शिव की अनुग्रह मूर्तियाँ	
		रावणानुग्रह	अर्जुनानुग्रह
उत्तर प्रदेश	पुरातत्त्व संग्रहालय, मथुरा	१	×
	म्यूनिसिपल संग्रहालय, इलाहाबाद	२	×
	कन्नौज पुरातत्त्व संग्रहालय, कन्नौज	२	×
	शासकीय संग्रहालय, झाँसी	४	×
	भारत कला भवन, वाराणसी	५	×
	राजकीय संग्रहालय, लखनऊ	६	×
	हजारीमल बाठिया व्यक्तिगत संग्रह, कायमगंज	१	×
मध्य प्रदेश	रानी दुर्गावती पुरातत्त्व संग्रहालय, जबलपुर	५	×
	केन्द्रीय संग्रहालय, इन्दौर	२	×
	राज्य संग्रहालय, आशापुरी	१	×
	महात्मा गांधी स्मृति संग्रहालय, रायपुर	१	×
	जिला पुरातत्त्व संग्रहालय, शहडोल	१	×

प्रदेश	संग्रहालय	शिव की अनुग्रह मूर्तियाँ	
		रावणानुग्रह	अर्जुनानुग्रह
मध्य प्रदेश	छत्रसाल संग्रहालय, धुबेला	१	×
	बघेला संग्रहालय, रीवा	१	×
	राजकीय संग्रहालय, भोपाल	१	×
	बिड़ला संग्रहालय, भोपाल	२	×
	पुरातत्त्व संग्रहालय, खजुराहो	१	×
	जिला संग्रहालय, रायगढ़	१	×
	सागर विश्वविद्यालय संग्रहालय, सागर	१	×
पश्चिम बंगाल	भारतीय संग्रहालय, कलकत्ता	१	१
दिल्ली	राष्ट्रीय संग्रहालय	२	×
आन्ध्र प्रदेश	राजकीय संग्रहालय, हैदराबाद	१	×
	आलमपुर संग्रहालय, महबूब नगर	×	१
कर्नाटक	शासकीय संग्रहालय, मैसूर	१	×

नोट : संग्रहालयों से केवल रावणानुग्रह एवं अर्जुनानुग्रह स्वरूपों की ही मूर्तियाँ मिली हैं।

मूर्तियाँ : रावणानुग्रह-३४ + ४४ = ७८, अर्जुनानुग्रह-३७ + ०२ = ३९, चण्डेशानुग्रह-१४, विष्णवनुग्रह-३

रेखा चित्र-सूची

१. अर्जुनानुग्रह मूर्ति, कैलाशनाथ मन्दिर, कांचीपुरम् (चिंगेलपुट, तमिलनाडु), ल० आठवीं शती ई०
२. चण्डेशानुग्रह मूर्ति, मुक्तेश्वर मन्दिर, कांचीपुरम् (तमिलनाडु), ल० नवीं शती ई०
३. चण्डेशानुग्रह मूर्ति, बृहदीश्वर मन्दिर, तंजौर (तमिलनाडु), १००० ई०
४. विष्ण्वनुग्रह मूर्ति, कैलाशनाथ मन्दिर, कांचीपुरम्, ल० आठवीं शती ई०

चित्र-सूची

१. रावणानुग्रह मूर्ति, शत्रुघ्नेश्वर मन्दिर, भुवनेश्वर (उड़ीसा), ल० सातवीं शती ई०
२. रावणानुग्रह मूर्ति (शिव परिवार सहित), परशुरामेश्वर मन्दिर, भुवनेश्वर, ल० सातवीं शती ई०
३. रावणानुग्रह मूर्ति, विरूपाक्ष मन्दिर, पट्टडकल (बीजापुर, कर्नाटक), ७४५ ई०
४. रावणानुग्रह मूर्ति, एलिफेण्टा (मुम्बई, महाराष्ट्र), ल० सातवीं-आठवीं शती ई०
५. रावणानुग्रह मूर्ति, रावण की खाई (गुफा सं० १४), एलोरा (औरंगाबाद, महाराष्ट्र), ल० सातवीं शती ई०
६. रावणानुग्रह मूर्ति, दशावतार गुफा (गुफा सं० १५), एलोरा, ७५० ई०
७. रावणानुग्रह मूर्ति, लंकेश्वर गुफा, एलोरा, ल० नवीं शती ई० का पूर्वार्द्ध
८. रावणानुग्रह मूर्ति, कैलाश मन्दिर (गुफा सं० १६), एलोरा, ल० आठवीं शती ई०
९. रावणानुग्रह मूर्ति, (श्रेष्ठतम् उदाहरण), कैलाश मन्दिर (गुफा सं० १६), एलोरा, ल० आठवीं शती ई०
१०. रावणानुग्रह मूर्ति, हरिहर मन्दिर २, ओसियाँ (जोधपुर, राजस्थान), ल० आठवीं शती ई०
११. रावणानुग्रह मूर्ति, आबनेरी (जयपुर, राजस्थान), ल० आठवीं-नवीं शती ई०, केन्द्रीय संग्रहालय, जयपुर (क्रमांक-५९/६४)
१२. रावणानुग्रह मूर्ति, कडूर (चिकमंगलूर, कर्नाटक), ल० नवीं शती ई०, शासकीय संग्रह, पुरातत्त्व विभाग, मैसूर
१३. रावणानुग्रह मूर्ति, सिद्धेश्वर मन्दिर, हेमावती (अनन्तपुर, आन्ध्र प्रदेश), ल० १०वीं शती ई०
१४. रावणानुग्रह मूर्ति, कन्नौज (फर्रूखाबाद, उत्तर प्रदेश), ल० १०वीं शती ई०, पुरातत्त्व संग्रहालय, कन्नौज

१५. रावणानुग्रह मूर्ति की खण्डित पीठिका, कन्नौज, ल० १०वीं शती ई०, पुरातत्त्व संग्रहालय, कन्नौज (क्रमांक-७९/२७०)
१६. रावणानुग्रह मूर्ति, मध्य प्रदेश, ल० नवीं-१०वीं शती ई०, रानी दुर्गावती पुरातत्त्व संग्रहालय, जबलपुर
१७. रावणानुग्रह मूर्ति, हिंगलाजगढ़ (मन्दसौर, मध्य प्रदेश), ल० १०वीं शती ई०, रानी दुर्गावती पुरातत्त्व संग्रहालय, जबलपुर
१८. रावणानुग्रह मूर्ति, जबलपुर (मध्य प्रदेश), ल० १०वीं शती ई०, रानी दुर्गावती पुरातत्त्व संग्रहालय, जबलपुर
१९. रावणानुग्रह मूर्ति, मध्य प्रदेश, ल० १३वीं शती ई०, रानी दुर्गावती पुरातत्त्व संग्रहालय, जबलपुर
२०. रावणानुग्रह मूर्ति, खजुराहो (छतरपुर, मध्य प्रदेश), ल० १०वीं शती ई०, भारतीय संग्रहालय, कलकत्ता (क्रमांक-४९०)
२१. रावणानुग्रह मूर्ति, हिंगलाजगढ़, ल० १०वीं शती ई०, केन्द्रीय संग्रहालय, इन्दौर
२२. रावणानुग्रह मूर्ति, हिंगलाजगढ़, ल० १०वीं शती ई०, केन्द्रीय संग्रहालय, इन्दौर
२३. रावणानुग्रह मूर्ति, आशापुरी (रायसेन, मध्य प्रदेश), ल० १०वीं शती ई०, राज्य संग्रहालय, आशापुरी
२४. रावणानुंग्रह मूर्ति, करितलाई (जबलपुर, मध्य प्रदेश), ल० १०वीं शती ई०, महात्मा गांधी स्मृति संग्रहालय, रायपुर (क्रमांक-२५२४)
२५. रावणानुग्रह मूर्ति, मध्य प्रदेश, ल० ११वीं शती ई०, भोपाल संग्रहालय, भोपाल (क्रमांक-७९०)
२६. रावणानुग्रह मूर्ति, त्रिपुरी (मध्य प्रदेश), ल० १२वीं शती ई०, सागर विश्वविद्यालय संग्रहालय, सागर (क्रमांक-४१२)
२७. रावणानुग्रह मूर्ति, मध्य प्रदेश, ल० १०वीं-११वीं शती ई०, भारत कला भवन, वाराणसी (क्रमांक- २३९८३)
२८. अर्जुनानुग्रह कथा, नरथर, स्वर्णजालेश्वर मन्दिर, भुवनेश्वर, ल० सातवीं शती ई० का उत्तरार्द्ध
२९. अर्जुनानुग्रह कथा फलक (महाभारत के दृश्यांकन में), कैलाश मन्दिर (गुफा सं० १६), एलोरा, ल० आठवीं शती ई०
३०. अर्जुनानुग्रह कथा फलक, वापी १, नन्दप्पा समूह, सिरवाल (गुलबर्गा, कर्नाटक), ल० १०वीं शती ई०
३१. अर्जुनानुग्रह कथा, नरथर (भाग-१, अर्जुन-किरात युद्ध), वापी २, सिरवाल, ल० १०वीं शती ई०
३२. अर्जुनानुग्रह कथा, नरथर (भाग-२, शिव का अनुग्रह), वापी २, सिरवाल, ल० १०वीं शती ई०

३३. अर्जुनानुग्रह कथा, कडूर, ल० १०वीं शती ई०, शासकीय संग्रह, पुरातत्त्व विभाग, मैसूर

३४. अर्जुनानुग्रह कथा, कडूर, ल० १०वीं शती ई०, शासकीय संग्रह, पुरातत्त्व विभाग, मैसूर

३५. अर्जुनानुग्रह कथा, नरथर, आलमपुर (महबूबनगर, आन्ध्र प्रदेश), ल० १०वीं शती ई०, आलमपुर संग्रहालय, आलमपुर

३६. अर्जुनानुग्रह कथा (स्तम्भ), विजयवाडा (कृष्णा, आन्ध्र प्रदेश), ल० नवीं शती ई०

३७. अर्जुनानुग्रह मूर्ति, साक्षीश्वर मन्दिर, तिरूप्पुरम्बियम (तंजौर, तमिलनाडु), ल० १०वीं शती ई० का उत्तरार्द्ध

३८. अर्जुनानुग्रह कथा फलक, अमृतेश्वर मन्दिर, अमृतापुर (चिकमंगलूर, कर्नाटक), ११९६ ई०

३९. चण्डेशानुग्रह मूर्ति, धर्मराज रथ, महाबलीपुरम् (चिंगेलपुट, तमिलनाडु), ल० सातवीं शती ई०

४०. चण्डेशानुग्रह मूर्ति, कैलाशनाथ मन्दिर, कांचीपुरम् (चिंगेलपुट, तमिलनाडु), ल० आठवीं शती ई०

४१. चण्डेशानुग्रह मूर्ति (कथात्मक अंकन सहित, श्रेष्ठतम् उदाहरण), बृहदीश्वर मन्दिर, गंगैकोण्डचोलपुरम् (तमिलनाडु), ल० ११वीं शती ई० का पूर्वार्द्ध

४२. चण्डेशानुग्रह मूर्ति (चित्र ४१ का विस्तार), बृहदीश्वर मन्दिर, गंगैकोण्ड-चोलपुरम्, ल० ११वीं शती ई० का पूर्वार्द्ध

४३. विष्णवनुग्रह मूर्ति (दाहिनी रथिका), कैलाशनाथ मन्दिर, कांचीपुरम् (चिंगेलपुट, तमिलनाडु), ल० आठवीं शती ई०

४४. गंगावतरण प्रस्तर फलक, चट्टानी शिल्प, महाबलीपुरम् (चिंगेलपुट, तमिलनाडु), ल० सातवीं शती ई०

४५. मार्कण्डेयानुग्रह मूर्ति, कैलाश मन्दिर, एलोरा (औरंगाबाद, महाराष्ट्र), ल० आठवीं शती ई०

आभार-प्रदर्शन

१. चित्र १-२६, २८-४२ एवं ४४ से ४५, अमेरिकन इन्स्टीट्यूट ऑफ इण्डियन स्टडीज़, गुड़गाँव के सौजन्य से

२. चित्र २७, भारत कला भवन, वाराणसी के सौजन्य से

३. चित्र ४३ प्रो० मारुति नन्दन प्रसाद तिवारी जी के सौजन्य से

शब्दानुक्रमणिका

अग्नि—८

अजएकपाद—१४

अजितागम्—१३९

अर्जुन-तपस्या—६५-६६, ७९, ८३

अर्जुनानुग्रह—११, १२, १४, १५, ६५-९९, १४१, १४२, १४५

अथर्ववेद—८

अनुग्रह मूर्ति—२, ८-१५

अन्धकारि—१३३

अमृतापुर—७५, ९०

अमृतेश्वर मन्दिर—९०, ९३-९४

अयहोल—७५, १४०

अयोनिज-पुत्र—१२५

अर्द्धनारीश्वर—१, २

अष्टाध्यायी—९

अष्टमूर्ति शिव—१४

आदिशक्ति—१३५

आबनेरी—२२, ३१, ३२

आलमपुर संग्रहालय, आलमपुर—८६

आशापुरी राज्य संग्रहालय, रायसेन—४९, ५३

आशुतोष—८२

इन्द्र—६५, ६८, ६९, ७२, १२५, १२८

इन्द्रकील पर्वत—६६, ६९, ७०, ७३, ७९, ८१, ८६, ९६

उत्तरकामिकागम्—१०१, १०३-१०४, १०९, ११५, ११७, १२०, १२१, १२४, १२९, १३९, १४०, १४६

उत्तरकारणागम्—११७ १२१, १२२, १३८, १४०

उदयगिरि शिलालेख—१३

उपमन्यु—११९

उपहास-दृश्य—२२, २४, २५, २८, २९, ३४, ४०, ४२, ४४, ४५, ४८, ५२, ५३, ५५, ५६, ५९, १४३

उमा-महेश्वर—१४, ३९, ४१, ४२, ४५, ४९, ५०, ५७, ५८, ६०, १४२, १४३

उष्णीष—१०३, १०५, १०९, ११२, ११४, ११५, १४२, १४६

ऊर्ध्वलिङ्ग—१०, २३, ११३

एकदन्त गज—१३६

एकल-शिव—१०८, ११४, ११५, १४६

एकादशमुखीरूद्र—१४

एलिफेण्टा—२२, २५-२६, १४०

एलोरा—१२, १४, २०-२२, २६-३१, ५८, ५९, ७५, ८२, ८३, ९७, १०५, १३९, १४२, १४४

कैलाश मन्दिर—११, २०, २१, २९-३१, ५८, ७५, ८३, ९७, १३९

डूमरलेण गुफा—२६, २८

दशावतार गुफा—२६, २७, १३९, १४३

रामेश्वर गुफा—२६, २७-२८

रावण की खाई—२६-२७

लंकेश्वर गुफा—१०५

ओसियाँ—२, २२, ३१

हरिहर मन्दिर संख्या-२—३१-३२

अंशुमद्‌भेदागम्—१०१, १०३, १३९

ऋग्वेद—१, ६०, १४४

कडूर, कर्नाटक—३४-३५, ७५, ८५-८६, १४२

कन्नौज—४१-४२
कपिध्वज—७०, ९३, ९६
कपिल मुनि—१३९
कमललोचन या राजीवलोचन—११७, ११८, १२०
कंरितलाई, जबलपुर—५४
कलचुरि अभिलेख—१३, २०, ५७
कलचुरि पुरास्थल—३८, ४४, ५४, ५८
कंपिल (कायमगंज)—३९, ४८
विमलनाथ मन्दिर—३९, ४८
कार्त्तिकेय—२४, ३१, ४१, ४५, ५२-५५, ५९, १४३
कामान्तक—३६
काश्यपशिल्प—१०४
कसियाँ अभिलेख—४४
कांचीपुरम्—११, १२, १५, २२, ५९, ७५, ७८, ८२, ९७, १०५, १०६, ११७, १२३, १३९, १४०, १४२, १४४, १४६, १४७
कैलाशनाथ मन्दिर—११, १२, ३२, ३३, ७८, ८२, ९७, १०६-१०७, ११४, ११७, १२२, १२३, १३९, १४४, १४५, १४७
मांतगेश्वर मन्दिर—१०५, १०७, ११२, ११३-११४, १४६
मुक्तेश्वर मन्दिर—३२, ३४, १०५, १०७-१०८, ११२, ११४, १४६
किरात-शिव—६७, ७०, ७१, ७३, ७६, ७७, ८१, ८८, ८९, ९२, ९६, १४४, १४५
किराती-पार्वती—७५-७७, ८०, ८२; ८९, ९६
किरातार्जुनीयम्—६५, ६९-७२, ७३, ७९, ९७, १४५
कुबेर—१७
कुमायूँ—३९, ४१
शिव मन्दिर—३९, ४१
कुमारसम्भव—११, १७, १९, ६५, १४१
कुम्भकोणम्—१२, ७५, ७८, ९०, ९७, १०५, ११०, १११, १४४
नागेश्वर मन्दिर—१२, ७८, ९०, १११-११२
पुण्डरीकपुरम् मन्दिर—१०५, ११०-१११
कुषाण शासक एवं मुद्रायें—१०
केन्द्रीय संग्रहालय, इन्दौर—४९, ५२-५३
खजुराहो—२, १२, १४, ५१, ५६, १४०
कन्दरिया महादेव मन्दिर—१२
पुरातत्व संग्रहालय—५६
विश्वनाथ मन्दिर—१२
खण्डवा, निमाड़—५७-५८
गंगैकोण्डचोलपुरम्—१२, १५, ३५, ५९, १०३-१०५, १०८, १०९, ११२, ११७, १२२, १३९, १४०, १४२, १४६, १४७
बृहदीश्वर मन्दिर—१२, ३५-३६, १०३-१०५ १०९-११०, ११२, ११७, १२२-१२३, १३९, १४६, १४७
गजमुख—१३४
गजानन—१३४, १३७
गजान्तक या गजासुर संहार—१३३, १३७
गणाध्यक्ष—१०३, ११२
गणेश—२४, ३१, ४१, ४५, ५२-५५, ५९, ८०, १३३, १३५, १३६, १४३
गणेश्वरी-पद—१२७
गन्धर्व युगल—५२, ५६
गर्दभ मुख—२२, ४०, ४४, ४८, ५०, ५१, ५३, ५५, ६८, १४४

गहड़वाल—३८
गंगा—१५, ७५, ७८, ९८, १३३, १३४, १३९, १४०, १४५
गंगाधर—५, ११, १४, १५, १३३, १३९-१४०, १४१
ग्यारसपुर—१४
गाण्डीव-धनुष—६६, ९२
गांगेय—१३४
गुर्गी, रीवा—५५
गुर्जर-प्रतिहार—३१, ३८, ४०
गुप्त-काल—११, ७५, १४४
चक्र—१५
चक्रदान-मूर्ति—१४, ११७, १२१, १३१
चण्डिकेश्वर-शिव—१०५, ११३-११४
चण्डेश—१५, १०३-१०५, १०७-१११, ११५, १४६
चण्डेशानुग्रह—१४, १५, ३५, १०५-११५, १४१, १४२, १४६
चण्डेश्वर—१०१, १०३, १०५, १११, ११३
चन्द्रहास खड्ग—१८
चन्देल-पुरास्थल—३८, ४०, ५१, ५४, ५६
चन्द्रेहे लेख—१३
चक्षुदान—१२०
चामुण्डा—२४, ४५
चालुक्य-पुरास्थल—२५, ७९-८२
चिदम्बरम्—१२, १५, १०५, ११२, १४६
नटराज मन्दिर—१२, १०५, ११२
चोल-पुरास्थल—१२, ३५, ८७-९०, १०५, १०८-११२
छत्रसाल संग्रहालय, धुबेला—४९, ५४-५५
छन्नवीर-वेश—७५, ७७, ८९, ९८, १४५
जगावल—९०
लक्ष्मीनरसिंह मन्दिर—९०, ९५-९६
जनजातीय-तत्त्व—१३
जलोद्भव दैत्य—११९
जायती शिव मन्दिर—११३
जिला पुरातत्व संग्रहालय, शहडोल—४९, ५४
डोण्डालूर—९०, १४२
हुलेश्वर मन्दिर—९०, ९१
तमिल प्रियपुराण—१०१
तालागाँव—१३-१४
त्रिपुरान्तक—१३३
त्रिपुरी—५७, ५९, १४३
तैत्तिरीय संहिता—८
तंजौर—१२, १५, ३७, ७५, १०५, १०८, १०९, १३९, १४०, १४२, १४४, १४६
पुलमंगलई मन्दिर—८७, ९७, १०५, १०८, ११२, १४४
बृहदीश्वर मन्दिर—१२, ८७, ८८-८९, ९७, १०५, १०८-१०९, १३९, १४४
साक्षीश्वर मन्दिर—८७-८८
सोमनाथपुर मन्दिर—१२, १५, ३७
दशानन—१७, १८, ६०, १४४
दारासुरम्—१२, १५, ३६, ७५, ८७, ८९, ९७, १४२, १४४
ऐरावतेश्वर मन्दिर—१२, ३६, ८७, ८९-९०
दुर्गा—२४
दूग्धाभिषेक—१०२
देवत्रयी—१, ३८
द्रौपदी—८१, ९१
नटेश या नटराज—८, ११, १३, १४, १२४
नन्दी (बालक)—१५, १२४-१२९

नन्दी (वाहन)—४५, १२४, १४३, १४५
नन्दीकेश्वर—१७, १८, १२४, १२५, १२७-१२९
नन्दीशानुग्रह—१२, १४, १५, १२४-१२९, १३३, १४१, १४६, १४७
नागरी, राजस्थान—७५, ७६, ९७, १४४
नागवंशी शासक—१०
पट्टडकल—१५, २२, २५, ५८, ७५, ७९, ८२, ९७, १३९, १४०, १४२, १४४
पापनाथ मन्दिर—७९, ८०
मल्लिकार्जुन मन्दिर—७९, ८०-८१
विरूपाक्ष मन्दिर—२५, ८१-८२, १३९
पथावली—१४
परमथगण—६६, ७०
परमार—३८, ५२, ५३, ५७
परेल, बम्बई—१४
पल्लव अभिलेख—१३, २०
पल्लव-पुरास्थल—७८-७९, १०५
पंचपाण्डव—८१
पंचपिण्डनाथ—४५
पंचशिवलिङ्ग—४२, ४८, ५२, ५४, ५६
पंचाग्नि-साधना—७५, ९७, १४५
पंचानन या पंचमुख—४५, ४८
पंचायतन मन्दिर—२
पंचाक्षर-मन्त्र—४२, ५२
पंचोपासना—२
प्रतिहार—३९, ४२, ४६, ४९
पाशुपत-अस्त्र—६५, ६८, ७२-७५, ७७, ८०, ८२, ८४, ८६, ८८, ९०, ९१, ९६-९८, १४२, १४५
पाशुपत-धर्म—१०
पीताम्बर—१२०, १२१
पुत्तलक—१३४
पुराण-तिथियाँ—४
पुरास्थल-तिथियाँ—४
पुलस्त्य-पुत्र—१८
पूर्वकारणागम्—१०१, १०४
पेंड्डुवेंगी—१४
फतेहगढ़—३९, ४९
चित्रगुप्त मन्दिर—३९, ४९
बघेला संग्रहालय, रीवा—४९
बसँवा (एटा)—४६
बादामी—११३
बासरलू—९०
मल्लिकार्जुन मन्दिर—९०, ९४-९५
बेलूर—१५, २२, ३७, ९७, १४४
चन्नकेशव मन्दिर—३७-३८
बौधायनगृह्यसूत्र—९
ब्रह्मा—३८, ४१, ५०, ६०, १३०, १३४, १३५, १३९, १४३
बृषभारूढ़-शिव—१११
भगीरथ—१५, १३३, १३९, १४०
भारत कला भवन, वाराणसी—२१, ४४-४६
भारत चम्पू—६५
भारतीय संग्रहालय, कलकत्ता—४९, ५१-५२, ७५-७६
भारशिव—१०
भुवनेश्वर—२, ५, १२, १४, २२, २३-२५, ३८, ४५, ५३, ५८, ५९, ७५, ७६-७८, ९७, १४२-१४४
परशुरामेश्वर मन्दिर—१२, २३, २४, ५३, ५९, १४३
लिङ्गराज मन्दिर—१२
शत्रुघ्नेश्वर मन्दिर—१२, २३-२४, ५९, १४३
शिशिरेश्वर मन्दिर—१२, ७५, ७७-७८, ९७, १४४
स्वर्णजालेश्वर मन्दिर—१२, ७५, ७६, ७७, ९७, १४४

भैरव—५७
भोपाल—५५-५६
 नियोरी मन्दिर—५५-५६
 बिड़ला संग्रहालय—५५-५६
 राजकीय संग्रहालय—५५
मत्स्यपुराण—१२, १३४, १३८
मथुरा—२२, २३, ५९, १४२
 डींग दरवाजा— २३, ५९, १४२
मध्यकाल—१, १३, ३९
मन्दसौर अभिलेख—१२
मन्दिर-तिथियाँ—१२
मयमत—१२, १०१, १०४
मल्लराजपट्टन—९०
 लक्ष्मणेश्वर मन्दिर—९०, १६
महाकाल—५७, १२७
महात्मा गाँधी स्मृति संग्रहालय, जबलपुर—४९, ५४
महादेव—११, १२, ५९, १२५, १२७
महाबलीपुरम्—११, १५, ३२, ७५, ७८, ९७, १०५, १३९, १४०, १४४
 ओलंकनेश्वर मन्दिर—३२, ३३-३४
 गणेश रथ—११३
 चट्टानी शिल्प—७८-७९, १४०
 धर्मराज रथ—१०५, १०६, १३९
महाभारत—४, ९, ११, १५, ६५-६९, ७३, ७५, ७६, ७८, ८१-८५, ९३, ११७, ११९, १२०, १३०, १३३, १३८, १४१, १४२, १४४
महाभाष्य—९
महेश मूर्ति—१४
मार्कण्डेय—१५, १३३, १३८, १३९, १४१
मार्कण्डेयानुग्रह—१३३, १३८-१३९
मार्तण्ड-भैरव—२
मालाधारी विद्याधर—४०, ४१, ५०, ५२, ५३
मावल्लिवरम् अभिलेख—३४
मांगलिक-चिह्न—७३, ८२, ८५, ९२, ९८, ९९, १४५
मित्र एवं वरुण—१२५, १२८
मूक-दानव—६६, ६९, ७०, ७२, ७३, ७७, ८०, ८३, ८५, ८९, ९०, ९२, ९३, ९५
मेघदूत—१७, १९, २३
मेट्रोपोलिटन संग्रहाल, न्यूयॉर्क—७९-८०
यजुर्वेद—७२
यम—१३९, १४१
यमान्तक—५, १४, १५, ३५, १३३, १४१
यज्ञदत्त—१०१, १०२, १०७, ११०
रघुवंश—१७, १९, २३, १४१
राज्य संग्रहालय, लखनऊ—४६-४८
राजसिंह शैली—१२२
राजा सगर—१३९
राजेन्द्र चोल—१०९, ११०, ११५, १४६
राजौना, बिहार—७५-७६, १४४
रानी दुर्गावती पुरातत्त्व संग्रहालय—४९-५१
रामायण—४, ९, ११, १५, १७-१९, २४, ३४, ५८, ६०, ८१, १२४, १२८-१२९, १३०, १४१, १४२, १४४
रायगढ़ संग्रहालय, रायगढ़—४९, ५६-५७
रायसेन—५३
 भूतनाथ मन्दिर—५३
रावण—१८, १९, २१, ३१, १३०, १४२, १४४
रावण का मस्तक-दान—५८
रावण-वीणा—२३

रावणानुग्रह—५, ११, १३-१५, १७-६०, १४१, १४२
राष्ट्रकूट-पुरास्थल—८२-८३
राष्ट्रीय संग्रहालय, नई दिल्ली—४०-४१
रुद्र—८, ९, ११, १२, १४
रुद्र-मन्त्र—१२५, १३६
रुद्राभिषेक—५८
लकुलीश—५६
लच्छगीर, इलाहाबाद—३९-४०
लिङ्गपुराण—१२, १२४, १२८, १३४, १३७
लोक-कथा—७३, ८०, ८२, ८५, ९०, ९४, ९६-९९, १४५
वराहपुराण—१२, १२४, १२६-१२८, १३४-१३५
व्यास—६५, ७२
वाजसनेय संहिता—८
वामनपुराण—११७, ११९-१२०
वायुपुराण—१२
विकमार्जुनविजय—६५
विघ्नेश्वर—१३४, १३५
विघ्नेश्वरानुग्रह—१२, १४, १३३, १३४-१३८, १४१, १४७
विघ्नहर्त्ता—१३४
विचारशर्मन्—१०१, १०२, १०७, ११०, ११२, ११४, ११५, १४६
विजयवाड़ा, आन्ध्र प्रदेश—८६
विदेशी शासक—१०
विश्वकर्मा वास्तुशास्त्र—६५
विष्णु—३८, ४१, ५०, ६०, ११७-१२१, १३०, १४३
विष्णुधर्मोत्तरपुराण—१२४, १२९
विष्णवनुग्रह—११, १२, १४, १५, ११७-१२४, १४१, १४२, १४६
वीणा-वादन (रावण)—२२, ४५-४७, ५१, ६०
वीरभद्र—४४, ४५
वेदज्ञ (रावण)—४०,४८, ६०, १४४
शक्र विद्या—६५, ७२
शतपथ ब्राह्मण—९
शतरुद्रीय संहिता—८
श्मश्रु—८९
शिलाद मुनि—१२५, १२८
शिल्परत्न—१०१, १०४, १३९
शिल्पशास्त्रीय ग्रन्थ-तिथियाँ—५
शिव-तत्त्व—२, ९, १५, १०९, १४१
शिव नाम—११
शिवपुराण—२, १२, १७, १९, ५९, ६५ ७२-७३, ११७-११८, ११९, १२३, १२४, १२५; १३४, १३५-१३७, १४२
शिव-सहस्रनाम—११७, ११८
शिव-स्तुति—१८, ३३, ३८, ४७, ६८, ७१-७३, ९३, १२६
शिव स्वरूप—१४
शिशुपालवध—१७, २०, ५०, १४१
शैव परिवार—११, ४५
शैव मन्दिर—११-१२
शैव-सम्प्रदाय—१०, १४, १३०
सकलाधिकार—१०४
सदाशिव—१४
समराङ्गण-सूत्रधार—१४
सर्वाध्यक्ष (गणेश)—१३५
संग्रहालय-सूची—४
संघात् या संघाट स्वरूप—१, २, १२४
संहार स्वरूप (शिव)—१४
स्कन्द—४०, ४४
स्कन्दपुराण—१२, १३४, १३७, १३८, १३९

सागर विश्वविद्यालय संग्रहालय,
सागर—४९, ५७
सिरवाल, कर्नाटक—७५, ८३
ईश्वर मन्दिर—८३-८४
वापी संख्या १—८४
वापी संख्या २—८४-८५
सिरोन-खुर्द—५२, ६०
सुदर्शन-चक्र—११७-१२०, १२२, १२३
सुप्रभेदागम्—१३९
सूर्य-चन्द्र—१२३
सूर्य-नारायण—२
सूर्य-ब्रह्मा—२
सैन्धव सभ्यता—८
सोमनाथपुर—७५, ९०
केशव मन्दिर—९०, ९६-९७
सोमेश्वर मन्दिर—११२-११३
सोरइया महादेव मन्दिर, वाराणसी—
२१, ३९, ४८-४९
सौम्य स्वरूप (शिव)—१४
श्रीकृष्ण—११९
श्रीतत्त्वनिधि—६०, ६५, ७३-७४,
११७, १२०-१२१, १२३, १३७-
१३८, १४४
श्रीदामा-दैत्य—११९
श्रीमद्भागवतपुराण—१२४, १२९, १३८
श्रीवत्स—४०
श्रीशैलम् मन्दिर, पाटलगंगा—११२,
११७, १२३, १४७
हरदोई का शिव मन्दिर—३९
हरहा अभिलेख—१२
हरिहर—१, २
हरिहरपितामह—२
हरिहरहिरण्यगर्भ—२
हलेबीड—१५, २२, ३७, ३८, ७५, ९०,
९७, १३९, १४४
केदारेश्वर मन्दिर—३८, ९०, ९२-९३
होयसलेश्वर मन्दिर—३८, ९०, ९१-
९२, १३९
हिगंलाजगढ़, मध्य प्रदेश—५२-५३
हेमावती—३५
सिद्धेश्वर मन्दिर—३५, ९०, ९३
होयसल-पुरास्थल—२२, ३७, ३८,
९०-९७
होयसलू—९०
लक्ष्मीनारायण मन्दिर—९०, ९५

✣

१. अर्जुनानुग्रह मूर्ति, कैलाशनाथ मन्दिर, कांचीपुरम्, ल० आठवीं शती ई०

२. चण्डेशानुग्रह मूर्ति, मुक्तेश्वर मन्दिर, कांचीपुरम्, ल० नवीं शती ई०

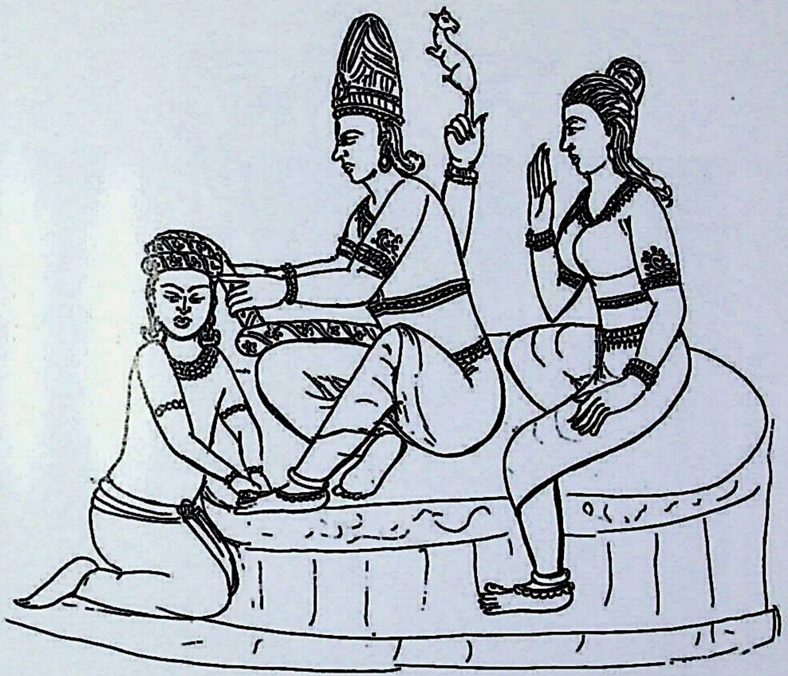

३. चण्डेशानुग्रह मूर्ति, बृहदीश्वर मन्दिर, तंजौर, ल० १००० ई०

४. विष्णवनुग्रह मूर्ति, कैलाशनाथ मन्दिर, कांचीपुरम्, ल० आठवीं शती ई०

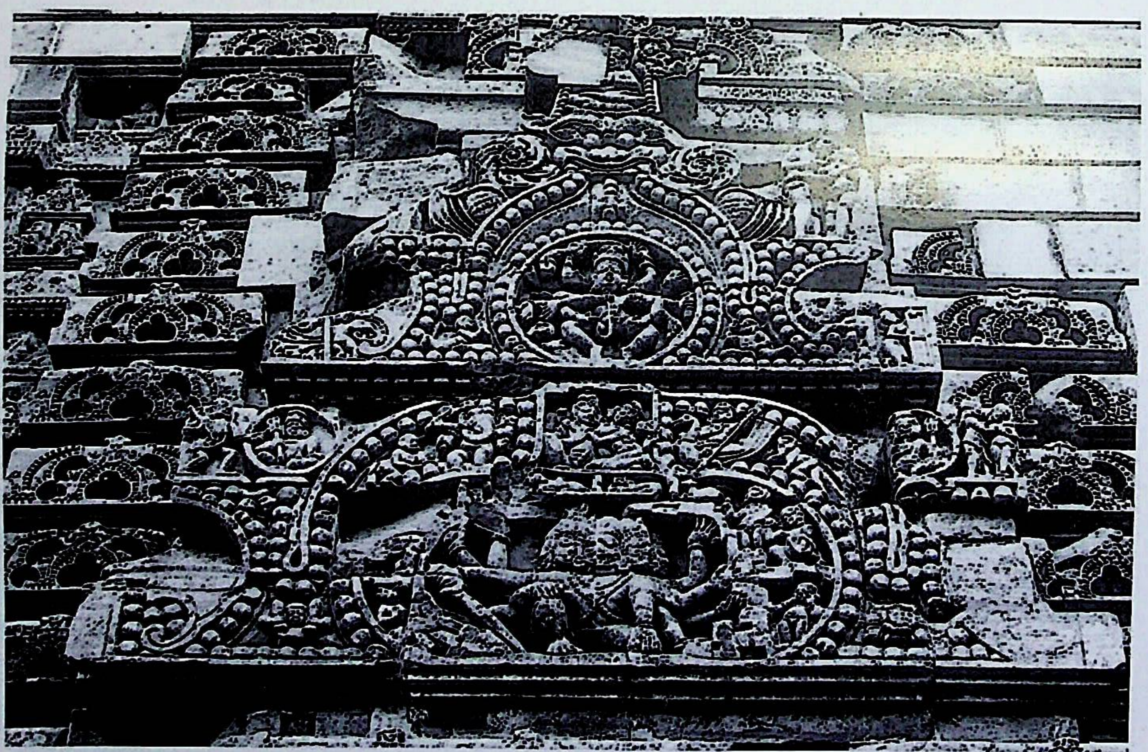

१. रावणानुग्रह मूर्ति, शत्रुघ्नेश्वर मन्दिर, भुवनेश्वर, ल० सातवीं शती ई०

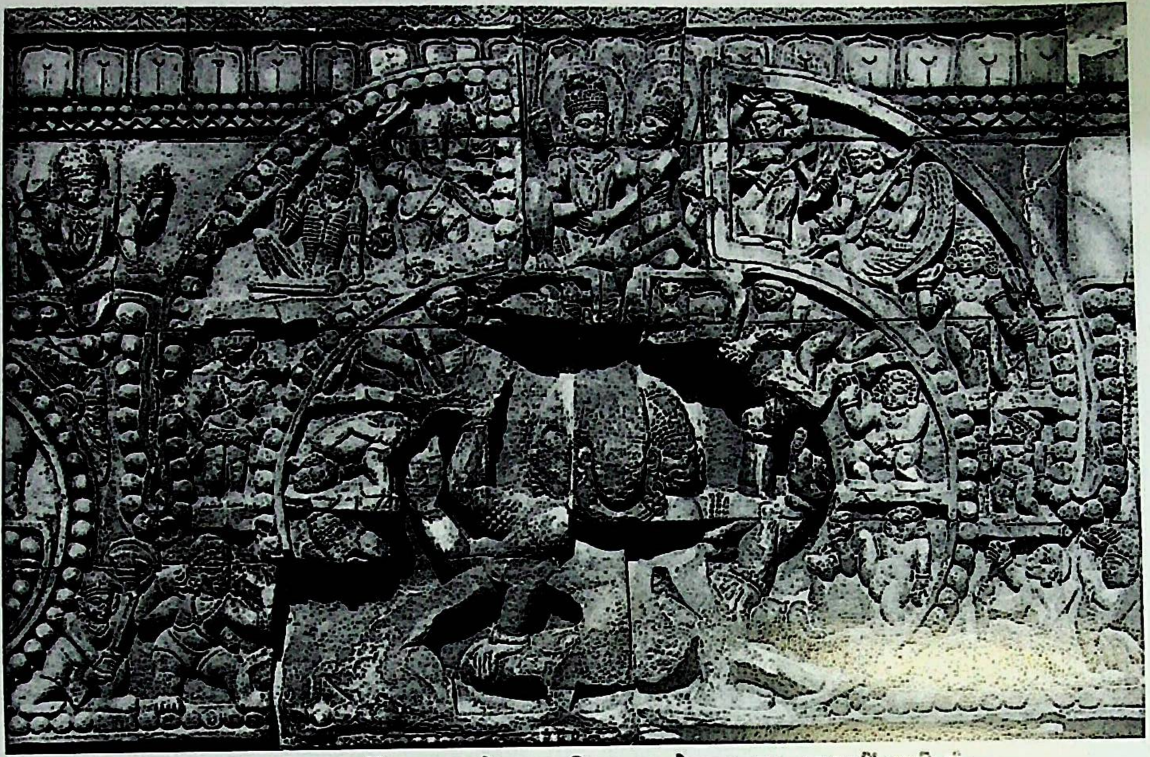

२. रावणानुग्रह मूर्ति, परशुरामेश्वर मन्दिर, भुवनेश्वर, ल० सातवीं शती ई०

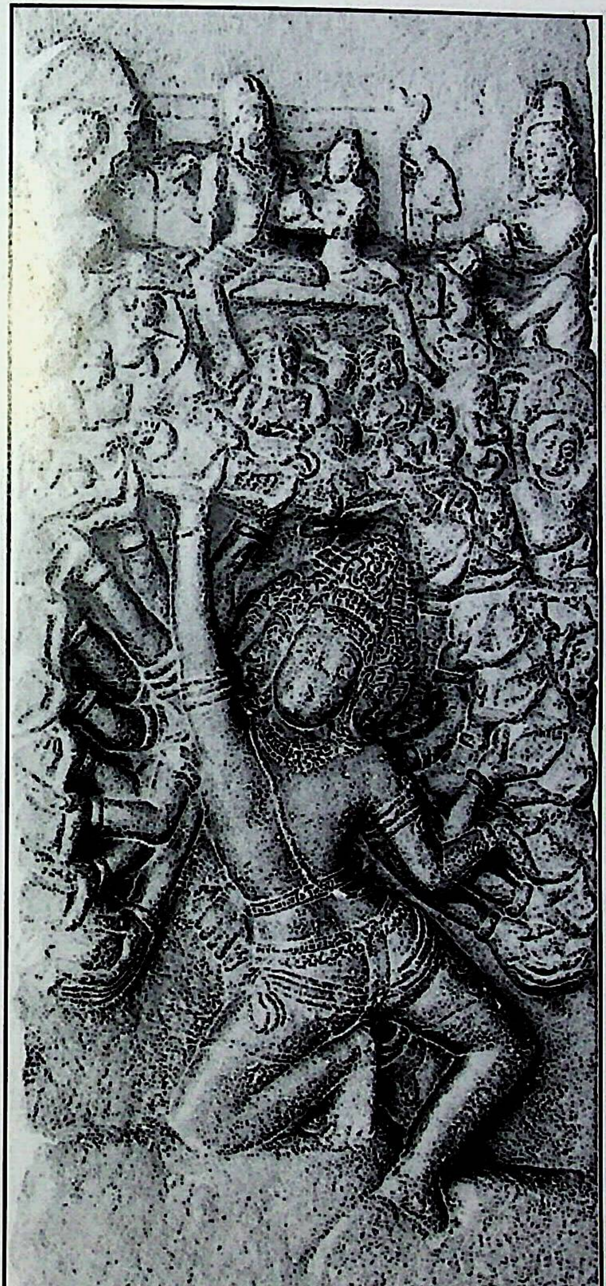

३. रावणानुग्रह मूर्ति, विरूपाक्ष मन्दिर, पट्टडकल, ७४५ ई०

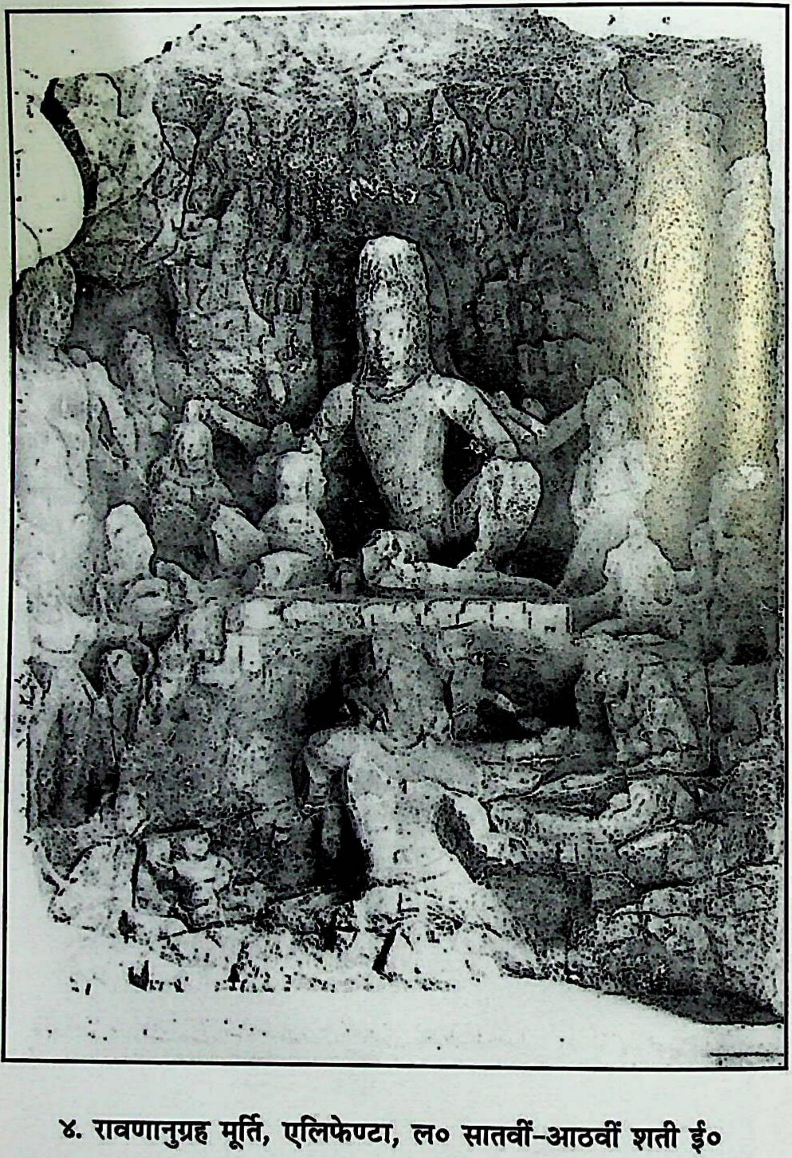

४. रावणानुग्रह मूर्ति, एलिफेण्टा, ल० सातवीं-आठवीं शती ई०

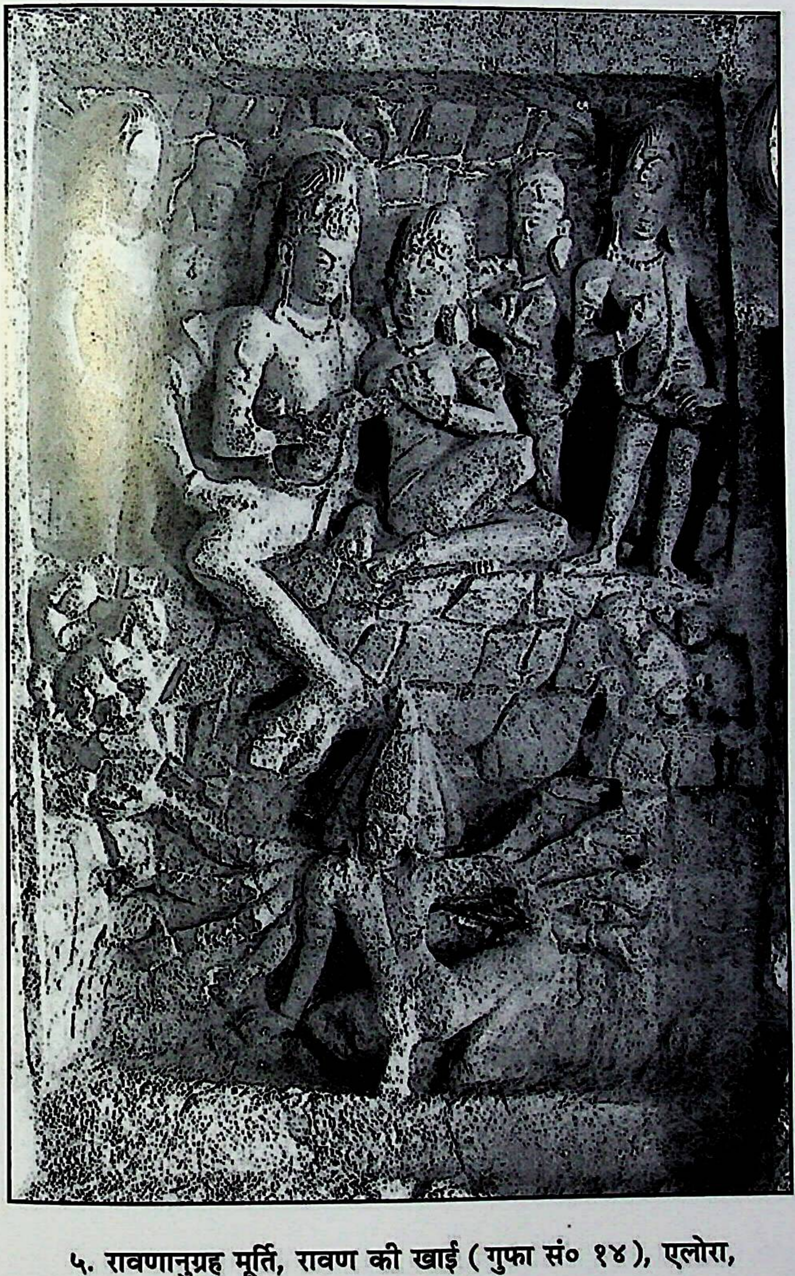

५. रावणानुग्रह मूर्ति, रावण की खाई (गुफा सं० १४), एलोरा,
ल० सातवीं शती ई०

६. रावणानुग्रह मूर्ति, दशावतार गुफा (गुफा सं० १५), एलोरा, ल० ७५० ई०

७. रावणानुग्रह मूर्ति, लंकेश्वर गुफा, एलोरा, ल० नवीं शती ई० का पूर्वार्द्ध

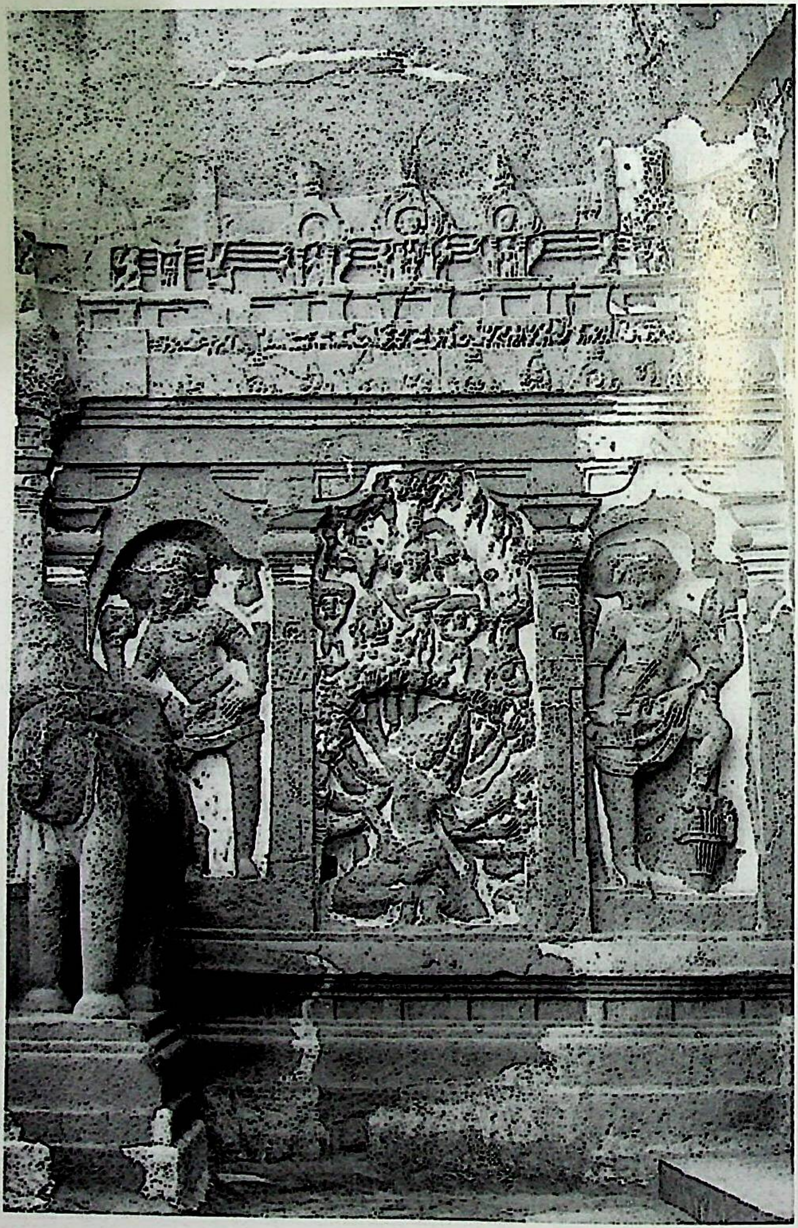

८. रावणानुग्रह मूर्ति, कैलाश मन्दिर, एलोरा, ल० आठवीं शती ई०

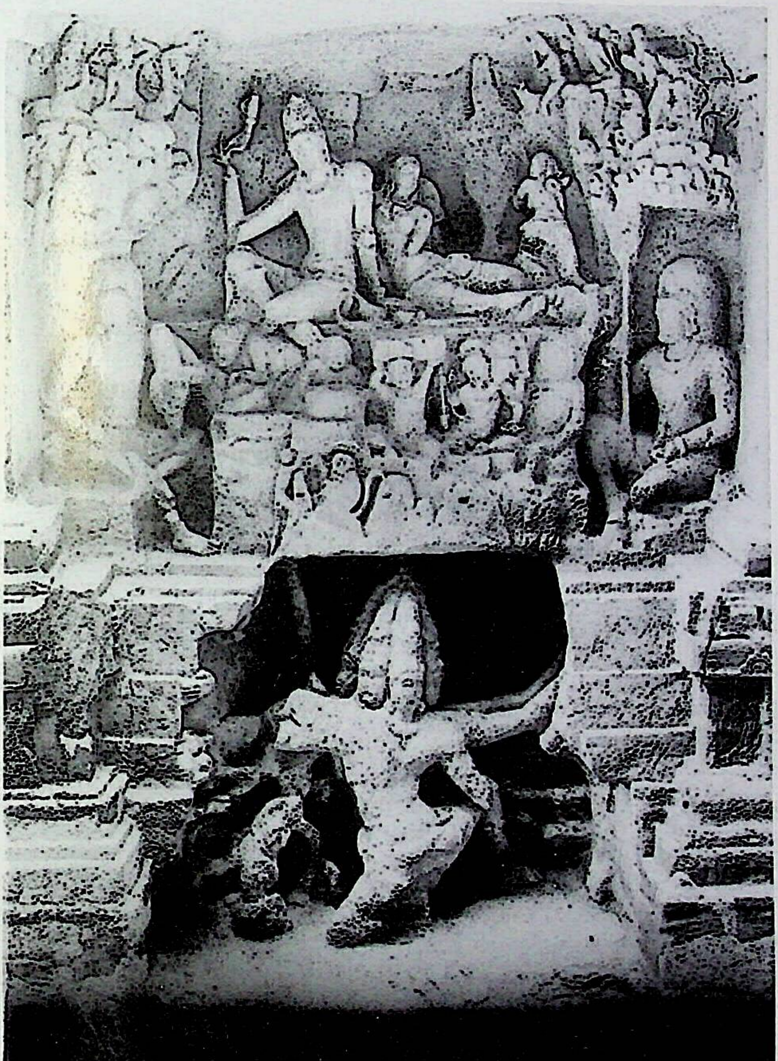

९. रावणानुग्रह मूर्ति, कैलाश मन्दिर, एलोरा, ल० आठवीं शती ई०

१०. रावणानुग्रह मूर्ति, हरिहर मन्दिर २, ओसियाँ, ल० आठवीं शती ई०

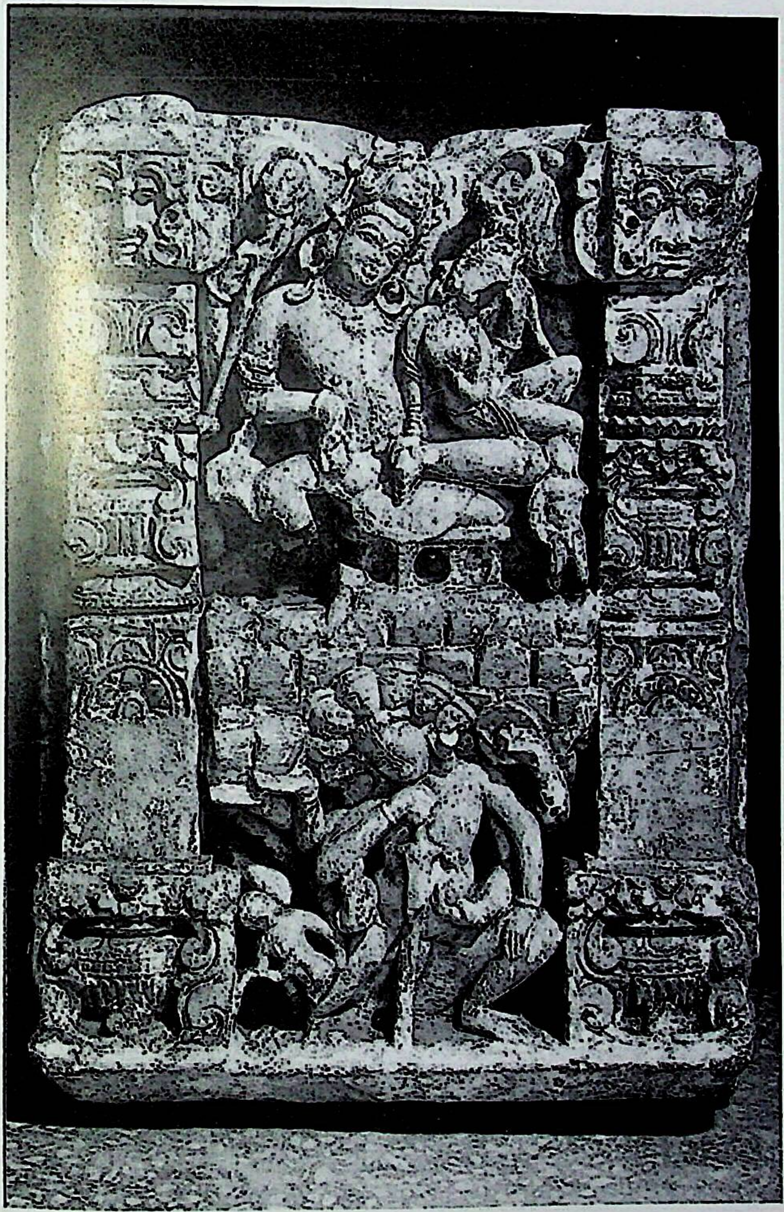

११. रावणानुग्रह मूर्ति, आबनेरी, ल० आठवीं-नवीं शती ई०
केन्द्रीय संग्रहालय, जयपुर

१२. रावणानुग्रह मूर्ति, कडूर, ल० नवीं शती ई०
शासकीय संग्रह, मैसूर

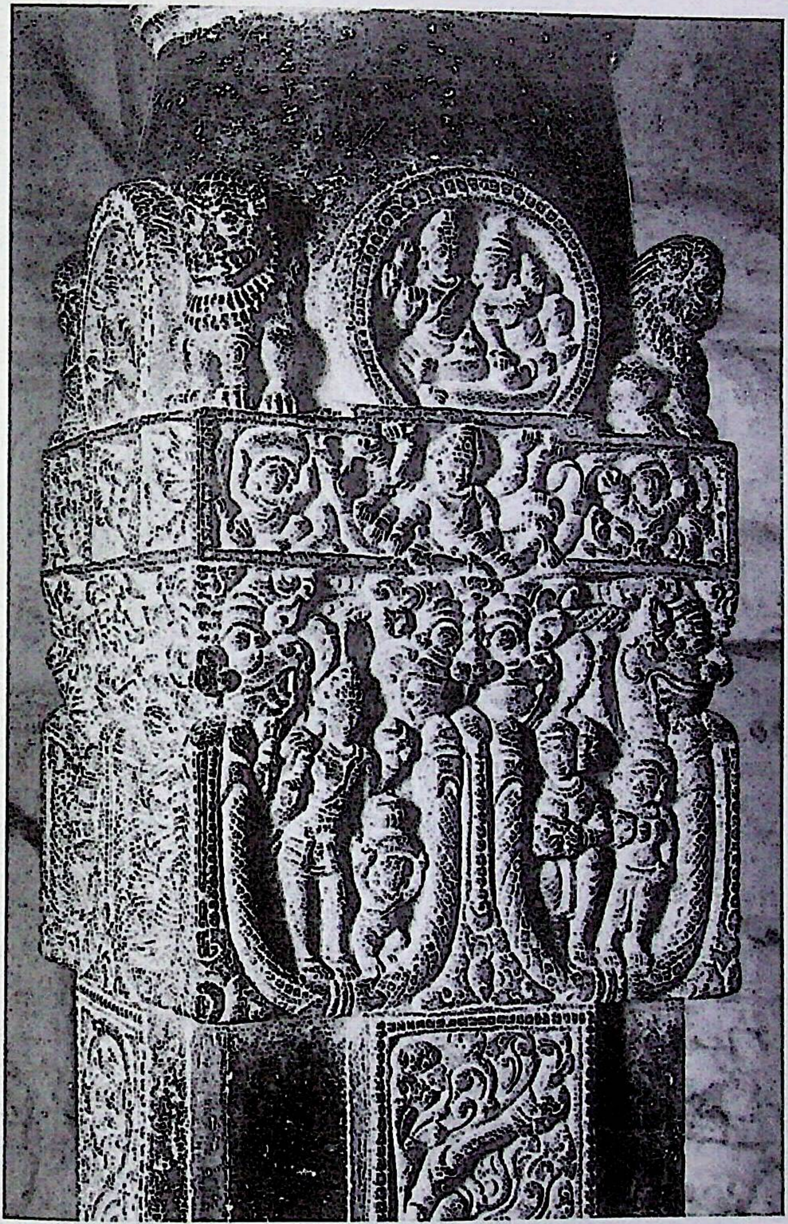

१३. रावणानुग्रह मूर्ति (स्तम्भ), सिद्धेश्वर मन्दिर, हेमावती,
ल० १०वीं शती ई०

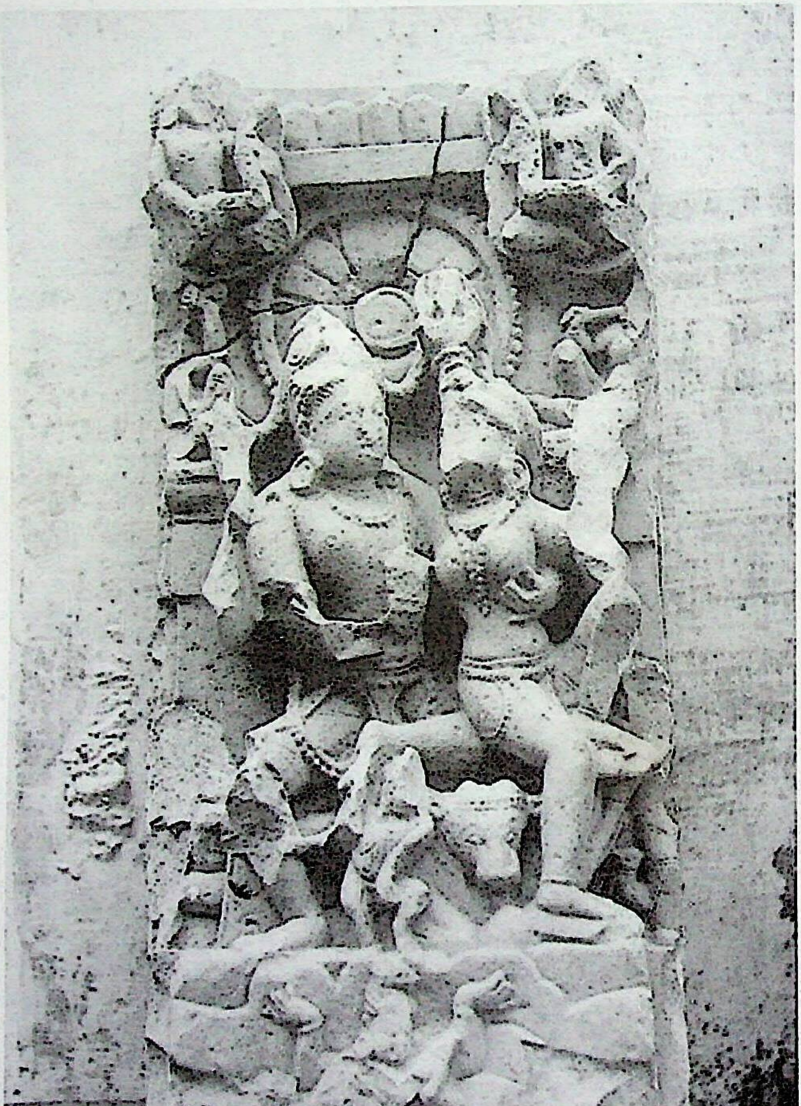

१४. रावणानुग्रह मूर्ति, कन्नौज, ल० १०वीं शती ई०
पुरातत्त्व संग्रहालय, कन्नौज

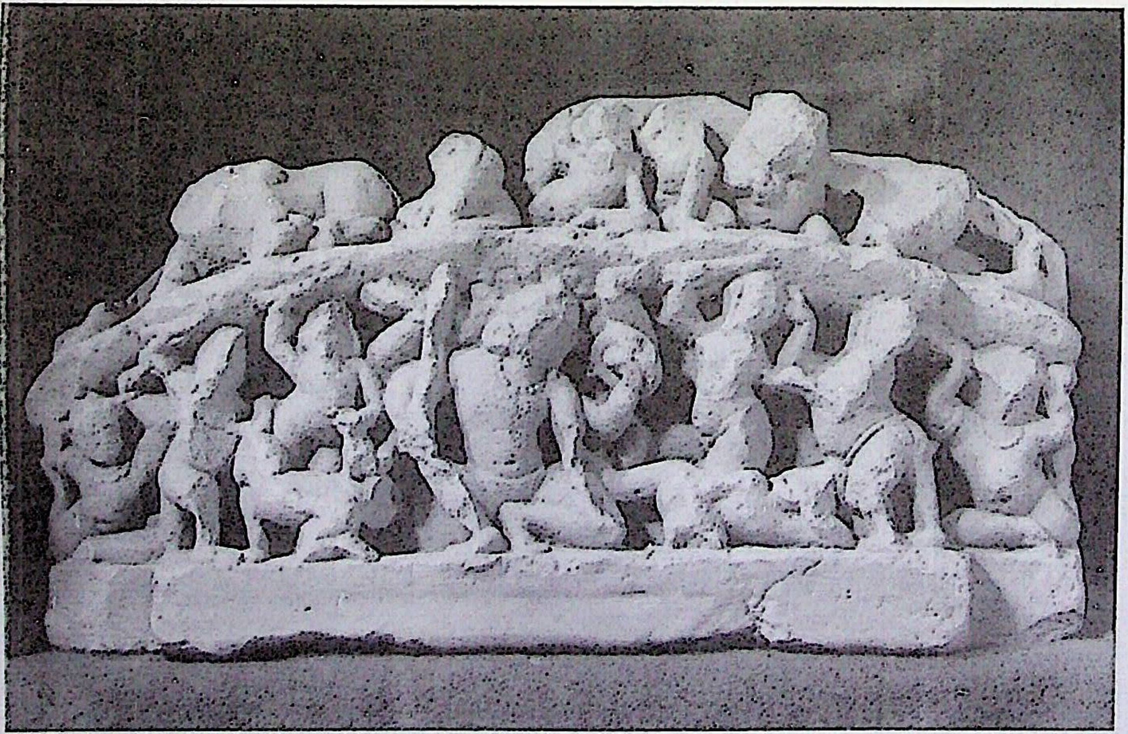

१५. रावणानुग्रह मूर्ति की खण्डित पीठिका, कन्नौज, ल० १०वीं शती ई०, पुरातत्त्व संग्रहालय कन्नौज

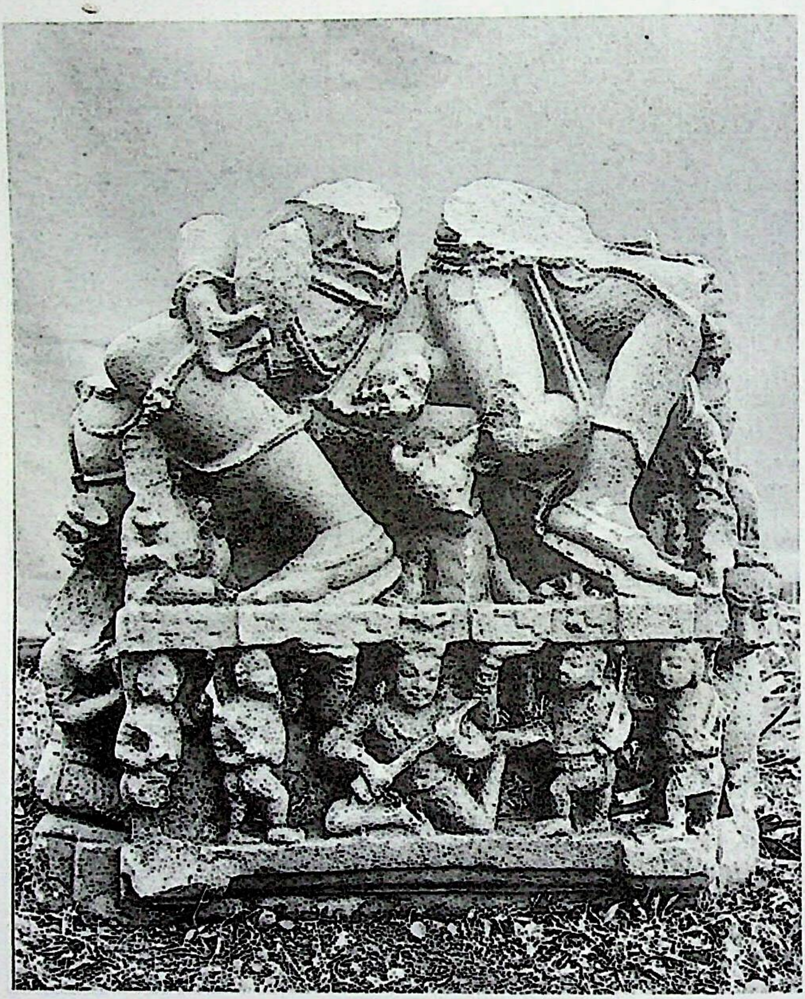

१६. रावणानुग्रह मूर्ति, मध्य प्रदेश, ल० नवीं-१०वीं शती ई०
रानी दुर्गावती पुरातत्त्व संग्रहालय, जबलपुर

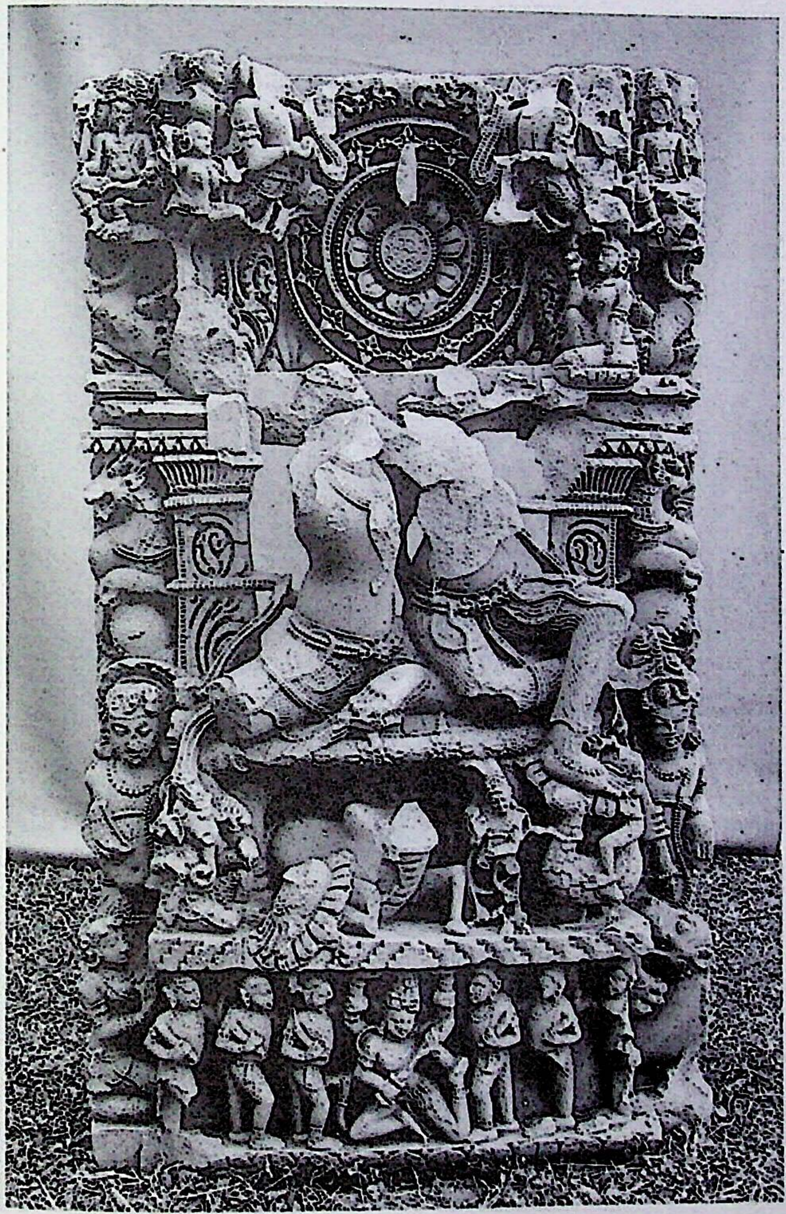

१७. रावणानुग्रह मूर्ति, हिंगलाजगढ़, ल० १०वीं शती ई०
रानी दुर्गावती पुरातत्त्व संग्रहालय, जबलपुर

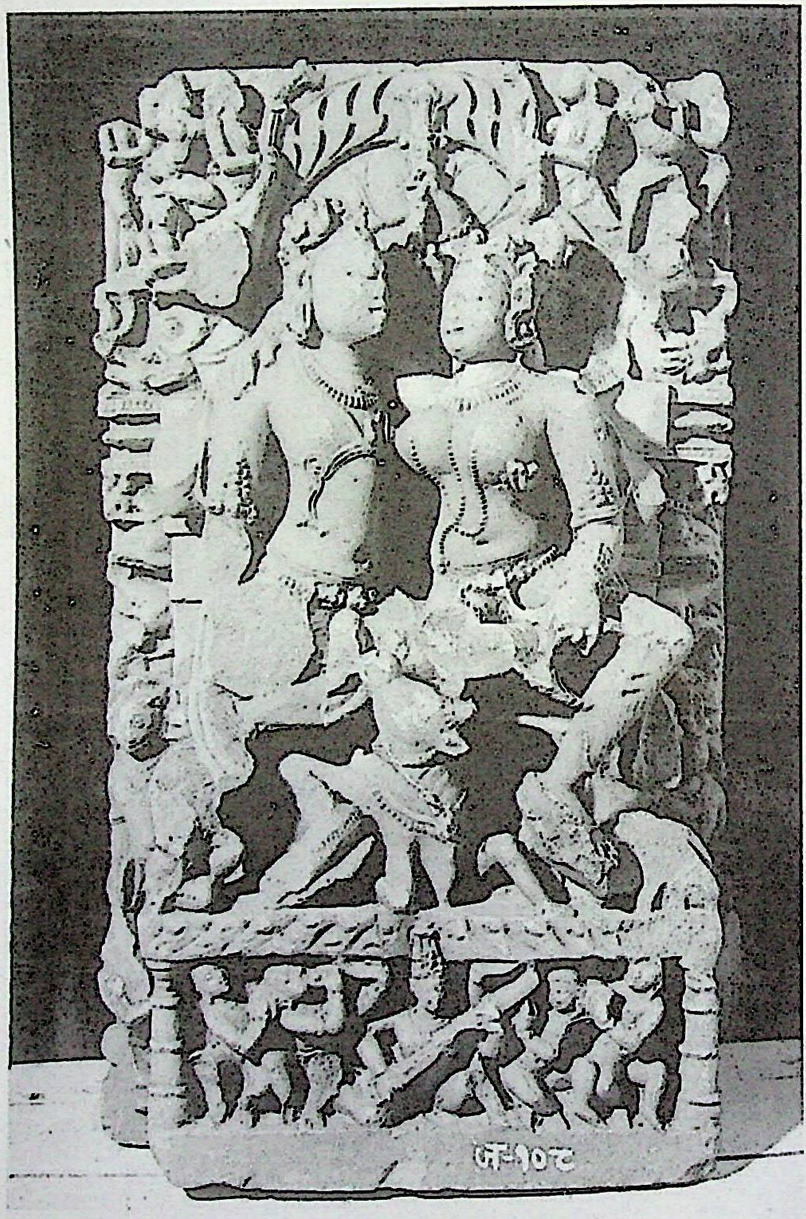

१८. रावणानुग्रह मूर्ति, जबलपुर, ल० १०वीं शती ई०
रानी दुर्गावती पुरातत्त्व संग्रहालय, जबलपुर

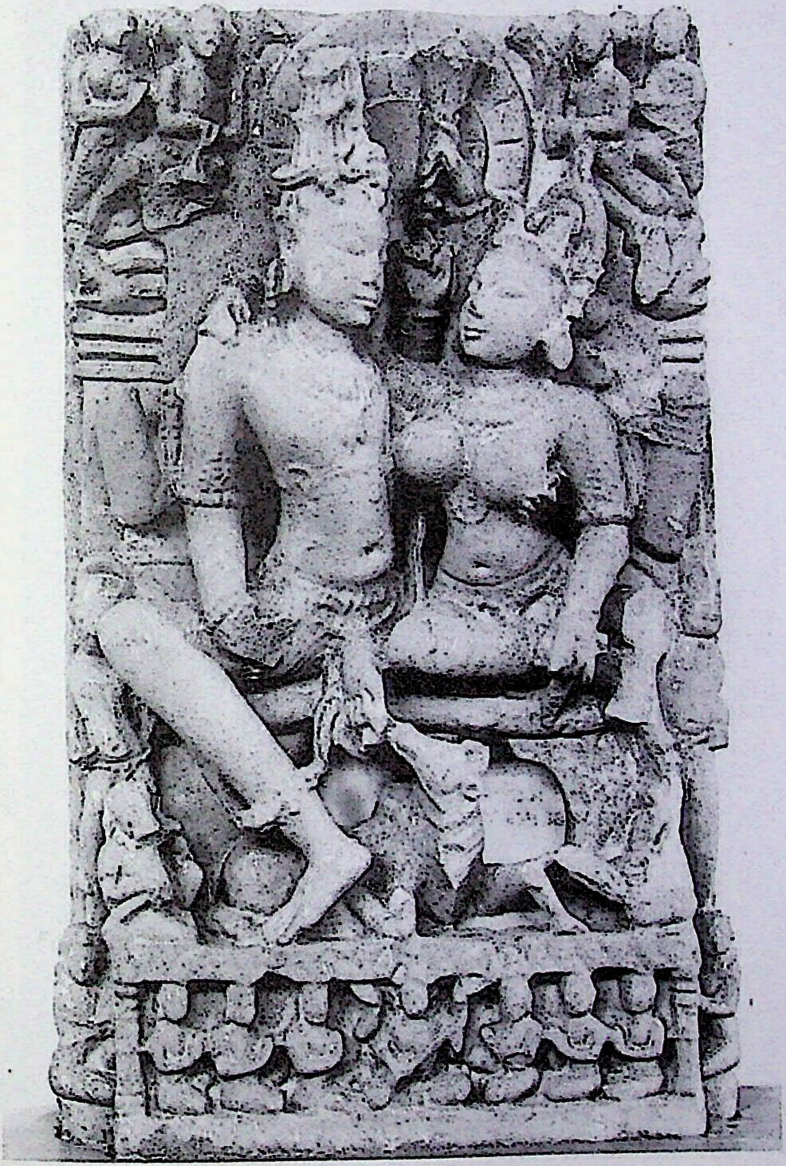

१९. रावणानुग्रह मूर्ति, मध्य प्रदेश, ल० १३वीं शती ई०
रानी दुर्गावती पुरातत्त्व संग्रहालय, जबलपुर

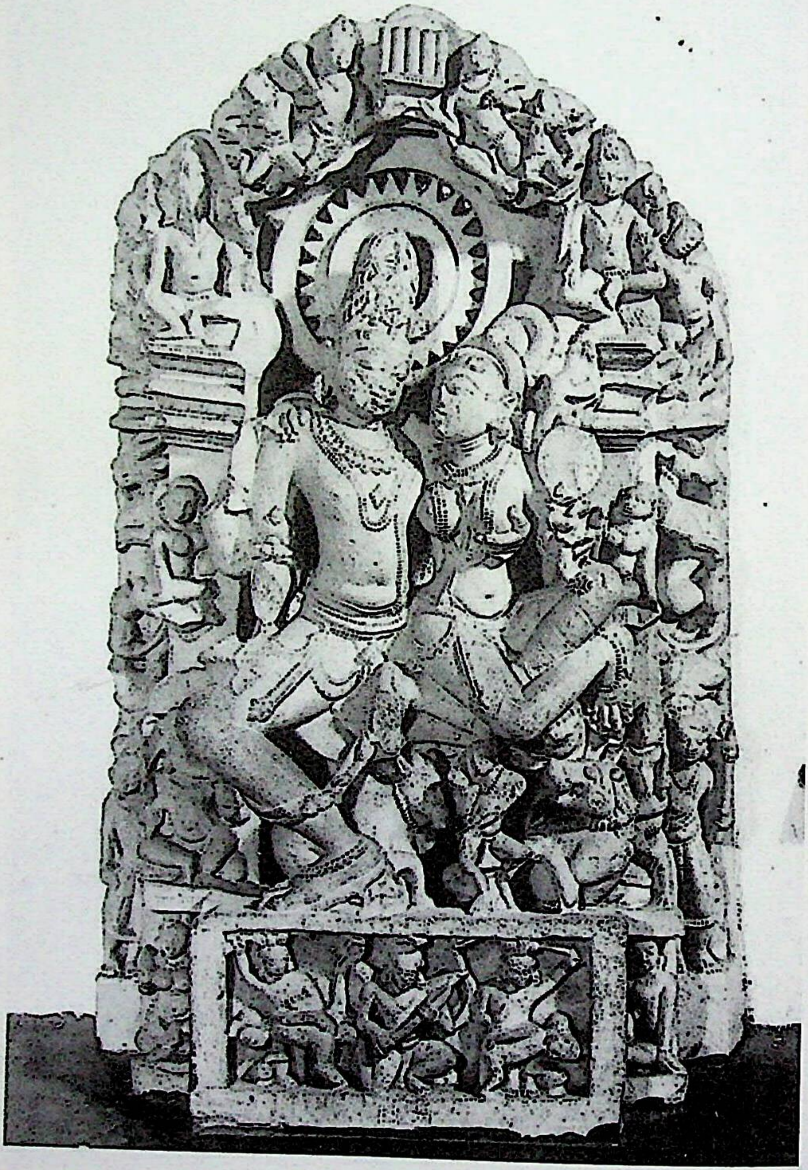

२०. रावणानुग्रह मूर्ति, खजुराहो, ल० १०वीं शती ई०
भारतीय संग्रहालय, कलकत्ता

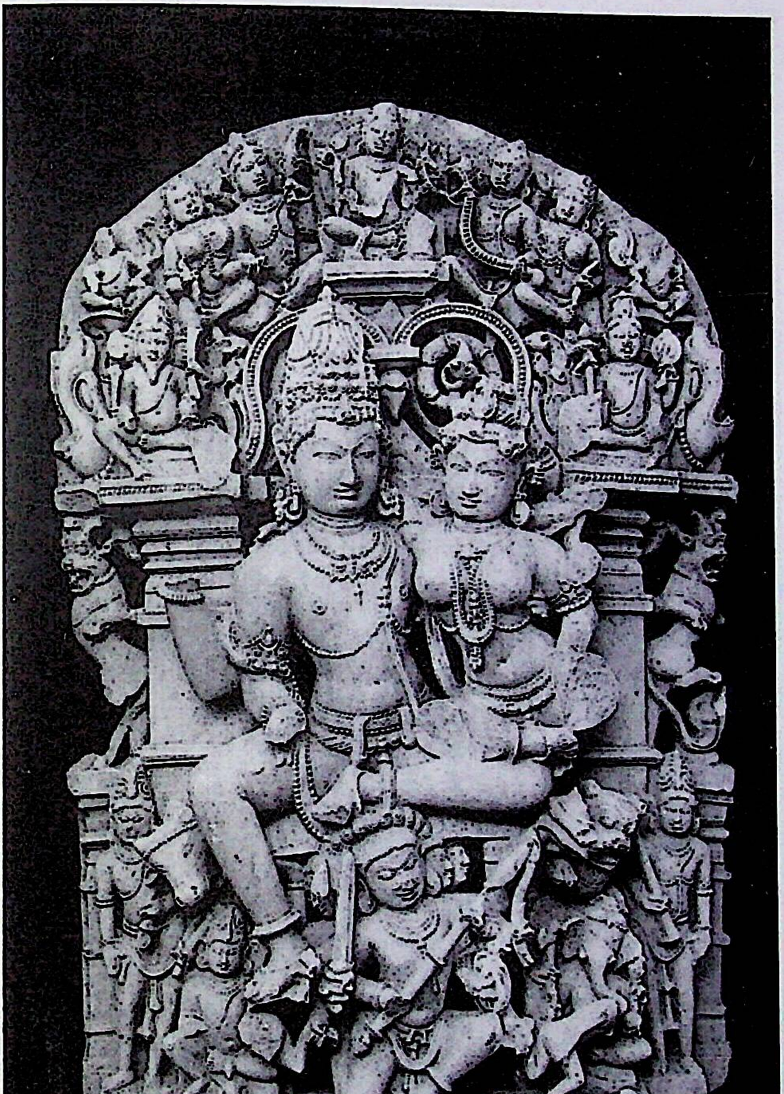

२१. रावणानुग्रह मूर्ति, हिंगलाजगढ़, ल० १०वीं शती ई०
केन्द्रीय संग्रहालय, इन्दौर

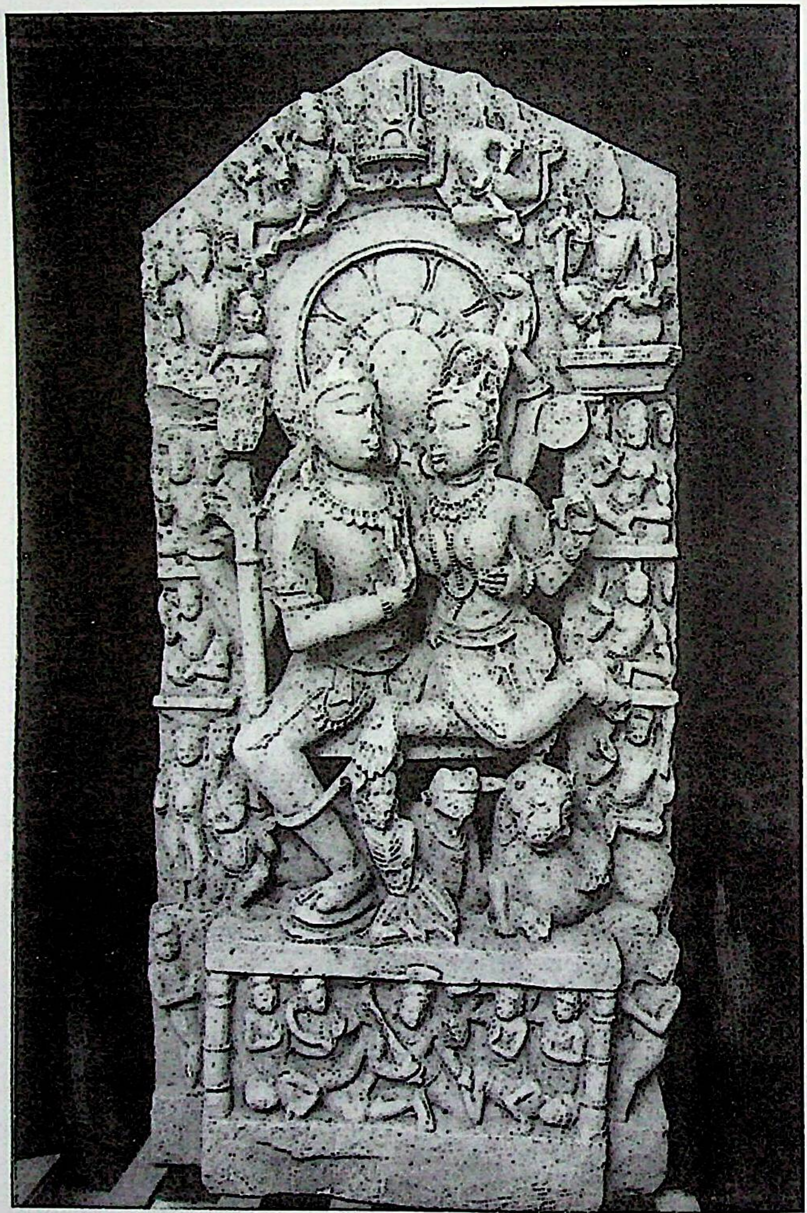

२२. रावणानुग्रह मूर्ति, हिंगलाजगढ़, ल० १०वीं शती ई०
केन्द्रीय संग्रहालय, इन्दौर

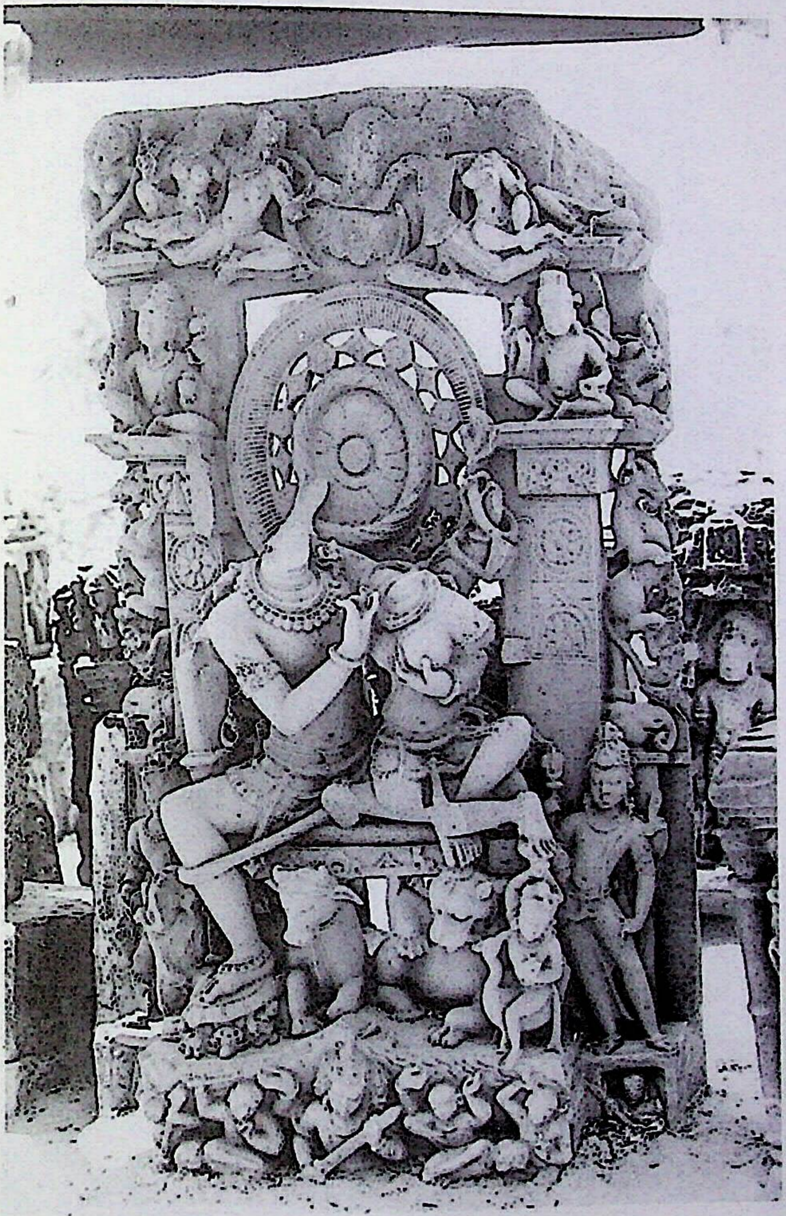

२३. रावणानुग्रह मूर्ति, आशापुरी, ल० १०वीं शती ई०

राज्य संग्रहालय, आशापुरी

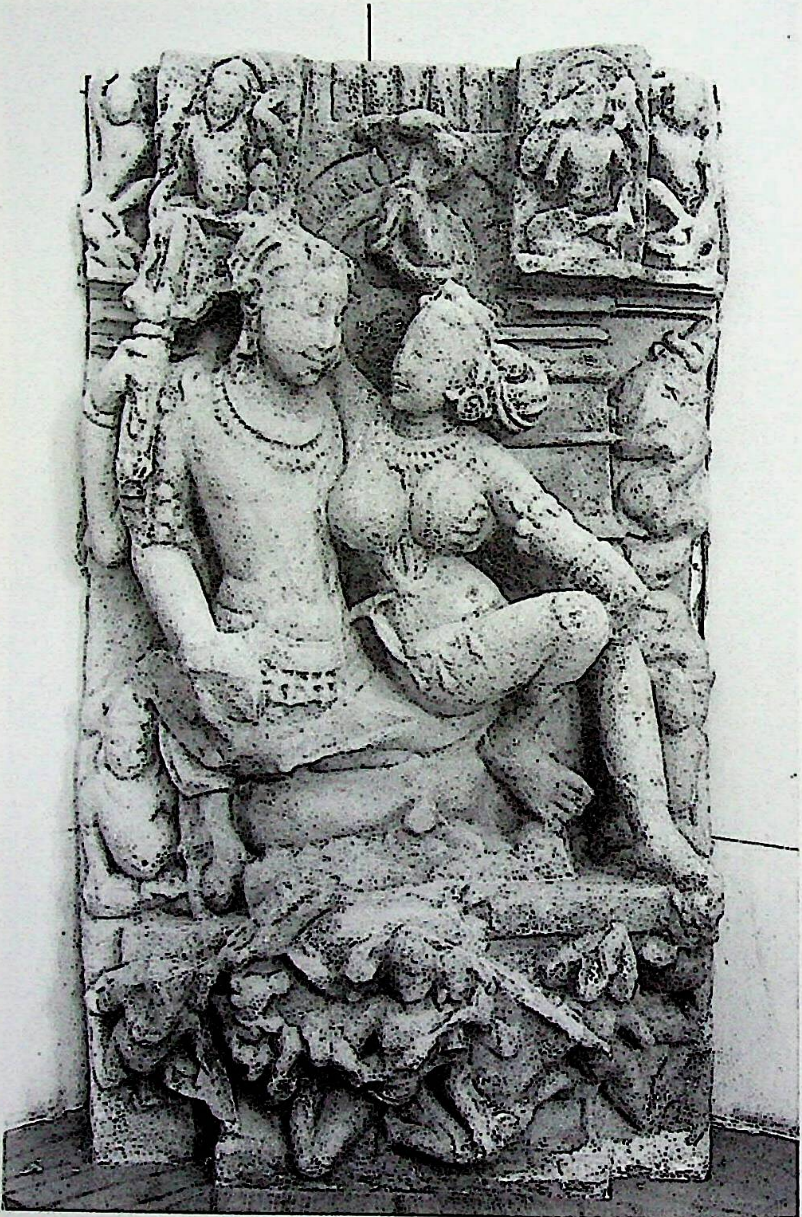

२४. रावणानुग्रह मूर्ति, करितलाई, ल० १०वीं शती ई०
महात्मा गांधी स्मृति संग्रहालय, रायपुर

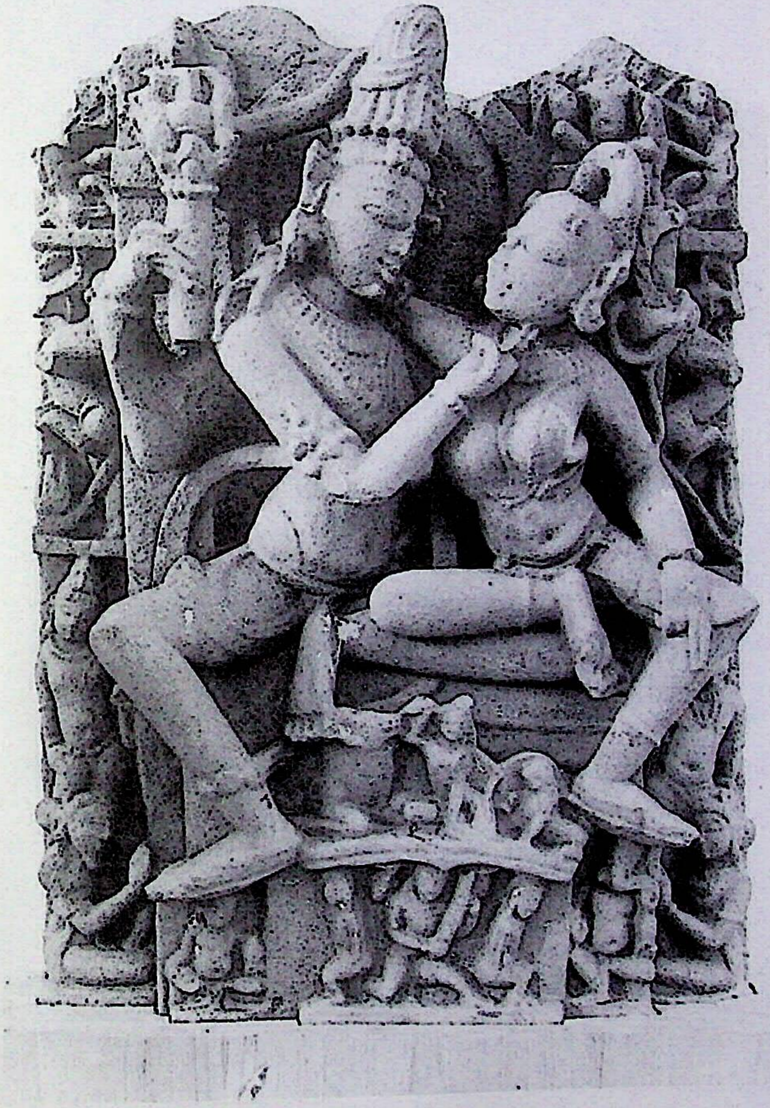

२५. रावणानुग्रह मूर्ति, मध्य प्रदेश, ल० ११वीं शती ई०
भोपाल संग्रहालय, भोपाल

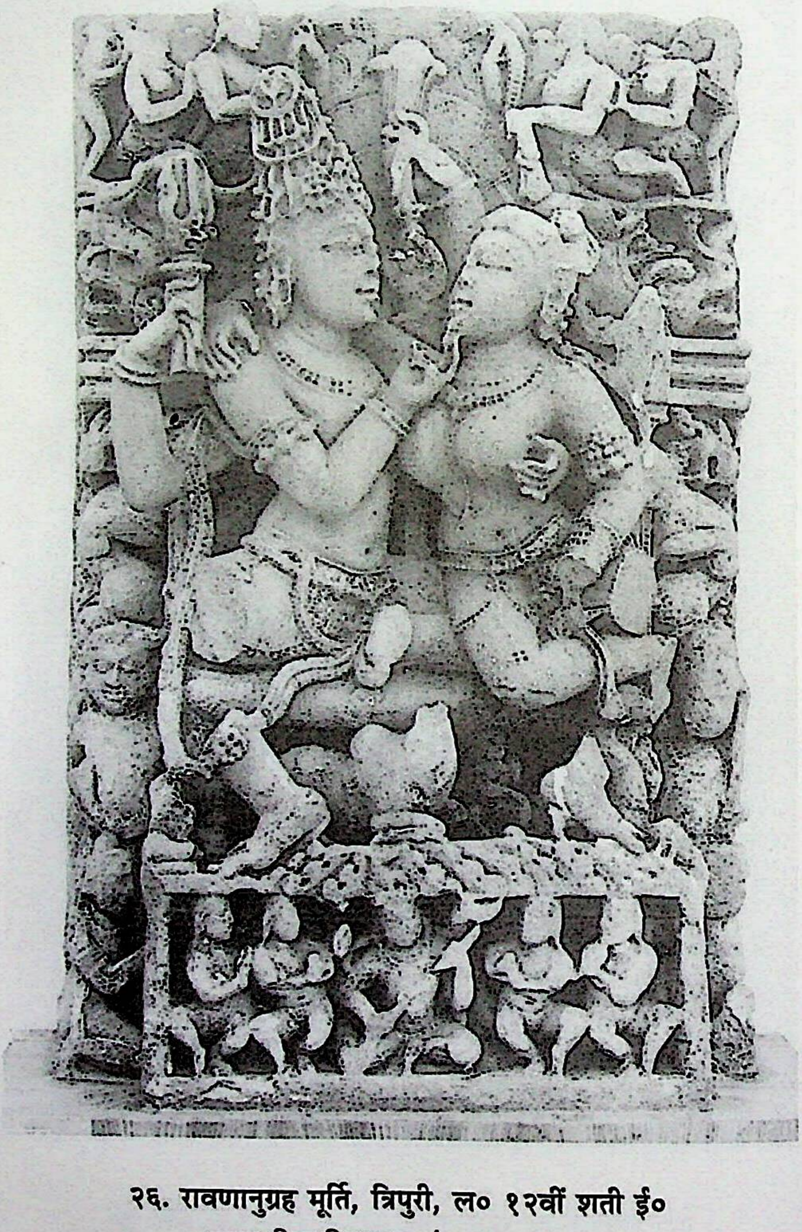

२६. रावणानुग्रह मूर्ति, त्रिपुरी, ल० १२वीं शती ई०
सागर विश्वविद्यालय संग्रहालय, सागर

२७. रावणानुग्रह मूर्ति, मध्य प्रदेश, ल० १०वीं-११वीं शती ई०
भारत कला भवन, वाराणसी

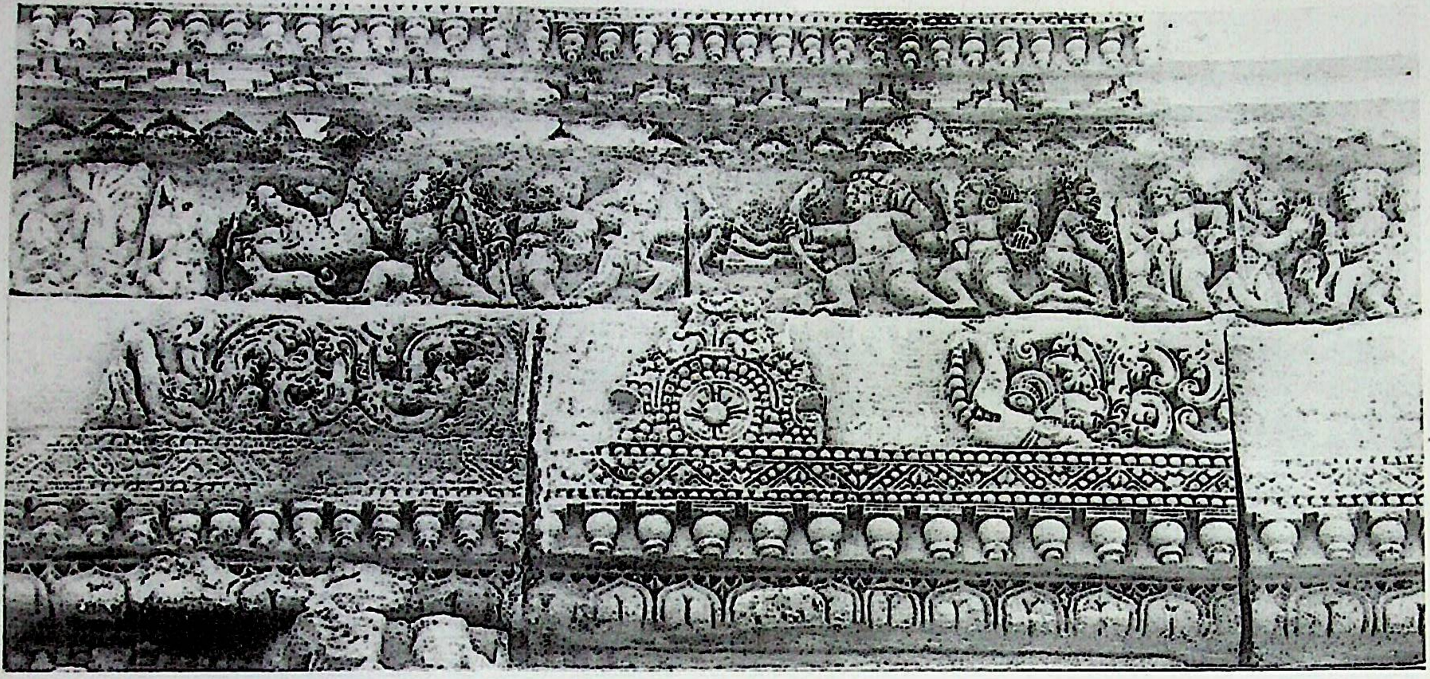

२८. अर्जुनानुग्रह फलक, स्वर्णजालेश्वर मन्दिर, भुवनेश्वर ल० सातवीं शती ई० का उत्तरार्द्ध

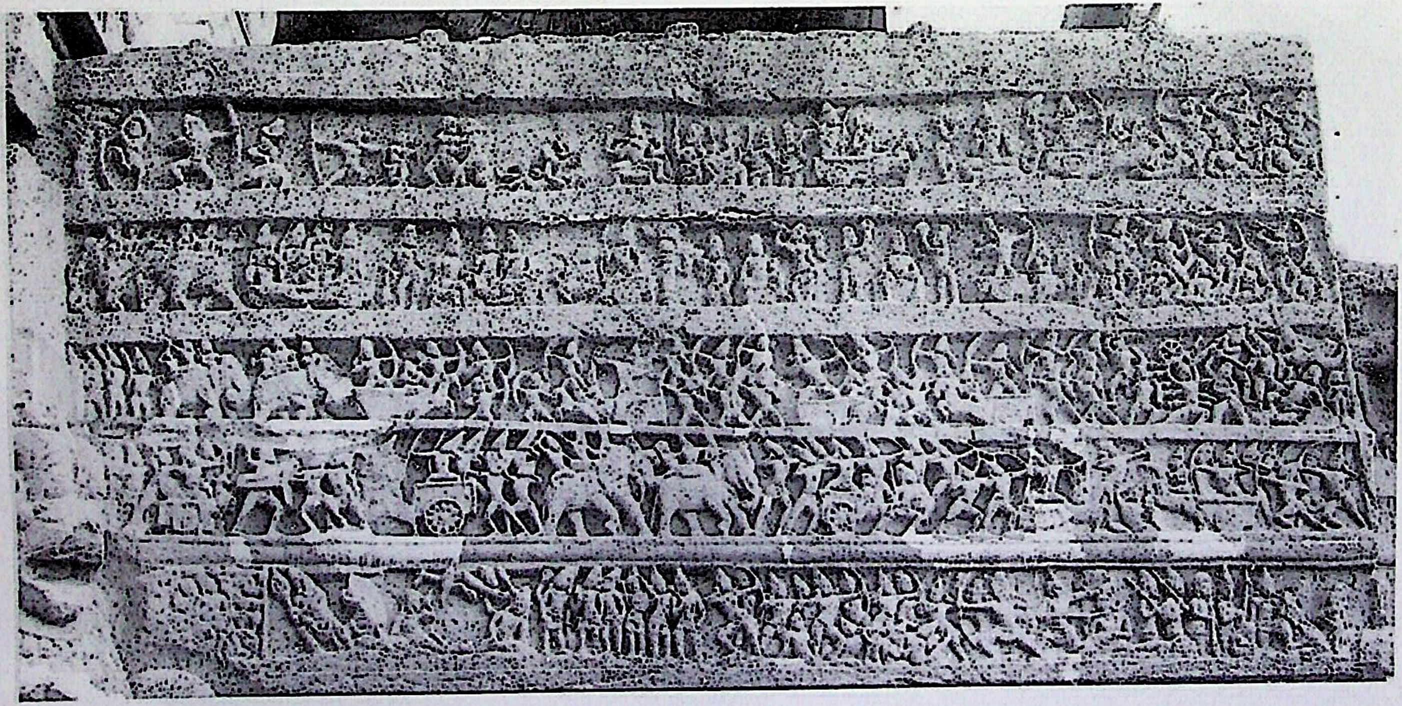

२९. अर्जुनानुग्रह फलक (महाभारत के दृश्यांकन में), कैलाश मन्दिर, एलोरा, ल० आठवीं शती ई०

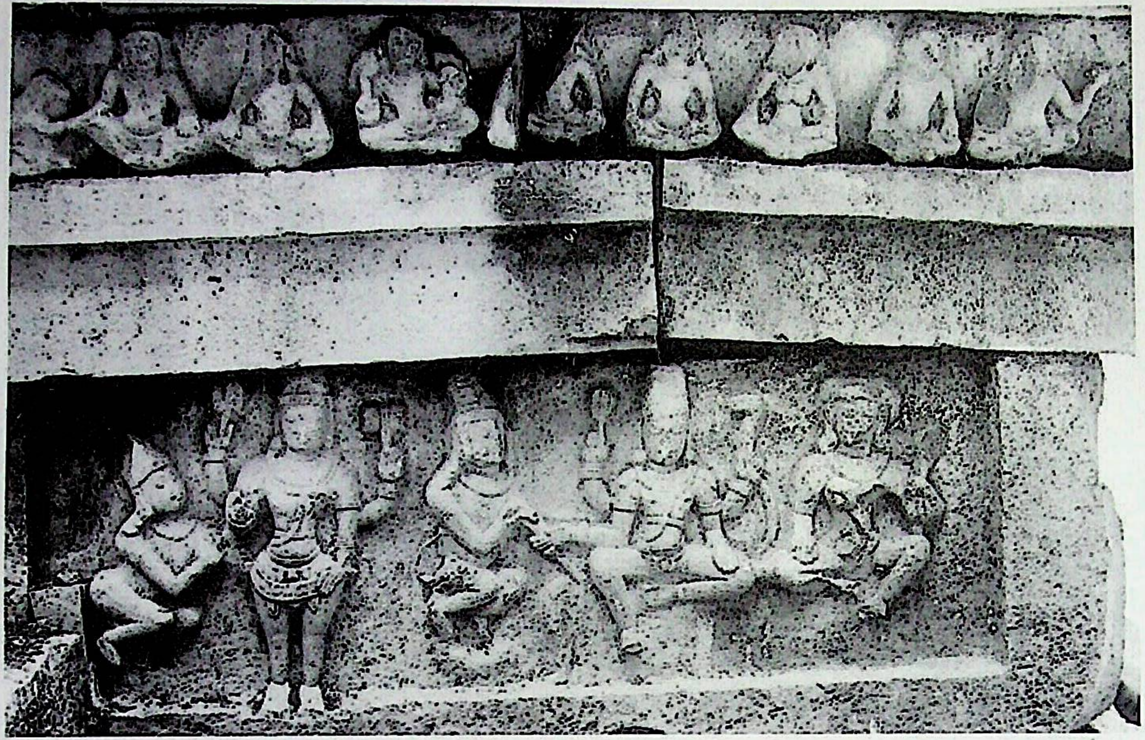

३०. अर्जुनानुग्रह फलक, वापी १, सिरवाल, ल० १०वीं शती ई०

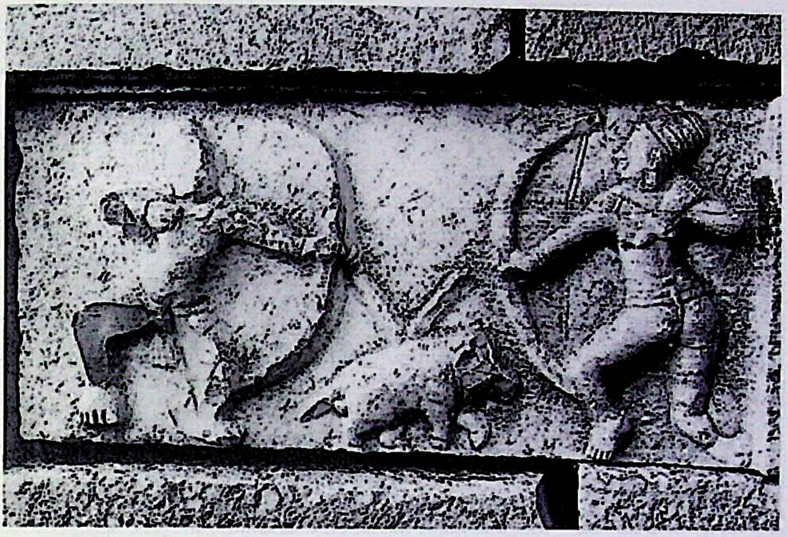

३१. अर्जुनानुग्रह फलक (भाग-१), वापी २, सिरवाल, ल० १०वीं शती ई०

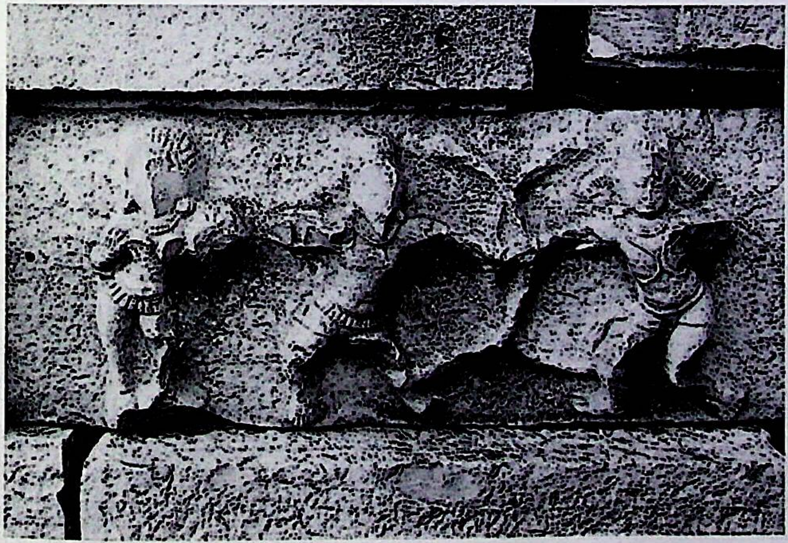

३२. अर्जुनानुग्रह फलक (भाग-२), वापी २, सिरवाल, ल० १०वीं शती ई०

३३. अर्जुनानुग्रह फलक (स्तम्भ), कडूर, ल० १०वीं शती ई०
शासकीय संग्रह, मैसूर

३४. अर्जुनानुग्रह फलक (स्तम्भ), कडूर, ल० १०वीं शती ई०
शासकीय संग्रह, मैसूर

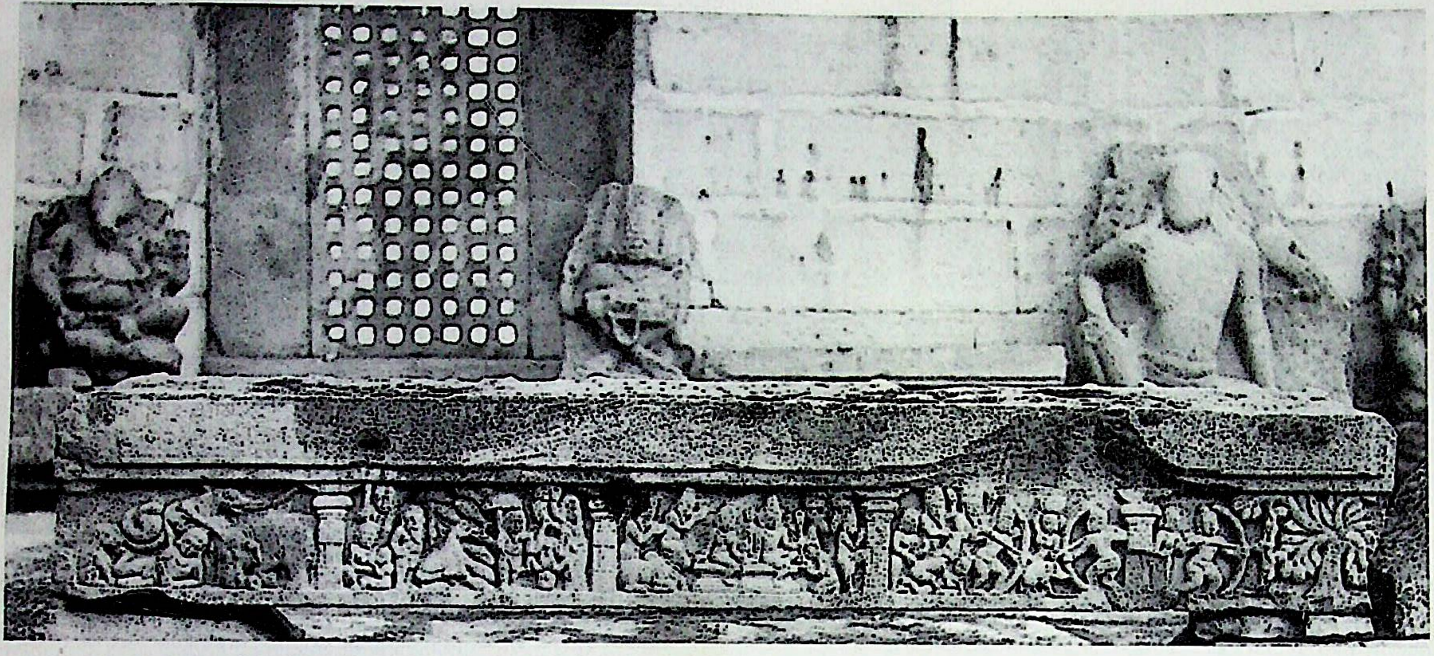

३५. अर्जुनानुग्रह फलक, आलमपुर, ल० १०वीं शती ई०, आलमपुर संग्रहालय, आलमपुर

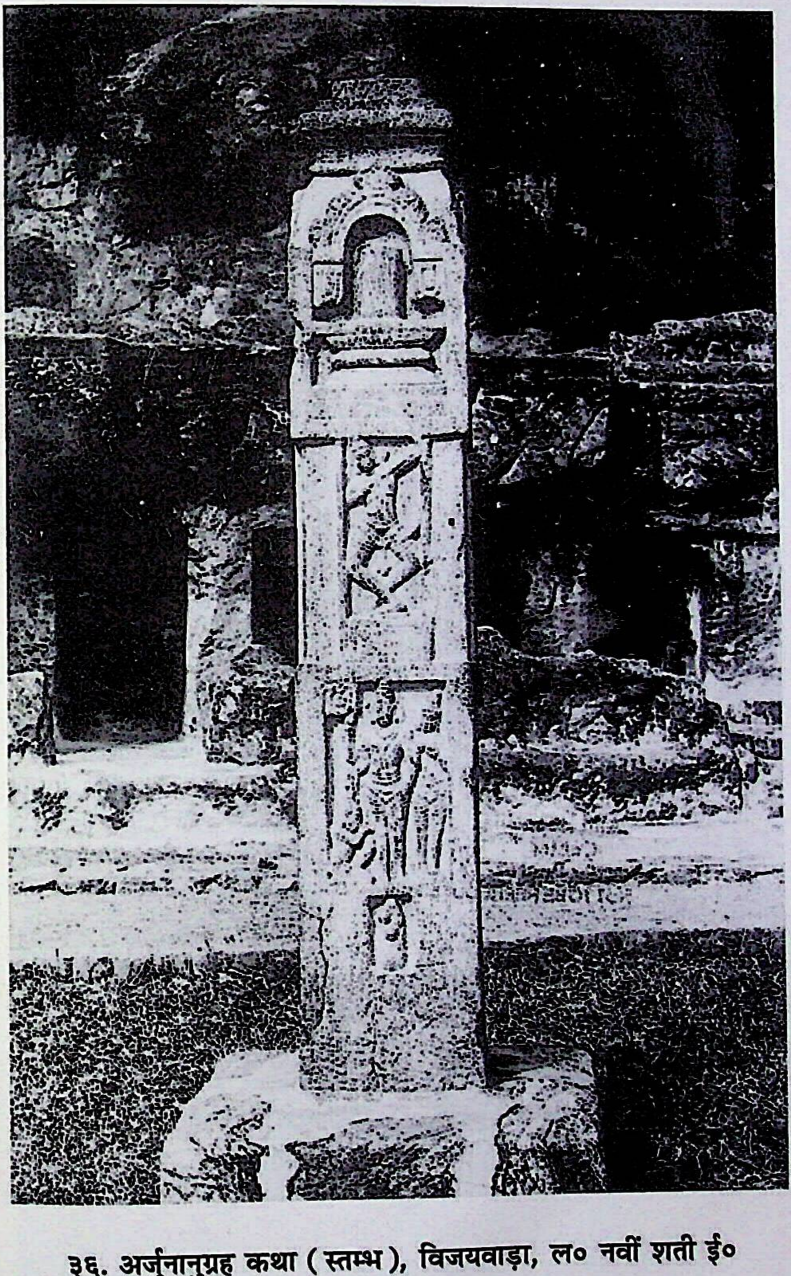

३६. अर्जुनानुग्रह कथा (स्तम्भ), विजयवाड़ा, ल० नवीं शती ई०

३७. अर्जुनानुग्रह मूर्ति, साक्षीश्वर मन्दिर, तंजौर,
ल० १०वीं शती ई० का उत्तरार्द्ध

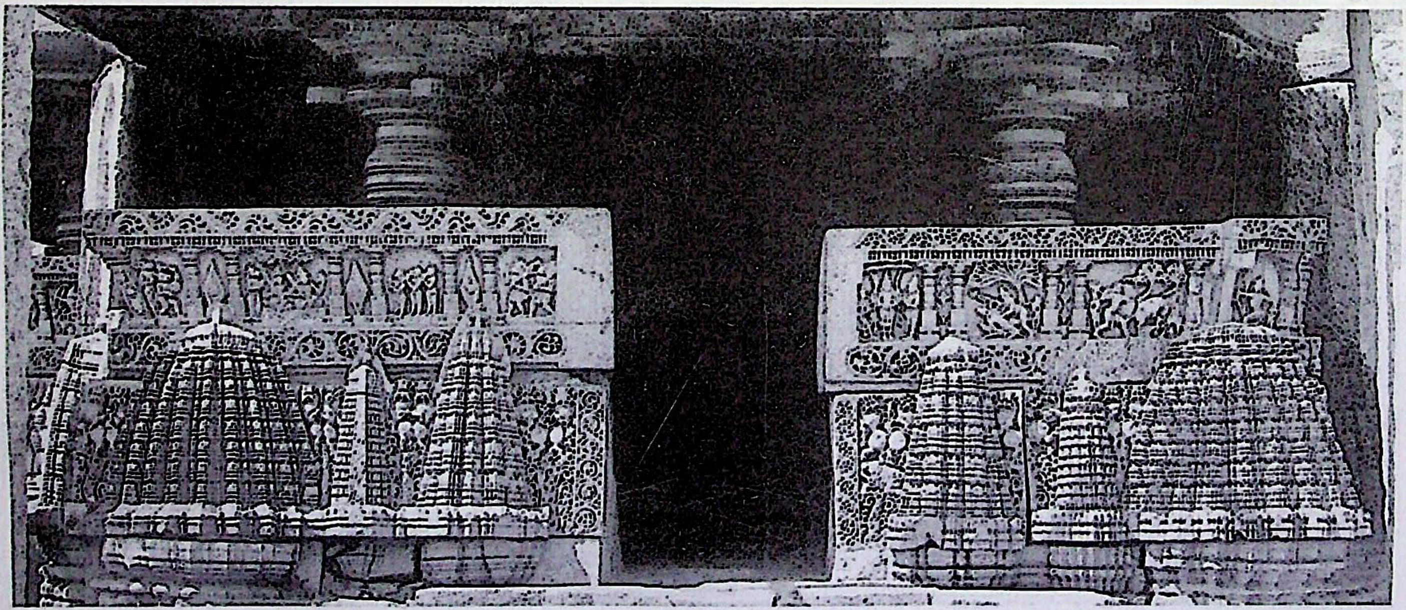

३८. अर्जुनानुग्रह फलक, अमृतेश्वर मन्दिर, अमृतापुर, ११९६ ई०

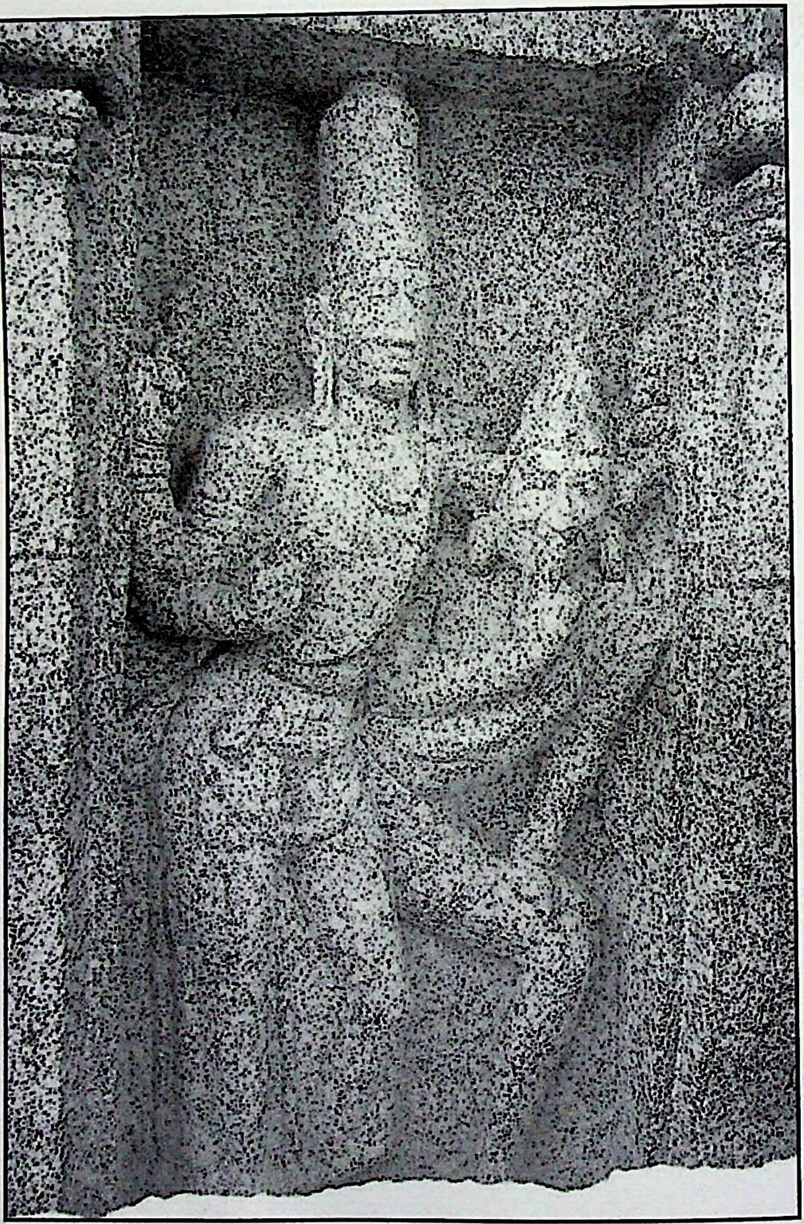

३९. चण्डेशानुग्रह मूर्ति, धर्मराज रथ, महाबलीपुरम्, ल० सातवीं शती ई०

४०. चण्डेशानुग्रह मूर्ति (बायीं रथिका), कैलाशनाथ मन्दिर,
कांचीपुरम्, ल० आठवीं शती ई०

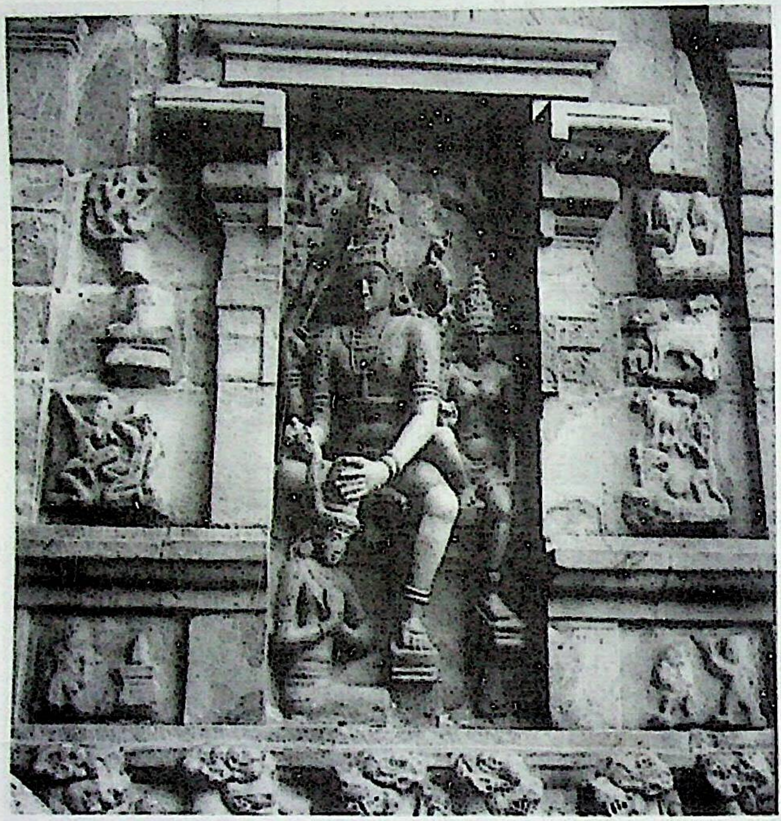

४१. चण्डेशानुग्रह मूर्ति (कथात्मक अंकन सहित), बृहदीश्वर मन्दिर, गंगैकोण्डचोलपुरम्, ल० ११वीं शती ई० का पूर्वार्द्ध

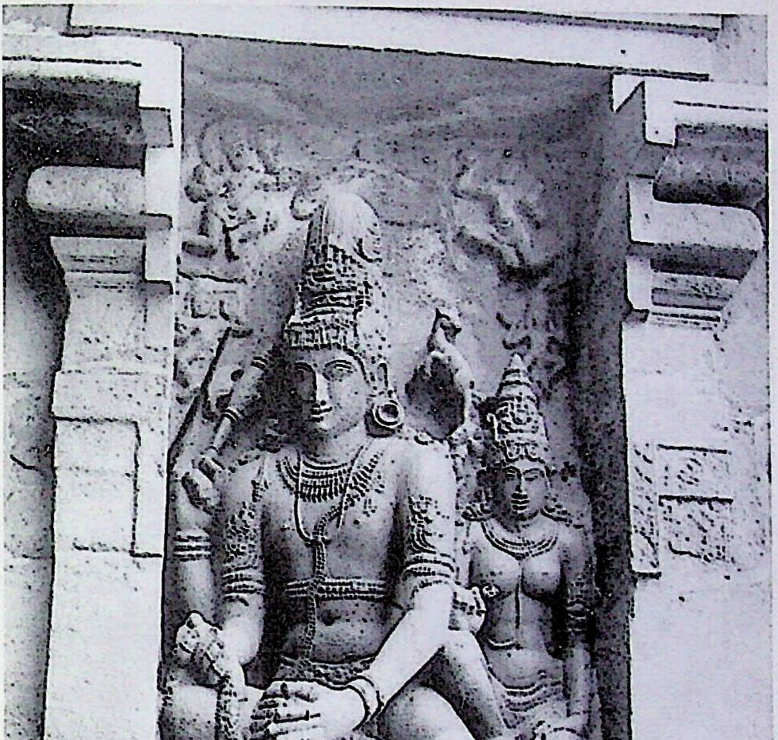

४२. चण्डेशानुग्रह मूर्ति, बृहदीश्वर मन्दिर, गंगैकोण्डचोलपुरम्,
ल० ११वीं शती ई० का पूर्वार्द्ध

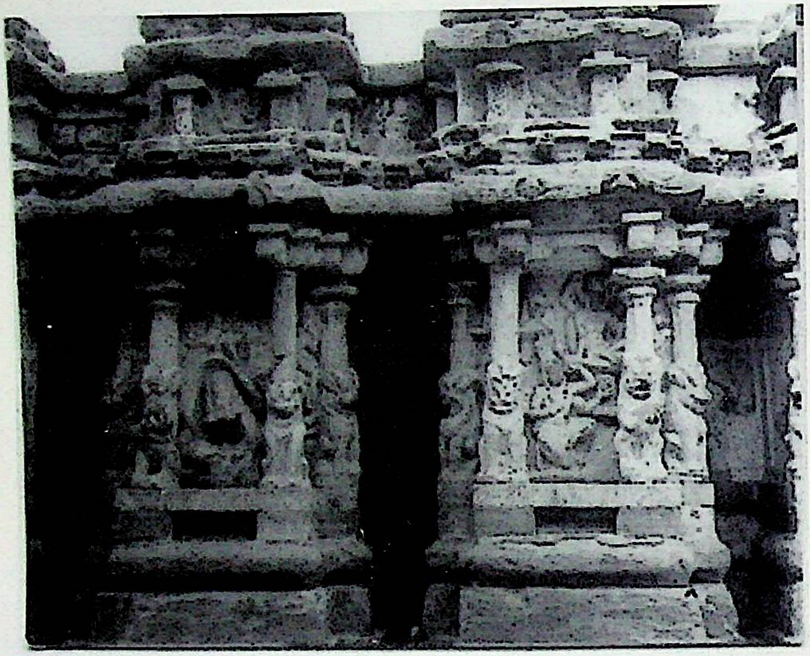

४३. विष्णवनुग्रह मूर्ति (दाहिनी रथिका), कैलाशनाथ मन्दिर, कांचीपुरम्,
ल० आठवीं शती ई०

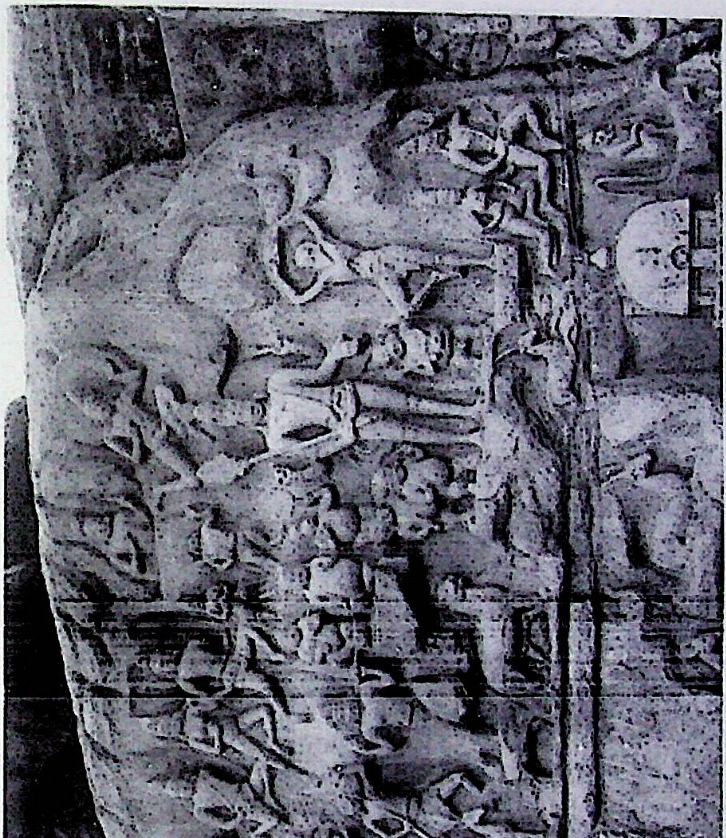

४४. गंगावतरण प्रस्तर फलक, महाबलीपुरम्, ल० सातवीं शती ई०

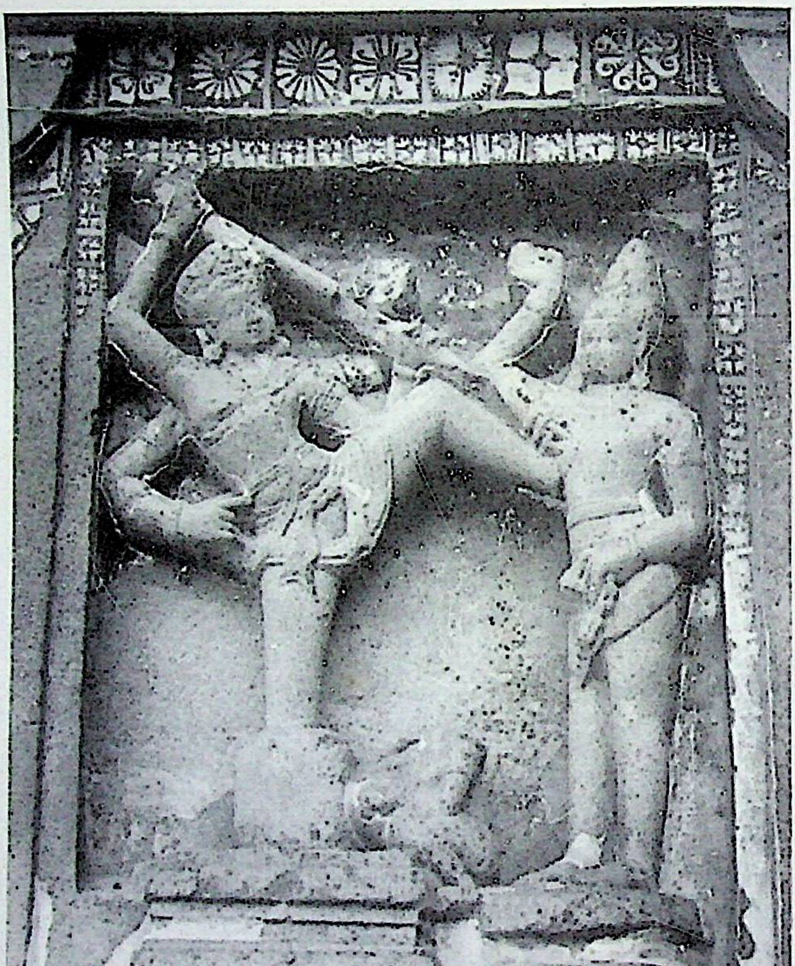

४५. मार्कण्डेयानुग्रह मूर्ति, कैलाश मन्दिर, एलोरा, ल० आठवीं शती ई०

डॉ. शान्ति स्वरूप सिन्हा

काशी हिन्दू विश्वविद्यालय से कला-इतिहास विषय में प्रथम श्रेणी में स्नातकोत्तर करने के पश्चात् डॉ० सिन्हा ने कला-इतिहास विभाग से ही शिव की अनुग्रह मूर्ति विषयक शोध कार्य पर डॉक्टर ऑफ फिलासॉफी की उपाधि प्राप्त की। वर्तमान में आप भारतीय इतिहास अनुसन्धान परिषद, नई दिल्ली के पोस्ट डॉक्टोरल रिसर्च एसोसिएट के रूप में 'जैन कला एवं परम्परा में वैदिक-पौराणिक देवी-देवता' विषय पर शोध कार्य कर रहे हैं। डॉ० सिन्हा की एक पुस्तक 'जैन कला-तीर्थ : देवगढ़' प्रस्तुत पुस्तक के पूर्व प्रो० मारुतिनन्दन प्रसाद तिवारी के साथ प्रकाशित भी हो चुकी है। भारतीय कला के विभिन्न पक्षों पर डॉ० सिन्हा के कई शोध लेख भी प्रकाशित हुए हैं। साथ ही आप कई राष्ट्रीय संगोष्ठियों में भारतीय कला के विभिन्न पक्षों पर शोध लेख प्रस्तुत कर चुके हैं।

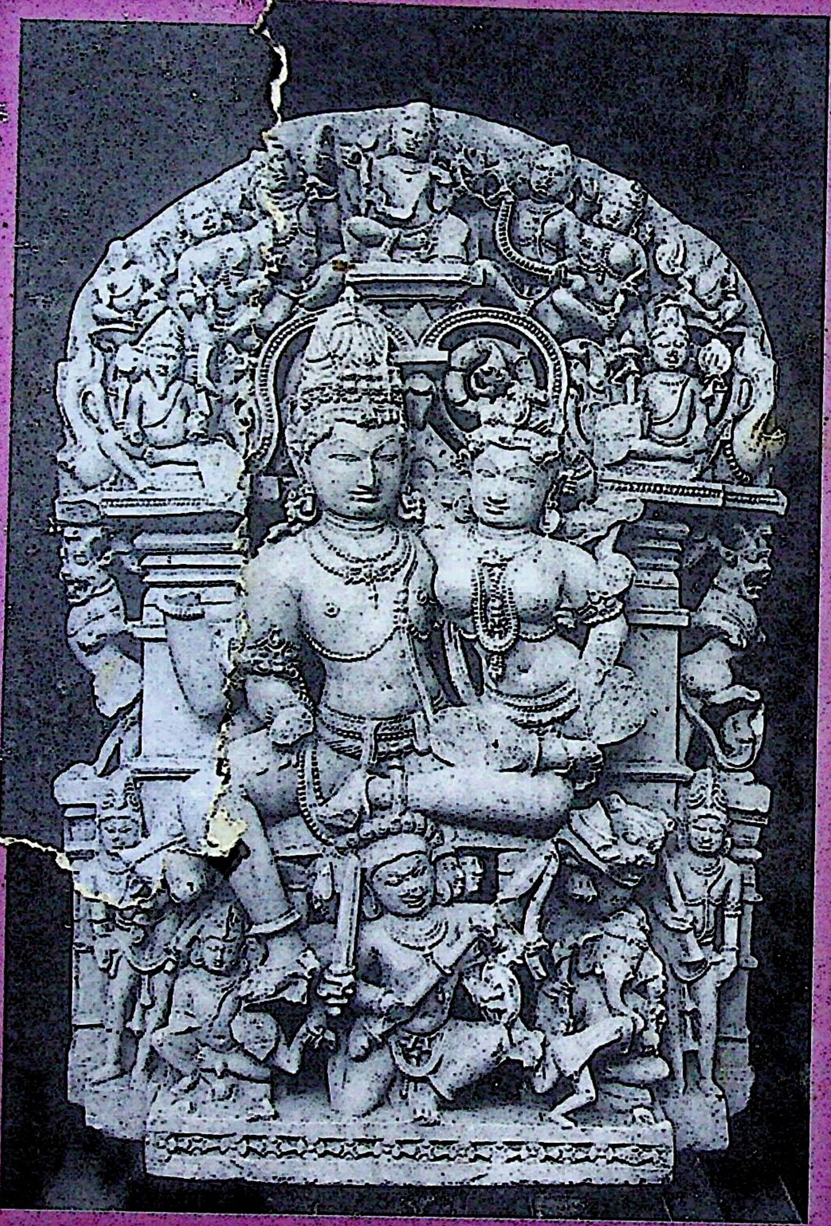

विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी